शंकरदेव तथा माधवदेव के विशिष्ट संदर्भ में
असमिया और हिंदी वैष्णव काव्य
का
तुलनात्मक अध्ययन
(सोलहवीं शती)

(Comparative Study of Hindi and Assamese Vaishnavite poetry with special reference to Shankerdeva and Madhawadeva)

[16th A. D.]

UNIVERSITY LIBRARY
5 FEB 1963
ALLAHABAD

शोध-प्रबंध

लेखक
लालजी शुक्ल, एम० ए०

प्रयाग-विश्वविद्यालय

अक्तूबर, १९६०

विषय- सूची

पृष्ठ-संख्या

भूमिका

संकेत-पत्र

प्रथम अध्याय

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

- चुतिया राजा १
- कामता राज्य २
- कोच राज्य ३

समाज

- वर्णाश्रम-अन्य जातियां ४
- नारी ५
- धार्मिक सहनशीलता ६
- विष्णु मूर्ति ७

:ख: साहित्यिक पृष्ठभूमि

- चार्यपद ८
- अनुवाद और रूपांतर- माधव कंदलि ९
- हरिवर विप्र १५
- हेम सरस्वती १७
- कविरत्न सरस्वती १९
- रुद्र कंदलि २०

समवेत गान- ओजापालि

- पीतांबर कवि २२
- दुर्गावर कायस्थ २५
- मानस पूजा के गीत २६

मनकर और दुर्गावर २७

:ग: धार्मिक पृष्ठभूमि २८

देवी तथा शिवपूजा २९
कामारूप पूजा ३०
कामरूप के पीठ ३२
कौलाचार तथा कुमारी पूजा ३४
विष्णु माहात्म्य ३५
विष्णु पूजा ३६-३७

द्वितीय अध्याय ३८-१५२

:क: शंकरदेव का जीवनवृत्त ३८
शंकरदेव के पूर्वज ३९
जन्म ३९
माता-पिता की मृत्यु ४१
विवाह ४२
पत्नी की मृत्यु ४२
प्रथम तीर्थयात्रा ४३
शंकरदेव तथा चैतन्य का साक्षात्कार ४५
पुनर्विवाह का प्रस्ताव ४६
धर्मप्रचार ४७
भक्ति प्रदीप तथा रुक्मिणी हरण की रचना ४८
भागवत ४९
कीर्तन घोषा, तथा पाषण्ड मर्दन की रचना ५१
गुणमाला ५२
माधव मिलन, कीर्तन घोषा की खण्ड रचना ५३
पंडितों द्वारा विरोध ५३
मदन गोपाल मूर्ति का निर्माण ५४

दिहंगिया राजा का न्याय ५५

कीर्तन घोषा ५८

चैतन्य का कामरूप आगमन ६०

कबीर के मठ में शंकरदेव ६१

जगन्नाथ क्षेत्र में ६२

पाटबाउसी की ओर ६३

कोच राज्य सभा में शंकरदेव ६४

कवि चंद्र ६५

राजप्रासाद में योगी ६७

बृंदावनीया वस्त्र, रामविजय नाट -बरगीत ६८

शंकरदेव का तिरोभाव ६९-७०

:ख: <u>माधवदेव का जीवन वृत्त</u> ७१

जन्म ७२

हरसिंग बरा का संगत्याग,
दुःखा पीड़ित पुत्र और पिता - ७३

घाघरि माजि के घर-माधव का कृषि कार्य ७४

वाडुका में माधव की शिक्षा	७५
कन्या को जौरोन पहनाना	७५
माधव को संग्रहणी	७६
शंकरदेव के साथ तर्क	७७
माधव को कृष्ण भक्ति का उपदेश	७८
माधव की कृष्ण पूजा	७९
माधव का व्यवसाय त्याग	८०
जौरोन पहनाई गई कन्या का त्याग	
शंकर-माधव-संबंध	८१
बंदी माधव	८२
माधव की भक्त प्रीति	८३
तीर्थयात्रा तथा भक्त सेवा	८४
माधव का मूर्ति दर्शन	८५
ईश्वर को सिद्धान्त अर्पण करना	
धौत्री में धर्म प्रचार-	८७
कुरारि भट्टाचार्य से माधव की भेंट	८७
कामाख्या में नीलकंठ से तर्क	८८
गोसाईं घर का निर्माण,	
रामविजय यात्रा अभिनय -	८९
शंकर देव तिथि महोत्सव	८९
दामोदर गुरु के साथ मतभेद	९०
विजयपुर में माधव बंदी	९१
माधव की मुक्ति, सुंदरी में वास	९२

माधव का कामरूप त्याग ९३
वीरनारायण और उनकी माता
का शरण' 'रम मल्लिका' की रचना- ९४
घोषा रत्न ९५
राजा द्वारा माधव के मत का विचार ९६
माधव के विरुद्ध वीरु का अभियोग ९८
महापुरुष-गिना-रावर्जा ९८
माधवदेव का तिरोभाव ९९-१०२

तृतीय अध्याय 103-155

आसमिया और हिंदी वैष्णव काव्य १०१

:क: शंकरदेव की रचनाएं

भागवत १०२
अनादि पतन, गुणमाला १०४
कीर्तन १०५
ध्यान वर्णन १०६
हरमोहन १०७
श्यामंतक हरण , कंस वध १०९
विप्रपुत्र आनयन और दामोदर विप्रोत्थान ११०
रुक्मिणीहरण काव्य ११२
बर्पित स्नान ११३
बरगीत ११६
नाटक ११९
रामविजय, पारिजात हरण १२०
पत्नी, प्रसाद्र केलि गोपाल, रुक्मिणी-हरण १२१

:ख: माधवदेव की रचनाएं १२४

नामघोषा १२५

आदि कांड १२६

राजसूय यज्ञ,कथा नाटक १२७

बरगीत १३०

नागमल्लिका १३१

नामघोषा का महत्व १३३-१३७

:ग: राम सरस्वती की रचनाएं

आदि पर्व १३६

मणिचंद्र घोषा १४०

विजय पर्व,काल कुंज वध,बघासुर वध,गहिला-
दानव वध, जिंगास गीता १४१

कटासुर वध, सिंधु यात्रा १४३-१४४

:घ: हिंदी वैष्णव काव्य

सूरदास की रचनाएं १४५

नंददास की रचनाएं १४६

कुंभनदास,कृष्णदास की रचनाएं १४६

गोविंदस्वामी,छीतस्वामी,परमानन्द की रचनाएं १५०

चतुर्भुजदास की रचनाएं,हित हरिवंश कीवाणी,
सेवक जी की वाणी -- १५१

व्यास जी तथा सूरदास मनमोहन की वाणी १५२

श्रीभट्ट हरिव्यास, परशुराम तथा स्वामी हरिदास की-
रचनाएं १५३

बिहारिनदेव तथा मीरा की रचनाएं १५४

चतुर्थ अध्याय

विनय वन्दना लीला गान	१५६
नाम स्मरण	१५७
दीनता वर्णन	१६३
इष्टदेव की महत्ता	१६७
उद्धार की प्रार्थना	१७३
वंदना	१७७
बाल लीला-प्रभात जागरण	१८२
यशोदा के साथ खेल	१८३
रोदन	१८५
माखनलीला	१८६
माखन चोरी	१८८
स्नान न करना	१८९
वन में भोजन	१८९
गोचारण लीला	१९०
वंशीवादन	१९२
कालीदमन लीला	१९३
रास लीला	१९५
जलकेलि	२०१
भूषण का सोना	२०२
होली	२०२
डोल लीला	२०३
मथुरा लीला	
अक्रूर के साथ कृष्ण का मथुरा गमन	२०४
जल में कृष्ण दर्शन, रजक वध	२०५
माली पर कृपा, कुब्जा उद्धार, कंस वध	२०६

उग्रसेन को राज्यदान	२०७
उद्धव को ब्रज भेजना	२०८
नंद यशोदा को उद्धव का सान्त्वना दान	२०९
गोपी उद्धव संवाद	२०९
कुब्जा रमण, अक्रूर गृह गमन	२१०
जरासंध, कालयवन, मुचकुंदवध	२१०

द्वारका लीला

रुक्मिणीहरण	२११
रुक्मिणी का पत्र	२१२
गौरी पूजन	२१३
विवाह	२१४
सुदामा दारिद्र्य भंजन	२१४
स्यमंतक हरण	२१५
सत्यभामा का मान, नरकासुर का वध	२१६
कुरुक्षेत्र में मिलन	२१६-२१७
वर्षा वर्णन	२१७-२१९
शरद वर्णन	२१९-२२०

पंचम अध्याय २२१- २८८

ईश्वर	२२२
ब्रह्म	२२४
प्रकृति	२२७
जीव	२२८

जीव ईश्वर का भेद	२३१
जीव-ईश्वरादि का अभेद	२३३
माया	२३५
जगत	२३८
अवतार	२४१
भक्ति	२४५
भक्ति भेद	२४६
सगुण भक्ति	२४६
नवधा भक्ति	२४८
श्रवण कीर्तन की श्रेष्ठता	२४९
प्रेम भक्ति	२५२
अव्यभिचारिणी भक्ति	२५३
भगवत्प्रेमानंद	२५४
भक्ति रस	२५८
असमिया वैष्णव साहित्य में शांत रस की प्रधानता-	२६०
शांत रस	२६३-२६४

षष्ठ अध्याय २६७-३२८

ध्वनिपरिवर्तन	२६७
विप्रकर्ष	२६८
वचन	२७०
कारक रचना	२७१
कर्ताकारक	२७१
कर्मकारक	२७३
करण कारक	२७४
संप्रदान कारक	२७५
अपादान कारक	२७७
संबंध कारक	२७८

अधिकरण कारक २८०
सर्वनाम २८१
उत्तमपुरुष सर्वनाम के कारकीय प्रयोग २८२
मध्यमपुरुष सर्वनाम के कारकीय प्रयोग २८७
पुरुषवाचक तथा निश्चयवाचक दूरवर्ती - की रूप रचना २९३
निश्चयवाची निकटवर्ती ३००
संबंध वाचक ३०४
प्रश्नवाचक ३०८-३११

क्रिया

काल रचना ३१२
वर्तमान काल ३१२
विधि ३१५
भूतकाल ३१७-३१८
भविष्यत काल

प्रत्यय

उपसंहार ३२० - ३५८.

परिशिष्ट ३५९ - ३६०

भूमिका

सोलहवीं शती के पूर्वार्द्ध में ही असमिया वैष्णव काव्य-धारा असम में प्रवाहित होने लगी- असम के गिरि प्रांतर के निवासी काव्य का रसास्वादन करने लगे, काव्य, गीत, नाटक आदि का गान, तथा अभिनय ने ही सर्वसाधारण को वैष्णव मत की ओर आकर्षित किया। असमिया और हिंदी वैष्णव काव्य का आदि स्रोत एक हैं, इसीलिए दोनों भाषाओं के काव्य में अधिक समानता दृष्टिगोचर होती है, असमिया वैष्णव काव्य मूल के अधिक निकट है, हिंदी कवियों ने स्वतंत्र प्रयोग भी किए हैं। प्रस्तुत प्रबंध में शंकरदेव तथा माधवदेव के विशिष्ट संदर्भ में असमिया तथा वैष्णव काव्य का तुलनात्मक अध्ययन अंकित किया गया है। शंकरदेव तथा माधवदेव के जीवन, काव्य, दर्शन, तथा भाषा का आलोचनात्मक विश्लेषण प्रतिपादित किया गया है - प्रसंगानुसार हिंदी वैष्णव काव्य के विविध रूपों की तुलना भी की गयी है। मुझे इस प्रकार की कोई भी रचना नहीं प्राप्त हुई जिसमें इस विशिष्ट दृष्टिकोण से दो भाषाओं के काव्य का अध्ययन किया गया हो। मुझे स्वयं अपना मार्ग प्रशस्त करना पड़ा है। प्रस्तुत शोध-प्रबंध के सात अध्याय हैं।

प्रथम अध्याय में कामरूप असम प्रदेश की राजनैतिक, सामाजिक, ऐतिहासिक, तथा साहित्यिक [illegible] पृष्ठभूमि दी गयी है। तेरहवीं शती के पश्चात् कामरूप अनेक क्षुद्र असक्त, दुर्बल, राज्यों में विभक्त हो गया, कोई भी शासक इतना कुशल तथा योग्य न था जो इन राज्यों को संगठित कर सशक्त राष्ट्र का निर्माण करता। चूतिया, कछारी, भुइयां कामतापुर के राजा सदैव ही युद्ध किया करते थे। समाज में वर्णाश्रम धर्म को आदर की दृष्टि से देखा जाता था। कामाख्या की पूजा वाममार्गी विधि से आरंभ हुई -कौलाचार की वृद्धि हुई जिससे देश में तांत्रिकों ने निरीह जनों का आध्यात्मिक शोषण किया- नरबलि जैसी भीषण प्रक्रियाओं का तत्कालीन समाज में प्रचलन था- देव-मंदिरों की सेविकाएं सदैव कामुक भोग विलास लिप्सा में रत रह कर समाज के नव-युवकों को पथभ्रष्ट करती थीं। कुमारी पूजा द्वारा लोगों को स्वर्ग प्राप्ति का लोभ दिलाया जाता था। माधव कंदलि ने संस्कृत रामायण का असमिया में रूपान्तर किया। शंकरदेव के पूर्व हरिवर विप्र, हेमसरस्वती, कविरत्न सरस्वती, रुद्र कंदलि पीताम्बर

कवि, दुर्गावर मनकर आदि ने असमिया में काव्य रचना की । विशेषत: माधव कंदलि की काव्य शैली तथा भाषा का प्रभाव शंकरदेव पर पड़ा ।

द्वितीय अध्याय में शंकरदेव तथा माधवदेव की जीवन संबंधी समस्त घटनाओं की प्रामाणिकता पर विचार किया गया है । प्रस्तुत प्रबंध में अब तक प्रकाशित तथा अप्रकाशित पुस्तकों से सहायता ली गयी है । रामानन्द द्विज, भूषण द्विज, पूवाराम महंत, दैत्यारि के गुरुचरित और कथा गुरुचरित में वर्णित घटनाओं, विवरणों का आधार पर पं० लक्ष्मीनाथ बेज़बरुवा ने शंकरदेव ग्रन्थ लिखा । इसके पश्चात् सत्रों की विशृंखलित सामग्री का समन्वय कर उन्होंने श्री शंकरदेव आरु श्रीमाधव-देव ग्रन्थ का प्रणयन किया । डा० वाणीकांत काकति ने अंग्रेजी में 'शंकरदेव' पुस्तक की रचना की थी । सर्वप्रथम रामचरण ठाकुर ने शंकरदेव की जीवनी पर लेखनी उठाई आश्चर्य है कि उन्हीं के पुत्र ने पिता से सुनकर कथा को लिपिबद्ध किया । चरित - लेखकों ने बहुधा इन महापुरुषों के जीवन की अनेक महत्वपूर्ण घटनाओं को भी आगे पीछे कर दिया है, जिससे जीवन वृत के अध्ययन में अधिक कठिनाई होती है । डा० महेश्वर नेओग ने 'श्री श्री शंकरदेव' नामक गवेषणात्मक ग्रंथ में अनेक तथ्यों की परीक्षा की है । महापुरुष माधवदेव की प्रामाणिक जीवनी का असमिया साहित्य में अभाव है, असमिया के किसी भी प्रतिष्ठित विद्वान ने इस कवि के जीवन पर ग्रंथ नहीं लिखा गया । लेखक ने अनेक चरित पुस्तकों का अध्ययन कर उनकी परीक्षा कर केवल प्रामाणिक तथ्यों को प्रस्तुत प्रबंध में स्थान दिया है ।

तृतीय अध्याय में असमिया तथा हिंदी वैष्णव-काव्य का संक्षिप्त परिचय दिया गया है । शंकरदेव द्वारा प्रणीत भागवत, अनादिपतन भक्ति प्रदीप, बलिछलन, कंसवध उरषावर्णन, रुक्मिणी हरण काव्य, बरगीत आदि काव्यों के स्रोतों सहित उनकी विशेषता स्पष्ट की गयी है । माधवदेव के समस्त ग्रन्थों की समीक्षा इस अध्याय में दी गयी है । राम सरस्वती के प्रत्येक ग्रंथ का सूक्ष्म परिचय दिया गया है । सोलहवीं शती के हिंदी वैष्णव कवियों के काव्य ग्रन्थों का संक्षिप्त परिचय दिया गया है ।

चतुर्थ अध्याय में शंकरदेव, माधवदेव, सूरदास तथा तुलसीदास की विनय-~~पत्रिका~~ वंदना और आत्म निवेदन का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया । श्रीकृष्ण की व्रज,

मथुरा तथा द्वारका लीला कीभी तुलनात्मक आलोचना की गई है। वर्षा तथा शरद ऋतु के वर्णन की सामान्य विशेषताओं को प्रकाशित किया गया है।

पंचम अध्याय में असमिया तथा हिंदी के वैष्णव कवियों के दार्शनिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया है। ईश्वर, ईश्वर-जीव अभेद, ईश्वर जीव का भेद, ब्रह्म, प्रकृति अवतार माया, आदि की विशद आलोचना तुलनात्मक ढंग से की गयी है। भक्ति के भेद, नवधा भक्ति, अव्यभिचारिणी भक्ति, प्रेमलक्षणा भक्ति एवं कीसमीक्षा असमिया तथा हिंदी वैष्णव काव्य के आधार पर की गयी है।

षष्ठ अध्याय में शंकरदेव तथा माधवदेव की भाषा का भाषा वैज्ञानिक तथा व्याकरणिक अध्ययन किया गया है। सूर दास तथा तुलसीदास द्वारा प्रयुक्त भाषा के प्रयोगों के साथ इनकी भाषा का तुलनात्मक विवेचन किया गया है। ब्रजबुलि, ध्वनि परिवर्तन, वचन तथा लिंग के प्रयोग, कारकीय प्रयोग, काल तथा प्रत्यय आदि का तुलनात्मक विश्लेषण हुआ है।

उपसंहार में असमिया तथा हिंदी वैष्णव काव्य की समानताओं का संक्षिप्त सार अंकित किया गया है।

पूज्य डाक्टर धीरेन्द्र वर्मा एम०ए०, डि०लिट्०, भू०अध्यक्ष, हिंदी विभाग, प्रयाग-विश्वविद्यालय ने इस शोध-प्रबंध का निर्देशन किया है उसके लिए इन पंक्तियों का लेखक अत्यन्त आभारी है। अहिंदी प्रदेश के असमिया भाषा तथा साहित्य के प्रकाण्ड पंडितों तथा गवेषकों ने भी मुझे प्रत्येक प्रकार की सुविधा प्रदान की, जिसके फल स्वरूप यह प्रबंध पूर्ण हो सका है। गौहाटी विश्वविद्यालय के असमिया विभाग के अध्यक्ष डा० विरिंचिकुमार बरुवा ने आदि से अंत तक प्रबंध को पढ़ा और अपनी सम्मति दी, जिसका प्रयोग इस प्रबंध में किया गया है - उनकी सहायता के बिना यह कार्य संभव न था। गौहाटी विश्वविद्यालय के प्रोफेसर डा० महेश्वर नेओग, डा० सत्येन्द्र शर्मा, श्रीमती प्रीति बरुवा, असमिया साहित्य के समालोचक प्रोफेसर प्रमोदचंद्र भट्टाचार्य, श्री निर्मल प्रभा बरदलोइ लक्षीहीरादास, अतुलचंद्र बरुवा, विश्वनारायण शास्त्री तथा पं० मनोरंजन रंजन शास्त्री ने मेरी सर्वाधिक सहायकता की। बरदोवा, कमलाबारी आउनिआटि, गड़मूर, बरपेटा तथा पाटबाउसी के

भूदेव गोस्वामी ने सत्र की आवश्यकता प्राचीन पोथियों के उपयोग की आज्ञा दी। श्री भूदेव गोस्वामी ने पत्र पाते ही तीन पुस्तकें मेरे नाम भेज दीं, मैं इन समस्त महानुभावों के प्रति कृतज्ञता प्रकाश करता हूं। डा० सूर्यकुमार भुइयां, भूतपूर्व, कुलपति गौहाटी विश्वविद्यालय, ने इस शोध-प्रबंध के कुछ अध्यायों को सुना और इस प्रयास की सराहना की। उन्हीं के शब्द मैं यहां उद्धृत कररहा हूं - "इस प्रकार के गवेषणात्मक शोध-प्रबंधों द्वारा असम का संबंध शेष भारत से अधिक घनिष्ट होगा, हिंदी के विद्वान असम के महापुरुष शंकरदेव तथा माधवदेव के जीवन और साहित्य का परिचय प्राप्त कर सकेंगे - आप का यह प्रयास भारतीय एकता का प्रतीक है।"

लालजी शुक्ल

संकेत-पत्र

अ० प०	-	अनुराग पदावली
अ०व०सं०	-	अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय
व० सू०	-	सूरसागर -सं० धीरेन्द्र वर्मा
सू० सा०	-	सूरसागर- नागरी प्रचारिणी सभा
सू०वि०प०	-	सूर विनय पत्रिका
सू०भा०	-	सूर की भाषा
तु० भा०	-	तुलसीदास की भाषा
कृ०बा०मा०	-	श्रीकृष्ण बाल माधुरी
वि० प०	-	विनय पत्रिका
रा०च०मा०	-	रामचरितमानस
व०सू०दा०	-	सूरदास
अ०वै०द०रू०रे०	-	असमर वैष्णव दर्शनर-रुपरेखा
अ०पा०	-	अनादि पतन
क० भा०	-	कथा भागवत
उ०ले०क०गु०च०	-	कथा गुरु चरित -संपादक उपेन्द्र लेखारु
का०पु०	-	कालिका पुराण
कु०पौ०	-	कुरुपौत्र
ना०घो०	-	नामघोषा
नि०न०	-	निमि नवसिद्धसंवाद
भ०र०	-	भक्ति रत्नाकर
भ० प्र०	-	भक्ति प्रदीप
शं०ब०गी०	-	बरगीत - शंकरदेव
मा०ब०गी०	-	बरगीत -माधवदेव
अं० ना०	-	अंकीया नाट- सं०

अं० व०	-	अंकावली
मा० वा०	-	माधवदेवर वाक्यामृत
शं० वा०	-	शंकरदेवरवाक्यामृत
शं०आ०मा०च०	-	शंकरदेव आरु माधवदेवर चरित
गु० च०	-	गुरु चरित
म० नै० श्री शं०	-	श्री श्री शंकरदेव
A.E.H.L.	–	Aspects of Early Assamese Literature
A.F.D.	–	Assamese its Formation & Development
A.G.O.A.L	–	Assamese Grammar and Origin of Assamese Language
O.D.B.L.	–	Origin & Development of Bengali Language

প্রথম অধ্যায়

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

शंकरदेव तथा माधवदेव के जीवन काल की राजनीतिक स्थिति का चित्रण अहोम बुरुंजी में मिलता है। असम देश के सुबनश्री और दिसांग नदी के पूर्वी भाग में चूटिया राजा राज्य करते थे, दक्षिण अंचल के बोड़ो स्वतंत्र थे। ब्रह्मपुत्र के दक्षिणी तट पर काछारी राज्य था, इसका विस्तार वर्तमान नवगांव तक था, कभी कभी उनसे अहोमोंकी मुठभेड़ होती थी। काछरियों के पश्चिम और चूतियों के उत्तर में भुइयां प्रधान रहते थे, ये अपने कार्य के लिए ये स्वतंत्र थे, जब कभी बाहरी शत्रु इन पर आक्रमण करता था, ये एक साथ उसका प्रतिरोध करते थे। कामरूप राज्य और भुइयां द्वारा प्रशासित क्षेत्र की सीमा समय समय पर परिवर्तित होती थी, पराक्रमी शासक इन्हें अपने अधीन करते थे किन्तु उसके पश्चात् वे पुनः स्वतंत्र हो जाते थे।[1] कोच राजाओं ने संकोश और बरनदी के मध्य के अनेक सरदारों का दमन किया। कोचों को भी भुइयां कहा जाता है किन्तु उनका संबंध उपर्युक्त भुइयों से नहीं है।[2] तेरहवीं शती के आरम्भ से ही चूतिया राजा सदिया में राज्य करते थे, अहोमों और उनके मध्य सदैव युद्ध होता था। सोलहवीं शती के प्रारम्भ में अहोमों ने उन्हें पराजित किया और उनका राज्य अपने राज्य में मिला लिया।

चूतियों का धर्म विलक्षण था। वे काली केविभिन्न स्वरूपों की पूजा देउरी की सहायता द्वारा करते थे, उन्हें ब्राह्मण की आवश्यकता न थी। वे 'केचाइ खाति' रूप की उपासना करते थे जिसके लिए नरबलि दी जाती थी। अहोमों के दमन के पश्चात् भी देउरी इस अमानुषिक कृत्य को करते रहे किन्तु उन्हें इस कार्य के लिए अब वे व्यक्ति मिलते थे जिन्हें प्राणदण्ड दिया जाता था। इनके अभाव में, एक ऐसे कबीले से व्यक्ति बलि के लिए चुने जाते थे जिन्हें कुछ सुविधाएं प्राप्त थीं। बलि दिये जाने के पूर्व उस मनुष्य को खूब खिलाया पिलाया जाता था जिससे वह देवी के स्वाद के अनुकूल हो, और इसके पश्चात् सदिया के ताम्र मंदिर में अथवा जाति के अन्य तीर्थों में उसकी बलि दी जाती थी। त्रिपुरी कछारी, कोच, जयंतियां और असम की वन्य जातियों में नरबलि की प्रथा थी- इस प्रकार यह सरलतापूर्वक देखा जा सकता है कि तांत्रिकों ने कैसे इस विधान को मान लिया।[3]

१- Gait – History of Assam. पृ० ३८

२- वही पृ० ४०

३- वही पृ० ४२

कामता राज्य : इस आलोच्य काल में ब्रह्मपुत्र उपत्यका का पश्चिमी भाग जिसकी सीमा पश्चिम में करतोया नदी तक थी, कामता राज्य के नाम से प्रख्यात था । ऐसा लगता है कि प्राचीन कामरूप का नाम परिवर्तित हो कामता हो गया था । मुसलमान इतिहासकारों ने कामरूप और कामता शब्द का प्रयोग पर्यायवाची रूप में किया है किन्तु कहीं कहीं इनके प्रयोग में भिन्नता भी मिलती है । संकोष के पश्चिम और पूर्व का क्षेत्र पृथक शासकों द्वारा शासित हुआ है, कोच शासन के उत्तरार्द्ध काल में इस राज्य के कई भाग हो चुके थे ।

वरो भुइयां की एक किंवदंती में यह वर्णन मिलता है कि दुर्लभ नारायण कामता के राजा थे । गेट का मत है कि यदि हम इसका विश्वास भी करें तो दुर्लभनारायण का राजत्व काल तेरहवीं शती का अन्तिम भाग होगा । अहोम बुरंजी में अहोमों और कामता के राजा के युद्ध का वर्णन मिलताहै जिसमें बाध्य होकर कामता के शासक को अपनी पुत्री का विवाह अहोम राजा से करना पड़ा ।[१]

कामता वंश के अंतिम शासक नीलांबर का घटनावद्ध विवरण मिलता है । खेनवंश की उत्पत्ति के संबंधमें गेट कहते हैं कि इनका संबंध किस जाति से था, यह कहना असंभव है । इनका बहुत अंश अब विभिन्न समूहों में समा गया है, इनमें से जिनकी उपाधि के नाम वन्य जाति के हैं वे अपने को कायस्थ कहते हैं ।[२] हुसेनशाह ने इनके अंतिम राजा को परास्त किया सिंहासनारूढ़ होने के पश्चात् नीलांबर ने हिन्दू धर्म ग्रहण किया और अपने पुराने गुरु को मंत्री नियुक्त किया । कहा जाता है कि मिथिला से ब्राह्मणों को भी बुलाया । धरला नदी के बांए तट पर कामतापुर इनके राज्य की राजधानी थी किन्तु इनका वास्तविक शासन प्राचीन कामरूप राज्य के एक छोटे से भाग पर था जिसकी परिधि १८ मील से अधिक नहीं थी । चीनी और बर्मी राजप्रासादों कि भांति यहां का राजप्रासाद नगर के मध्य में अवस्थित था ।

गौड़ देश के मुसलमान शासक हुसैन शाह ने १४९८ई० में कामतापुर पर आक्रमण किया । इस युद्ध में षड्यंत्र के कारण नीलाम्बर बंदी हुआ और उसे गौड़ ले जाने का निश्चय हुआ किन्तु मार्ग में ही नीलाम्बर भाग गया । इसके पश्चात् उसके संबंध में कोई सुस्पष्ट विवरण नहीं मिलता है ।[२]

१- वही पृ० ४४

२- वही पृ० ४५

कई वर्ष पश्चात अहोम राजा को हस्तगत करने के लिए आक्रमण किया जिसके फल स्वरूप सम्पूर्ण मुसलमान सेना का विनाश हुआ और कुछ दिन पूर्व विजित राजा भी हाथ धोना पड़ा ।

मुसलमानों के चले जाने पर देश में कोई राजा न था, छोटे छोटे सरदार शासन कर रहे थे । विश्वसिंह के प्रादुर्भाव के पूर्व यह स्थिति कुछ वर्षों तक थी ।[1]

कोच राज्य : अनेक प्राचीन पोथियों में कोच राजाओं का वर्णन मिलता है, दरं राजा वंशावली इनमें प्रमुख है । राजा परीक्षित की मृत्यु के पश्चात का कोई विवरण इसमें नहीं है और यह इसी राज कुल के राजा लक्ष्मीनारायण और से संबंधित है । यह साची पत्र पर असमिया छंदों में लिखी गई है,[2] ऐसा विश्वास किया जाता है कि एक प्रसिद्ध लेखक ने इसका संकलन १८०६ में किया ।

ग्वालपाड़ा जनपद के अंतर्गत खूंटाघाट मंडल के चिकनग्राम के हरिया मंडल नामक मेच या कोच कोच राजाओं के आदि पुरुष हैं । वे इस मंडल के बारह कोचों के प्रधान थे । उन्होंने हीरा और जीरा नामक दो बहनों से विवाह किया । इनके दो पुत्र हुए । विशु की मां का नाम हीरा था । विशु अदम्य साहसी था उसने अनेक प्रधान मुख्यों को पराजित किया । फूलगुरी और बिजनी के अन्य प्रमुख प्रधानों का दमन कर धीरे धीरे उसने अपने राजा का विस्तार पश्चिम में करतोया और[3] पूर्व में बरनदी तक किया । वह लगभग १५१५ ई० तक पूर्णरुप से शक्तिशाली हो गया ।

ब्राह्मणों ने यह ज्ञात किया उसकी जाति के लोग क्षत्रिय थे, ये लोग यमदग्नि के पुत्र परशुराम के भय से सूत्र त्याग कर भाग गए थे, विशु को हरिया मंडल का पुत्र न मान कर उसे शिव का पुत्र माना गया, किंतु यह कहा गया कि शिव ने स्वयं हरिया मंडल के रूप में हीरा जो पार्वती की अवतार थीं, से भोग किया । बिशु ने अपना नाम विश्वसिंह रख लिया और उसके भाई शिशु का नाम शिवसिंह हो गया इस जाति के समर्थक ने अपने पुराने पद का त्याग किया और राजवंशी कहलाने लगे । विश्वसिंह हिन्दू धर्म के महान पोषक थे । उन्होंने शिव तथा दुर्गा की पूजा की, पुरोहितों, ज्योतिषियों और विष्णु के उपासकों को दान दिया । कामख्या मंदिर का नवनिर्माण करा कर उनकी[4] पूजा आरंभ की -- काशी और कन्नौज से अनेक ब्राह्मणों को अपने राज्य में बुलाया ।

---

१ - वही पृ० ४४

२ - वही पृ० ४५

३ - वही पृ० ४७

समाज

वणाश्रिम : कामरूप के राजाओं ने भी वर्णाश्रम धर्म की व्यवस्था की सुरक्षा की-- समाज ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र, चार वर्णों में विभाजित था । भास्कर वर्मन की निधिपुर दान पत्र में यह लेख मिलता है कि इन्होंने प्राचीन वर्ण आश्रम धर्म की व्यवस्था को अवकिर्ण किया ।[1] इन्द्रपाल के संबंध में कहा जाता है कि पृथ्वी धन धान्य से परिपूर्ण थी और कामधेनु की भांति वह समस्त फलों को देती है क्योंकि चार आश्रम और चार वर्णों के विभाजन का पालन विधिपूर्वक होता था।[2]

गुप्त साम्राज्य के पतन के पश्चात कामरूप राज्य में अनेक ब्राह्मण पांच वी शती के उत्तरार्द्ध में आए । कामरूप के राजाओं ने विद्वानों और धार्मिक पंडितों, आचार्यों और संतो का आदर किया, इसके फलस्वरुप अधिक लोग आकर्ष आकर्षित हुए । मध्यदेश के एक ब्राह्मण को राजा धर्मपाल ने भूमिदान अग्रहार के रूप में दिया । अधिकांश ब्राह्मण यजुर्वेदी थे । निधिपुर के दान पत्र में छप्पन गोत्रों का उल्लेख मिलता है ।[3] ब्राह्मणों का मुख्य कर्तव्य वेदाध्ययन था।

अन्य जातियां : शुभांकर पाठक के दान पत्र में प्रस्थान कलश नामक वैध का नाम मिलता है ।[4] समाज में इस सुमुदाय के व्यक्तियों को आदरणीय स्थान प्राप्त था । डा० कृष्ण शास्त्री के अनुसार वैध ब्राह्मणों माने जाते थे । बलवर्मन के दान पत्र में भिषक का उल्लेख मिलता है । उषाण के अनुसार ब्राह्मण और क्षत्रिय कन्या के संयोग से उत्पन्न भिषक की उपाधि वैध थी । वैध आयुर्वेद के आठ मार्गों का अध्ययन करता था और शल्य चिकित्सा द्वारा धन उपार्जित करता था । कायस्थ और कलिता इस प्रांत की प्रमुख जातियाँ थीं । जिनके हाथ का पानी ब्राह्मण भी पीते थे । कलिताओं को कायस्थों के समकक्ष समझा जाता था । मार्टिन का विश्वास है ये लोग कोच जाति के पुरोहित थे ।[5]

---

१ - अवकीर्णा वर्णाश्रम धर्म प्रविभाज्य निर्मितो । २५ पंक्ति

२ - Dr. B. K. Barua - Cultural History of Assam - पृ० 102

३- वही पृ० १०५

४ - प्रस्थान कलश नामना कविनागोवर्ण मानवे द्धेन रचित प्रशस्ति: ।

५ - Dr. B. K. Barua - Cultural History of Assam पृ० 111

कलिताओं में विधवा विवाह और पूर्ण वयस्क कन्याओं का विवाह प्रचलित था जब कि ब्राह्मणों में विधवा विवाह वर्जित है और किशोरी कन्याओं का विवाह होता है।[1] कोच जाति के लोग मंगोलीय कुल के हैं और उनकी संख्या उस राज्य में अधिक है । योगिनी तंत्र में कोचों को कुवाच कहा गया है । गेट का मत है कि असम में कोच नाम किसी जाति विशेष का बोधक नहीं है किन्तु यह एक हिन्दू जाति का नाम है जिसमें कछारी, गारो, हाजोंग, लालुंग, मिकिर आदि जातियों के धर्म परिवर्तित व्यक्ति हैं।[2]

दैवज्ञ गणक नाम से प्रसिद्ध है । वृहद्धर्म पुराण के अनुसार दैवज्ञों की उत्पत्ति शाकद्वीपी पिता और वैश्य माता से हुई । असम के गणक ग्रहों की पूजा करते हैं । कुछ शिलालेखों में कैवर्तों का वर्णन मिलता है, ऐसा लगता है कि ये लोग भी इस प्रांत की प्रमुख जाति के थे । तेजपुर के शिलालेख के अनुसार एक कैवर्त नदियों के तट पर राज्य कर रहा था ।

कुंभकार, तंतुवाय, नौकी, दांडी जाति के लोग भी असम में थे । डोम और चांडाल जाति के लोग अन्त्यज माने जाते थे ।[3]

नारी : इस काल की नारियां अत्यन्त आकर्षक लावण्यमयी तथा स्नेहमयी होती थी । मातृत्व वैवाहिक जीवन का उद्देश्य था, हर्जवर्मन की माता जीवदा की तुलना युधिष्ठर के माता कुंती से की गई है । निधानपुर के ताम्र पत्र के अनुसार महेन्द्रवर्मन की माता यशवती यज्ञ के काष्ठ के तुल्य थीं जिनसे अग्नि उत्पन्न होती थी ब्राह्मणों की पत्नियां पति के देहांत के पश्चात सती होती थी, इसका उल्लेख योगिनी तंत्र में मिलता है । योगिनी तंत्र में अपुनर्भव नगर की सुंदरियों की कमनीयता और शारीरिक सौंदर्य का विवरण प्राप्त होता है । अपुनर्भव जैसे पवित्र नगर की रमणियां प्रसन्न रहती थी, मध्य भाग क्षीण था, कमललोचन कानों तक विस्तृत थे उरोज उन्नत एवं कठोर थे, कटि पतली थी, चंद्र

---

१ - वही पृ० ११३
२ - वही पृ० ११४
३ - वही० पृ० ११५

के समान कपोल चमकते थे और कंठ में हार सुशोभित थे । किंकिनी और नूपुर से मधुर ध्वनि निकलती थी । बड़गांव के दान पत्र में वेश्याओं का भी विवरण मिलता है । असम के देव मंदिरों में वेश्याओं को नाचने के लिए नियुक्त किया जाता था । हाटकेश्वर शिव के मंदिर की वेश्याओं को वाणमाल ने उपहार दिया,इसका विवरण तेजपुर के दान पत्र में दिया गया है । मंदिरों के कार्य में लगी नारियां नटी अथवा डुलुअंगना नाम से प्रख्यात हैं । डा० काकति का मत है कि डलुअंगना शब्द रचना आष्ट्रिक है । डलु का अर्थ मंदिर और अंगना का अर्थ नारी होता है । चामर डुलाना देवता के लिए हार तैयार करना,उनके सम्मुख नृत्य गान करना ही नटी का कार्य था । नाना प्रकार के सुन्दर आभूषण से सुसज्जित नटी अनेक व्यक्तियों को मोहित करती थी ।[1]

भाष्कर वर्मन ने उत्का के पात्र हर्ष को उपहार स्वरूप भेजा था । योगिनी तंत्र के अनुसार कामेश्वरी की पूजा सुरा,मांस और रुधिर से की जाती है । असम की अन्य वन्य जातियां लाओपानी अर्थात चावल की मदिरा का भोग देवताओं को लगाती हैं । लोग ताम्बूल कच्ची अथवा पक्की सुपारी के साथ खाते थे । हर्ष चरित और मुसलमान इतिहासकारों के विवरण में ताम्बूल खाने का वर्णन मिलता है असमिया समाज में आगंतुक को सर्वप्रथम ताम्बूल - पान भेंट किया जाता है । खासी जाति के लोग मृतक की अर्थी पर ताम्बूल रखते थे ।[2]

धार्मिक सहनशीलता : ह्वेनसांग के अनुसार असम में सैकड़ों देवताओं के मंदिर थे,इनके अतिरिक्त अन्य सम्प्रदायों के भी पूजागृह थे । इस काल में ब्राह्मण धर्म की नाना ~~सस्सस~~ शाखाओं का विवरण शिलालेख तथा मूर्तियों में मिलता है । विभिन्न धर्मसम्प्रदाय के अनुयायियों में भी एक रूपता थी । राजाओं ने विभिन्न मतावलंबियों को सम्यक संरक्षण किया । एक चीनी भिक्षुक ने भाष्कर वर्मन के संबंध में मत प्रकट किया कि वे बुद्ध मतावलंबी न थे किन्तु विद्वान श्रमणों का आदर करते थे ।[3] राजा धर्मपाल ने शिव और विष्णु दोनों देवताओं के प्रति श्रद्धा भाव प्रकट किया है । राजा वैद्यदेव ने अपने को परममाहेश्वर और परम- वैष्णव कहा है । वल्लभ देव ने गणेश और भागवत वासुदेव

१- वही पृ० १२०

२ - वही ० पृ० १२५

३- वही ० पृ० १६४

की उपासना की । वनमाल का नाम यद्यपि वैष्णव लगता है किन्तु वे शिवोपासक थे। यद्यपि इंद्रपाल के शिलालेखों की प्रशस्ति में वे पशुपति प्रमाथिनाथ के भक्त प्रतीत होते हैं,उनके ताम्रपत्रों पर शंख,चक्र पद्म और गरुड़,वैष्णव प्रतीक भी अंकित हैं।[1]

विष्णुमूर्ति : विष्णु की प्राचीनतम मूर्ति देओपानी में प्राप्त हुई लिपि में यह अंकित है कि यह नारायण की मूर्ति है । दीक्षित ने लिपि के आधार पर इसे ९ वीं शती की कृति कहा है । मुख और होठ की निचली आकृति उत्तर गुप्त काल की मूर्तिकला की नमूना जान पड़ती है । मूर्ति का दाहिना हाथ और पैर टूटे हुए हैं और सिर के पीछे का भाग नष्ट हो गया है । ऊपर के बाएं हाथ में शंख और नीचे के हाथ में गदा : : है । कौस्तुभ,श्रीवत्स,यज्ञोपवीत वनमाला आदि चिन्ह उत्कीर्ण किए गए हैं । नवगांव जिले केगोसाईं जूरी के भग्नावशेष में समभंग : standing :मुद्रा में विष्णु की एक दूसरी मूर्ति प्राप्त हुई है । मूर्ति के मस्तक पर किरीट मुकुट है,कानों में पात्र कुंडल जड़े हैं और गले में दो हार हैं एक में कौस्तुभ जुड़ा है । इनके दाहिने लक्ष्मी और बाएं सरस्वती,किरीट- मुकुट और पात्र कुंडल से अलंकृत खड़ी हैं ।[2]

डिब्रूगढ़ में चतुर्भुज विष्णु की धातु : : मूर्ति प्राप्त हुई है । मूर्ति त्रिभंग मुद्रा में खड़ी है किन्तु इसकी यह विशेषता है कि इसके चारों हाथों में कोई भी वस्तु विष्णु ने नहीं लिया है -- सिंहासन के चारों किनारों पर तोते हैं जिस पर मूर्ति विराजमान है । इस मूर्ति को मकराकृत कुंडल,मुकुट तथा चंदन से अलंकृत किया गया है । इस प्रतिमा के दोनों ओर दो सुंदरियां खड़ी हैं,एक के हाथ में कली और कृपाण है और दूसरी नृत्य मुद्रा में है । यह प्रतिमा ११ वीं शती की मूर्ति कला की नमूना है ।[3] विष्णु गौहाटी के शुक्रेश्वर मंदिर के प्रमुख देवता हैं,यह विशाल मूर्ति विष्णु जनार्दन के नाम से प्रख्यात है । देवता पर्यंक मुद्रा में बैठाए हुए हैं,इनके दक्षिण पार्श्व में सूर्य और गणेश और वाम पार्श्व में शिव और दशभुजी दुर्गा की मूर्ति है । इस पंचायतन के प्रमुख देव

---

१ - वही पृ० १६६

२ - वही पृ० १८७

३ - वही पृ० १८८

विष्णु हैं । गौहाटी के उर्वशी शिला पर उत्कीर्ण मूर्तियां प्रधान हिन्दू देवताओं की हैं । विष्णु और उनके दस अवतारों के अतिरिक्त सूर्य, व गणेश, शिव और देवी उत्कीर्ण हैं । उत्तर गौहाटी के अश्वक्रांत देवालय की विष्णु मूर्ति उत्कृष्ट मूर्ति कला का नमूना है । एक कच्छप, एक मेढक, और शैवाली अनंत का आधार हैं जिसके ऊपर विष्णु शयन कर रहे हैं । विष्णु की नाभि से उत्पन्न कमल पर ब्रह्मा विराजमान हैं, महामाया, और मधु और कैटभ राक्षस एक ओर खड़े हैं । नाग कन्याएं दो पंक्तियों में हाथ जोड़ कर घुटनों के बल खड़ी हैं[1] । वाराह तथा नृसिंह अवतार रूप की भी कुछ प्रतिमाएं आसाम प्रांत में प्राप्त हुई हैं ।

राम तथा कृष्ण की पृथक मूर्तियां भी मिली हैं राम भक्ति का प्रचार इस प्रदेश में आदि काल में हो चुका था । गोलाघाट के देवपर्वत के भग्नावशेष में राम, लक्ष्मण के चिन्ह मिले हैं । कामाख्या मंदिर के परिक्रमा द्वार पर वेणु गोपाल कृष्ण की आकृति दिखाई देती है । उनके गले में मणियों की माल है कटि में काछनी है । चारद्वार के मंदिर के खंडहर में वंशीधर कृष्ण मुरली बजाते हुए दो सुंदरियों द्वारा घिरे हैं[1] ।

चार्यपद

इसके पूर्व हम वैष्णव साहित्य के पूर्ववर्ती साहित्य पर विचार करें, हमें चार्य या चार्यपद की ओर ध्यान देना होगा जिनकी कुछ ध्वन्यात्मक और रचनात्मक विशेषताएं आधुनिक असमिया तक में अटूट रूप से मिलती हैं । 'चार्यचार्य विनिश्चय' की चौदहवीं शती के अंत की पांडुलिपि में मूल प्रतिलिपि के ५० चार्य में से केवल ४७ प्राप्त हैं -- इसका उद्धार महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री ने नेपाल से १९०५ में किया था । सिद्धों में से २३ सिद्ध कवियों ने इसकी रचना की है, जिनकी पूजा महायान सम्प्रदाय के नेपाल और तिब्बत के बौद्ध करते हैं । डा० गार्सा द तासी का कथन है कि गुब तोब और क्यां बाव्स ब्दुन ग्रन्थ में सिद्ध मीन नाथ को कामरूप का मछुवा कहा गया है । तारा नाथ ने भी सिद्ध मनि को पूर्वभारत कामरुप का मछुवा कहा है[2] । कामरुपी बोली के दो तुक मनि

---

१ - वही ० पृ० १६९
२- डा० भूपेन्द्रनाथ दत्त - Mystic Tales of Lama Taranatha - 1944

नाथ के संस्कृत टीका चार्य में मिलते हैं ।

कहन्ति गुरु पारमार्थेरा बाटा ।
करम कुरंगा सामाधिका पाट्टा ।।
कमल विकासिला कहिला णा जामारा।
कमल मधु पिबिबी धोके न भामरा ।।

प्राचीन असम या कामरूप का संबंध[1] परवर्ती बौद्ध धर्म के ब्र बज्रयान और सहजयान सम्प्रदाय और सिद्धपुरुषों से था । डा० सुनीति कुमार चटर्जी का मत है कि इस कविता की भाषा पर प्राचीन बंगाली, शौरसेनी अपभ्रंश, और कहीं कहीं संस्कृत और साहित्यिक प्राकृत का प्रभाव पड़ा है[2] । किन्तु डा० ब्लाक का कहना है " हम इन्हें प्राच्य संस्करण कह सकते हैं क्योंकि यह पूर्व के पाठ में मिलती हैं, किन्तु यह ऐसा नहीं है जब हम पूर्वी आधुनिक भाषाओं का इसे आधार मानते हैं । डा० काकति के अनुसार बुद्ध गान औ दोहा 'और 'कृष्ण कीर्तन 'की भाषा प्राचीन बंगाली और असमिया आदि काल की भाषा है और जो पूर्व मागधी अपभ्रंश की बोलियों से प्रभावित हैं ।

अनुवाद और रूपांतर माधव कंदलि

रामायण : इस काल के अत्यन्त महत्वपूर्ण कवि माधव कंदलि हैं । रामायण के उत्तर कांड की रचना करते समय शंकरदेव ने अपने पूर्व कवि की वंदना की है । शंकरदेव ने माधव कंदलि को अनुपम कवि कहा है, शक्तिशाली हाथी की तुलना में शशक के समान हैं । इसके

---

१ -

२ -

पूर्व कवि ने अपने को राजकवि कंदलि कहा है, माधव कंदलि उसका दूसरा नाम है, वह अहिर्निशि राम नाम का स्मरण करता है अन्य स्थानों पर उसने अपने को माधव कंदलि विप्र अथवा द्विजराज माधव कंदलि कहा है । इसमें संदेह नहीं कि वह प्रख्यात ब्राह्मण थे और कविराज उनकी कवि श्रेष्ठ होने के कारण उपाधि थी, संभवत: यह उपाधि उन्हें विद्वानों की सभा अथवा उनके आश्रय दाता राजा द्वारा प्रदान की गई थी "कंदलि" उपाधि अनेक असमिया कवियों की है :रूद्रकंदलि अनंत कंदलि, श्रीधर कंदलि, रुचिनाथ कंदलि: और उन ब्राह्मणों की है जो अहोम राज दरबार द्वारा विदेशों में भेजे जाते थे :रत्न कंदलि, माधव कंदलि, सागर कंदलि, चंद्र कंदलि, इत्यादि जिनका वर्णन ऐतिहासिक लेखों में है: सभी कंदलि कवि प्रख्यात विद्वान थे और विदेशी दूतावासों को भी विद्वानों की आवश्यकता थी । अनंत कंदलि ने कहा है कि उन्होंने इस नाम को शास्त्रार्थ द्वारा प्राप्त किया :तर्कित लाभिला नाम अनंत कंदलि: अनुमान किया जा सकता है कि "कंदलि" का अर्थ तार्किक अथवा शास्त्री है जो शास्त्रार्थ में भाग लेते थे और यह किसी प्रकार की वंश परंपरागत उपाधि नहीं है । नवगांव जिलांतर्गत कंदलि नामक स्थान से इस कंदलि का कोई संबंध नहीं है, किन्तु यह निश्चित है कुछ कंदलि इस स्थान के थे ।

माधव कंदलि ने कहा है कि उन्होंने वराहराज महा माणिक्य की प्रार्थना पर लोक रंजन की दृष्टि से रामायण की पद्य में रचना की ।

अभी तक श्री महामणिक्य का काल और स्थान निर्धारित करना संभव नहीं हुआ । माधव चंद्र बरदले जिन्होंने सर्वप्रथम रामायण का प्रकाशन किया है, अपनी भूमिका में उन्होंने लिखा है कि श्री महामणिक्य जयंतपुर :जयंतिया: के तीन कछारी राजा विजय माणिक्य, धन माणिक्य और यश माणिक्य में से एक होंगे । जयंतपुर के कछारी राजा "वाराहराज" के नाम से प्रसिद्ध थे, और वे "जयंतपुरेश्वर" की उपाधि से, बड़े राज्य, जिसका विस्तार वर्तमान नवगांव जिला तक था, पर १२ वीं शती से १४ वीं शती तक

राज्य किया । इससे बढ़कर बरुदले ने वाराह का संबंध बोरो या बोड़ो के पाठ से जोड़ना चाहा है । अंत में उन्होंने लिखा है कि कंदलि का रामायण चौदहवीं या पंद्रहवीं शती की कृति है और कवि स्वयं वर्तमान नवगांव जिले का था । किन्तु सर एडवर गैट ने विजय माणिक्य और धनमाणिक्य का क्रमश: :१५६३-८०: और १५६६-१६०५: राजत्व काल माना है । यह काल कंदलि के आश्रयदाता श्री महामाणिक्य का नहीं हो सकता क्योंकि यह कवि शंकरदेव को पूर्ववर्ती था :१४४६-१५६८: ।

पंडित हेमचंद्र गोस्वामी लिखते हैं "महामणिक्य वाराही राजाओं में से था और उसने चौदहवीं शती के मध्य में डीमापुर में राज्य किया । प्राचीन अहोम बुरुजी में, महामणिक्य के प्रपौत्र के प्रपौत्र वाराही राजा डेटसिंह ऽहंगिया अहोम राजा के समकालीन थे । दूसरे स्थान पर उन्होंने लिखा है कि वराही हिन्दू कछारियों के अंग थे । अहोमों के आने के पूर्व वाराही राजा ब्रह्मपुत्र के दक्षिण के विस्तृत अंचल पर शासन करते थे और उनकी राजधानी सदिया के निकट सोनापुर थी । कनकलाल बरुआ, गोस्वामी से सहमत होते हुए हुए, कंदलि को चौदहवीं शती के उत्तरार्द्ध का व्यक्ति मानते हैं और कहते हैं कि संभव है कि वाराही राजाओं ने कपिली की उपत्यका पर शासन किया हो[1] । कालिराम मेधी माधव कंदलि को चौदहवीं शती के मध्य का व्यक्ति मानते हैं और श्री महामणिक्य को त्रिपुरा का राजा स्वीकार करते हैं[2] । एक महामाणिक्य ने त्रिपुरा में १३६६- १४०६ तक शासन किया था । उसके कुछ पूर्वजों ने कपिली उपत्यका पर शासन किया और कालांतर में श्री धर्म माणिक्य के दो असमिया ब्राह्मण, शुक्रेश्वर और वाणेश्वर ने त्रिपुरा राजमाला की रचना की । डा० बाणिकांत कांकति ने श्री महा माणिक्य को जयंतपुर का कछारी राजा माना है और कंदलि को मध्य असम का व्यक्ति कहा है । वे कंदलि की भाषा के आधार पर उन्हें चौदहवीं शती का व्यक्ति मानते हैं[3] । कंदलि की भाषा में मूल रूप के कई नमूने मिलते हैं । कामरूप के दो पाल राजा, इन्द्रपाल और धर्मपाल ने वाराह राजा की उपाधि ली और अपने को विष्णु के शूकर

१- K.L. Barua - Early History of Kamrup पृ० ३[illegible]
२- A.G.O.A.L. Introduction पृ० xci.
३- A.F.D. पृ० 23-24.

अवतार और पृथ्वी का संतान कहा है । यह उनके ताम्रपात्र दान पर अंकित है ।[१]
बोड़ो जाति की एक शाखा वाराही या बाराही के नाम से प्रसिद्ध है ।

कथागुरु चरित में गुरु राधा आचार्य,जो शंकरदेव के अध्यापन का निरीक्षण करने आये थे,उनका नाम महेन्द्र कंदलि के स्थान पर माधव कंदलि दिया गया । यह माधव कंदलि रामायण के रचयिता हो सकते हैं ।

अभाग्यवश,माधव कंदलि के रामायण की समस्त प्रतियों में आदि कांड और उत्तर कांड नहीं मिलता है । यह नहीं कहा जा सकता कि कवि ने पहले इन कांडों का अनुवाद नहीं किया होगा । अत: यह स्पष्ट है कि माधव कंदलि का रामायण आधुनिक भारतीय भाषाओं का प्रथम रामायण है । उन्होंने श्री महामाणिक्य के आदेश और पञ्च सप्त कांड रामायण के अनुवाद का उल्लेख :सात कांड रामायण पदबंधे निबंधिलो: लंका कांड के अंत में किया है । कथागुरु चरित में यह विवरण मिलता है कि अनंत कंदलि ने माधव कंदलि के कार्य को शेष करना चाहा,माधवदेव और शंकरदेव ने क्रमश: आदि और उत्तरकांड की रचना पद में की और प्राचीन कृति को नव जीवन प्रदान किया ।

माधव कंदलि ने अपने पदों को अपने आश्रयदाता राजा और दरबारियों को सुनाया और समय समय पर परिवर्तन कर :माधव बोलंत देखा आछोरहिनना,यहीं रहने दें: जिस प्रकार श्रोता सुनना चाहते थे,उस प्रकार सुनाते थे माधव कंदलि ने अत्यन्त दृढ़ता और योग्यता से संस्कृत के श्लोक का अनुवाद किया है है ।[२] सदैव ही कंदलि मूल रचना से बंधे रहें,कहीं कहीं संक्षिप्त करने के लिये और अन्य सामग्री को बाहर रखने के लिये और महामाणिक्य के कहने पर कहीं कहीं थोड़ा रस भी मिलाया है,जिस प्रकार से दूध को अधिक स्वादिष्ट बनाने के लिये उसमें घी डाल देते हैं ।[३]

१- असमिया साहित्य पृ० २५४.

२- सात कांड रामायण पदबंधे निबंधिलो
लंभ परिहरि सरोद्धृत
महामणिक्यर बोले काव्य रस किछो दिलो,
दुग्धक मथिले येन घृत । २५

३- महाऋषि बाल्मिकिये रामायण करिला :
साक्षाते जानिबा येन वेद । २६

माधुर्य और व्यापकता में, कंदलि ने बाल्मीकि की कृति को वेद के समान बतलाया है[1]। और इस संबंध में दायित्वपूर्ण विवरण दिया है। ओ मनुष्यों तुमने राम की कथा रसों से पूर्ण और पवित्र सुना है। क्या तुम इससे प्रसन्न हो, मेरे दोषों का मार्जन करोगे। बाल्मीकि ने इस कृति को गद्य और पद्य में लिखा है। मैंने इसे अत्यन्त सावधानी से ग्रहण कर, जो कुछ समझा है उसे पद्यबद्ध किया है। कौन रसों की छाया को समझ सकता है। पक्षी अपने पंखों के अनुसार उड़ते हैं, कवि जनरुचि का ध्यान रख रचना करते हैं। कवि अपनी रचनाओं में कुछ अपनी ओर से भी मिला देते हैं क्योंकि वे जो लिखते हैं वह देववाणी नहीं किन्तु लौकिक कथा है[2]।

यदि आप मूल पुस्तक देखें और उसमें यह बातें न पाएं जो मैंने लिखीं हैं तो मेरी भर्त्सना करें जैसा आप चाहें[3]।

कंदलि की रचना के वर्तमान रूप में, उत्तरकालीन वैष्णवों की प्रचार प्रवृत्ति दिखाई देती है। राम को विष्णु का अवतार मूल रामायण में नहीं माना गया है, हां बाद में आध्यात्म रामायण में यह स्पष्ट हुआ है। अथवा भागवत कंदलि की रचना में इन तत्वों का पाया जाना इस रचना का प्रभाव माना जा सकता है[4]। कथा गुरु चरित में इसका स्पष्टीकरण इस प्रकार किया गया है। माधव देव और शंकरदेव ने रामायण में प्रथम और अंतिम कांड जोड़ कर रामायण को पूर्ण किया, माधवदेव ने उन स्थानों पर उपदेश प्रक्षिप्त कर दिया है जिन स्थानों पर पहले शुभ शुभ था। यह सर्वथा भ्रामक है कि रामायण को दुबारा संपादन कर उसे वैष्णव साहित्य की भांति भक्तिप्रधान बनाया गया[5]।

कंदलि ने उन समस्त कामुक भावनाओं को स्पष्ट रूप से प्रकाशित किया है जिनसे काव्य रस की वृद्धि होती है। सीता राम से अनुरोध करती हैं कि वे वन जाते समय उन्हें अकेले न त्यागें, क्योंकि उनका यौवन भोग के योग्य पूर्ण हो गया है[6]।

१- महाकवि [illegible] रामायण [illegible]

२- किष्किंधाकांड पृ० २५६
३- लंका कांड पृ० ४४८

४- डा० बं० लेखारु-- असमिया रामायण साहित्य- १९४८ पृ० ४०

५- म० नेओग -- श्री श्री शंकरदेव १९५२ - पृष्ठ १४८

६- अयोध्या कांड - ११८

युद्ध और पारिचालन स्थान, प्रासाद, प्राकृतिक दृश्य, मानवीय सौंदर्य का अत्यन्त सुंदर चित्रण हुआ । सुंदरकांड में इन चित्रों की अधिकता है । माधव कंदलि कुछ शब्दों द्वारा सौंदर्य को आकर्षक बना सकते हैं । जीवन, कार्यव्यापार, नगर और प्राकृतिक दृश्यों के वर्णन करते समय उनके आंखों के सम्मुख असमिया समाज था । कथोपकथन का स्तर सामान्य लोगों--का है । मुहावरों, ग्रामीण प्रयोगों के कारण उनकी भाषा ? अधिक आकर्षक हुई है । उनकी कुछ अभिव्यक्तियां आज के युग में अनुचित जान पड़ेंगी और साधारण लोगों की रुचि की समझी जायगी किन्तु वे कंदलि के श्रोताओं को अधिक रुचिकर प्रतीत होती थीं ।

यद्यपि माधव कंदलि की रचना उनकी न थी, तो भी हम उसमें असमिया समाज की झलक पाते हैं । जब कवि शत्रु के निकट जाने की छ नीति: संधि, विग्रह आसन, द्वैध, सत्व, यान: या मंत्री और राजदूत के कर्तव्य, का वर्णन करता है, तब हम यह सोचने के लिये बाध्य होते हैं कि श्री महामणिक्य के शासन काल में यह सब प्रचलित था । बंदरों का टिड्डियों की भांति फैलना, उष्ण कटिबंधीय वर्णन है । संधिकार शब्द का प्रयोग उन अहोमों का प्रभाव कहा जा सकता है जिन्होंने ब्रह्मपुत्र उपत्यका के पूर्व ओर राज्य स्थापित कर लिया था ।

देवजित : इस रचना में माधव कंदलि अर्जुन और इन्दु के मध्य हुए युद्ध का वर्णन करते हैं, देवताओं के स्वामी इन्द्र ने कृष्ण को अपने प्रस्तावित राजसूय यज्ञ में निमंत्रित करना अस्वीकार कर दिया था । किंतु यह अत्यंत संदिग्ध है कि यह उनकी रचना थी । प्रकाशित संस्करण में कवि ने अपने को प्रत्येक स्थान पर माधव कहा है, माधव कंदलि नहीं । पंडित हेमचंद्र गोस्वामी ने इसे माधव कंदलि की रचना माना है, किन्तु यह प्रक्षिप्त हो सकता है । यह पुस्तक इस महाकवि के योग्य नहीं है । कहीं भी कवि ने अपना परिचय नहीं दिया है । इसके विषय का स्रोत ही संदेहास्पद है । प्रकाशित संस्करण के ५७८ और ६३६ पद की कथा अठारह पुराणों से ली गई है, जब कि पांडुलिपि के अनुसार कथा पद्मपुराण से ली गई है । पूर्ण भूत के इबा प्रत्यय के रूप इसमें मिलते हैं किन्तु यह केवल अनुकरण मात्र ज्ञात होता है । क्रिया का एर प्रयोग कहीं भी नहीं मिलता है । भाषा की कृत्रिमता के आधार पर इसे शंकरदेव के पूर्व की रचना नहीं कहा जा सकता । इस रचना में नाम धर्म का श्रेष्ठत्व तपस्या और बलि के ऊपर स्थापित करने का यत्न किया गया है । इसके अतिरिक्त दो और रचनायें माधव कंदलि

की कही जाती हैं -- 'ताम्रध्वजर युद्ध' और पाताल कांड दोनों जैमिनी अश्वमेध के रूपांतर हैं । डा० महेश्वर नेओग का मत है कि देवजित और यह दोनों रचनायें किसी दूसरे माधव कंदलि की हैं और इनका समय शंकरदेव के बाद होगा ।[1]

हरिवर विप्र

हरिवर विप्र ने 'बभ्रुवाहनर युद्ध' में अपने आश्रयदाता कामता के राजा दुर्लभनारायण पर आशीर्वाद की वर्षा की है ।[2] इनके आश्रय दाता दुर्लभनारायण के सम्बन्ध में अधिक विवरण अभी तक प्राप्त नहीं है । रुक्मिणी हरण काव्य में शंकरदेव ने कहा है कि उनके प्रपितामह चंडीवर व देवीदास को दुर्लभनारायण ने टेमुनियाबांध के निकट भूमि दान दी थी । शंकरदेव के चरितकारों ने इस बात को बार बार दुहराया है । शंकरदेव की जन्मतिथि १४४६ से गणना करने पर दुर्लभनारायण का राजत्व काल तेरहवीं शती का उत्तरार्द्ध या चौदहवीं शती का मध्य स्थिर होता है ।[3] और यही वह समय है जब हरिवर विप्र ने 'बभ्रुवाहनर युद्ध' और 'लव कुशर युद्ध' की रचना की होगी । संबंध सूचक प्रत्यय-रर और पूर्ण भूत काल में -- इबा का प्रयोग अधिक हुआ है,[4] यह शंकरदेव के पूर्ववर्ती कवियों की विशेषता है ।

---

१ - A.E. A.L. - पृ० ३२

२ - जय जय नरपति दुर्लभ नारायण राजा
कामपुरे भैला वीरवर
सपुत्र बांधवे मैबे सुखे राजा करोन्तक
जीवनतको सहस्य वत्सर
ताहान राज्यत थिक साधु जन मनोनिता
अश्वमेध विरचित सार
विप्र हरिवर काइ गौरिर चरण सेइ
पद बंधे करिलो प्रचार । :२५५:

३ - डा० काकति : A.F.D. पृ० २२.

४ - पाचरिबार अस्त्र शस्त्र मनत पेराक :३१८:
हरिवर मुंड गोटा असिबार देखि :५६६:
तोमार करै येबे पिंधिरो मला :५५४: बभ्रुवाहनर युद्ध

ी श्री वंशीगोपाल देवर चरित में वंशीगोपाल के पितामह का नाम हरिवर विप्र है जो व्याघ्रपिंड :उत्तर लखीमपुर: के अत्यन्त सम्पन्न और विद्वानों के प्रमुख मुख्या थे। कहा जाता है कि संस्कृत से उन्होंने `भारत पुराण`का रूपांतर असमिया में किया,इन दो विचाराधीन रचनाओं के सम्बन्ध में यह संदर्भ महत्वपूर्ण है किसी भी प्रकार यह कल्पना करना कठिन है कि शंकरदेव के पितामह और वंशीगोपाल के पितामह एक ही काल के थे ।

निम्नलिखित पंक्तियों में माधव कंदलि के रामायण की प्रतिध्वनि सुनाई देती हैं,जो कदाचित वब्रुवाहनर युद्ध की रचना के समय लिखी गई थी ।

`यिबा किछो किछो लुजि लुरि पाइला
राम येन लंका याते ।

पुंसवन संस्कार के वर्णन में,कवि ने राम से पंचदेवताओं की पूजा कराई है । जब वब्रुवाहन ने रण क्षेत्र को प्रस्थान किया उसने वासुदेव के चरणों को मौन हो प्रणाम किया :वासुदेव-पदे प्रणामिला मने मन: :१५०: वब्रुवाहनर युद्ध में बहुधा कृष्ण वासुदेव जैसे अंकित किये गये हैं । राजा का वासुदेव को प्रणाम करना इस बात का प्रबल प्रमाण है कि असम में नव-वैष्णव धर्म के विकास के पूर्व वासुदेव सम्प्रदाय का प्रभाव था । डा० काकति इस वासुदेव सम्प्रदाय की उपासना के संबंध में लिखते हैं जैसा कालिकापुराण में प्रतिपादित है वासुदेव के बीज मंत्र में द्वादश अक्षर हैं -- `ॐ नमो भगवते वासुदेवाय`। इनके अतिरिक्त अन्य सहायक देवता राम,कृष्ण,ब्रह्मा,शंभु और गौरी की भी पूजा की जाती थी,अंत के दो देवी- देवता को कभी पृथक कर उपासना न की जाती थी[१] । हर तथा गौरी की उपासना कर चित्रांगदा को अनुपम पुत्र लाभ हुआ । कालिकापुराण में बन वासुदेव पीठ की स्थिति कामरूप के उत्तरपूर्व में दी गई है । अब भी उत्तर लखीमपुर महकमें में वासुदेवर थान नामक स्थान है,जो प्रकृति के कोप के कारण नष्ट हो गया है, गर्मी के दिनों में अनेक यात्रियों को आकर्षित करता है । हरिवर विप्र की इन दो रचनाओं में शंकरदेव के पूर्व का वातावरण अंकित है जो पूर्वोत्तर भाग :लखीमपुर: का है

---

१ - Dr. Kakati — Mother Goddess Kamakhya - [illegible]

जिस पर अहोमों का अधिकार पहले हुआ था ।

वभ्रुवाहरर युद्ध : हरिवर विप्र ने येमिनीयश्वमेध से वभ्रुवाहनर युद्ध की कथा ली है-- इसमें अर्जुन और उनकी पत्नी चित्रांगदा के पुत्र,मणिपुर के राजा वभ्रुवाहन के साथ युद्ध का वर्णन है । रुपांतर-कार यथासंभव मूल ग्रंथ के अधिक निकट रहा है,कहीं कहीं उसने लम्बी कहानी को छोटी बनाया है,जहां उसकी कल्पनायें सुकोमल हो उठीं हैं वहां उसने विस्तृत वर्णन को लघु कर दिया है ।

यैमिनीश्वश्वमेध : में ३७-३१-४३: जब अर्जुन ने देखा कि उनके पक्ष के सभी बड़े योद्धा वभ्रुवाहन के द्वारा मारे गये,उन्होंने वृषकेतु से यह आशंका प्रकट की कि वे कदाचित अश्वमेध में भाग न ले सकेंगे क्योंकि अब उसके पूर्ण होने की आशा नहीं है । हरिवर विप्र के असमिया रूपांतर में अर्जुन की दशा अधिक दयनीय अंकित हुई है,वह अपने पूर्व पौरुष की घटनाएं स्मरण कर दुखी होते हैं । मणिपुर राज्य के विशाल प्रासादों का वर्णन कवि ने अधिक किया है ।[१]

लवकुशर युद्ध : येमिनीयश्वमेध के २२,२६ अध्याय से लव-कुश और राम की युद्ध की कहानी ली गई है पच्चीसवें सर्ग के आरंभ में येमिनी ने अर्जुन और वभ्रुवाहन के युद्ध की तुलना राम और उनके पुत्र कुश के युद्ध के साथ की है । सीताहरण,लंका दहन,सीता का अग्नि प्रवेश, राम का अयोध्या गमन,इत्यादि का संक्षिप्त वर्णन इस काव्य में हुआ है । राम एक हजार ६ वर्ष तक राज्य करते हैं । इसके पश्चात गर्भवती सीता को बनवास देते हैं ।

हरिवर इस काल के प्रमुख कवि थे । उनके अनुवाद और रूपांतर की कृतियों में मूल काव्य का रस है । वक्रोक्तियों,मुहावरों,उपमाओं और रूपकों के प्रयोग में माधव कंदलि के बाद उनका स्थान है ।

हेम सरस्वती

प्रह्लाद चरित : एक सहस्त्र पदों का संग्रह है जिसमें कवि ने अपना परिचय इस प्रकार दिया है :-

---

१ - A.E.A.L. पृ० ३५.

कामतामंडल दुर्लभनारायण
नृत्यवर अनुपम
ताहान राज्यात रुद्र सरस्वती
देवयानी कन्या नाम
ताहान तनय हेम सरस्वती
ध्रुवर अनुज भाई
पद बंधो तेहो प्रथार करिला
वामन पुराण चाइ[1] ।

हेम सरस्वती तेरहवीं शती के अंत या चौदहवीं शती के प्रारंभ के दुर्लभनारायण के समसामयिक थे । उपर्युक्त पद के द्वितीय और तृतीय चरण के अर्थ लगाने में कुछ कठिनाई होती है । इसका अर्थ इस प्रकार किया जा सकता है "उनके राज्य में रुद्र सरस्वती रहते थे, देवयानी इनकी पुत्री थीं उन्हीं के पुत्र हेमसरस्वती, ध्रुव के छोटे भाई हैं । यहां रुद्र सरस्वती निश्चित ही दुर्लभ नारायण के समसामयिक या एक पीढ़ी बाद के ज्ञात होते हैं। वे हरिवर विप्र और कवि रत्न सरस्वती से छोटे होंगे, जिनके पिता दुर्लभनारायण के राज्य में सिकदार पद पर कार्य करते थे । यह माना जाता है कि हेम सरस्वती ब्राह्मण हैं जिसका कोई प्रमाण नहीं मिलता है, भारती, कंदलि आदि विद्वानों की अलंकृत उपाधि मात्र हैं ।

हेम सरस्वती ने प्रह्लाद की कथा वामन पुराण से ली है, इसमें उसके पिता हिरण्यकशिपु के मृत्यु के समय का संबाद : : किया गया है जिसका कवि ने अपने ढंग से वर्णन किया है[2] । यह उतने अच्छे कहानी लेखक नहीं है, और विस्तृत वर्णन नितांत आकर्षणिय नहीं है । इनकी भाषा और शैली न तो उच्च कोटि की है न भाषा ही मंजी हुई है क्योंकि उक्तियों की अभिव्यंजना प्रभाव हीन ज्ञात होती है कवि वैष्णव लगता है, वह विष्णु नारायण को प्रणाम कर वैष्णव प्रह्लाद की कथा वामानय संप्रदाय पर जय प्राप्त करने के लिये कहता है । यह प्रथम कृति असमिया में वैष्णव वादी है[3] ।

---

१ - कालिराम मेधि -- प्रह्लाद चरित १८३५ शक
२ - असमिया बुरुंजी -- सूर्य कुमार भुयां पृ ०९८
३ - कालिराम मेधि -- A.G.U. A.L. पृ० ४८१

हरगौरी संवाद : हेम सरस्वती की अधिक विचार शील कृति ग्वालपाड़ा ज़िले में अभी पाई ज गई है । इसमें छ: अध्याय हैं ८ ६६ छंदों से लगभग ४००० पंक्तियों के हैं । प्रथम अध्याय में नृसिंह के हाथों दैत्यराज हिरण्यकश्यिपु की मृत्यु का वर्णन है बाद के अध्यायों में हरगौरी संवाद है । २-५ अध्याय में दैत्य ताड़क का युद्ध, शिव के नेत्रों की ज्वाला से कामदेव का भस्म होना, और कार्तिक के जन्म की कथा का वर्णन है ।

दुर्लभनारायण के मंत्री :महापात्र: पशुपति और उनकी पत्नी रत्नावती के चार पुत्रों में से एक हेम सरस्वती भी थे । इन चारों में ध्रुव और सबसे बड़े धनंजय अधिक प्रसिद्ध थे । कवि का जन्म नाम हेमन्त था, उसे हेम सरस्वती पदवी हरगौरी के अनवरत पूजा के फलस्वरूप प्राप्त हुई थी । कवि दुर्लभ की राजधानी कामता में अपने माता पिता के साथ रहते थे [१] ।

कवि रत्न सरस्वती

जयद्रथ वध : इस रचना में कवि लिखता है :-

राजा दुर्लभनारायण अन्य राजाओं के मणि मुकुट थे और देवताओं के महान उपासक थे । प्रजा के प्रति उनका व्यवहार पुत्रवत था । उनके पुत्र इन्द्रनारायण सज्जन व्यक्ति हैं, वे महान योद्धा, विद्वान और ऐश्वर्यशाली हैं वे सदैव हरि की पूजा करते हैं, अपनी भुजाओं के बल से उन्होंने समस्त भूमंडल को अधीन किया है । प्रत्येक क्षण सदाशिव उन्हें आशीर्वाद देते हैं "पंचगौड़ केराजा अपने पुत्रों सहित चिरंजीव हों । छोटा चिला के चक्रपाणि सिकदार केपुत्र कविरत्न सरस्वती थे । द्रोणपर्व से जयद्रथ वध की कथा ली गई है ।

कामरूप ज़िले के बरपेटा अंचल का छोटा चिला एक गांव है । यह रचना महाभारत का अनुवाद न होकर व रूपांतर अधिक है । इनकी भाषा और शैली माधव कंदलि और हरिवर विप्र से घटिया है इनके वर्णन विस्तृत और संक्षिप्त हैं:कैलाश वर्णन:-

---

१ - इस पुस्तक का उद्धार हाल ही में धुबरी निवासी श्री अजयचंद्र चक्रवर्ती ने किया है ।

ख

साहित्यिक पृष्ठभूमि

रुद्र कंदलि

सात्यकि प्रवेश : रुद्र कंदलि इस रचना में निमंत ताम्रध्वज और उनके अनुज,जो राम और लक्ष्मण के समान मातृप्रेमी थे,की प्रशंसा की है । ताम्रध्वज बुद्धिमान पवित्र,और निर्धनों के पोषक थे और विष्णु और महामाया के उपासक थे-- ऐसा वर्णन इस रचना में मिलता है । शंकरदेव के अनेक चरितों में कामता या कामरूप के राजा दुर्लभ नारायण और गौड़ के राजा धर्मनारायण के युद्ध और संधि का वर्णन मिलता है ।

सात्यकि प्रवेश महाभारत के द्रोणपर्व जयद्रथ वध उपपर्व का एक अंश है । यदु कुल के सिनि के पुत्र सात्यकि का वर्णन है । यह अनुवाद मूल के अधिक निकट है । योद्धाओं के युद्ध वर्णन में रुद्र कंदलि ने लंबी कहानी को कभी छोटा बनाया है:सात्यकि और त्रिगृति: और लघु को दीर्घ किया है :द्रोण और धृष्टद्युम्न: कभी कभी वे अधिक स्वतंत्रता पूर्वक विस्तृत वर्णन करने लगते हैं । पूरा का पूरा वर्णन अत्यन्त रोचक और सजीव है इस रचना की भाषा में आंचलिक उपमाओं की अधिकता होने के कारण यह अधिक रोचक और आकर्षक बन गई है । कंदलि ने मूल उपमाओं को वैसा का वैसा रखा है,कभी बदला भी है ।

समवेत गान -- ओजा पालि

समवेत गान के गीति काव्य नव वैष्णव प्रभाव के पूर्व साहित्य के महत्वपूर्ण अंग थे । काल की दृष्टि से यह शंकरदेव के समय के हैं,किन्तु उनका तात्पर्य और विषय वर्णन पूर्व काल का लगता है । गीति काव्य के इन गीतों को गांव के चार पांच व्यक्तियों का समूह बहुधा गाया करते थे । समवेत गायकों का प्रमुख ओजा कहा जाता है और अन्य सहयोगी गायक पालि कहे जाते हैं,इन पालियों में एक प्रधान होता है जिसे डैना पालि कहते हैं । वस्तुत: वह ओजा का दाहिना हाथ होता है और यह इस दल का दूसरा नेता होता है । ओजा का यह कार्य है कि वह समवेत गान के दल का नेतृत्व करे: वह ध्रुपद आदि को स्थिर कर पालि के लिये दुहराने का संकेत करता है जिसे वे हाथ और

पैर चला कर समय का निर्धारण कर गाते हैं और वह स्वयं काव्य का मुख्य छंद गाता है । वह समय समय पर नृत्य की मुद्रा अपने हाथों से दिखा नाचता है वह एक कथावाचक की भांति दर्शकों के सम्मुख आता है और अनेक घटनाओं को स्पष्ट करता है,जैसा जहां आवश्यक समझता है । कभी कभी यह ढेना पालि केसाथ होताहै जिसके साथ ओजा वार्तालाप करता है । ओजा पालि का सीधा प्रभाव वैष्णव नाटकों पर पड़ा । जब देश में नाटक न थे,ओजा पालि का अभिनय सर्वसाधारण को मनोरंजन और आमोद देता था किन्तु शंकरदेव ने जब नवीन अंक या नाटक का आविष्कार किया तब संगीत का महत्व अधिक बढ़ गया।सर्पों की देवी मनसा पूजन के लिये यह गान विशेष महत्व का था किन्तु नव वैष्णवों ने भी गायन-वादन का व्यवहार किया । शंकरदेव के कीर्तन घोषा और रामायण-महाभारत के पद भी इस प्रकार गाये जाने लगे ।

काव्य के प्रमुख रूप -- सामान्य पाथार के मध्य गीत इस विवेचन काल की प्रमुख विशेषता है । मनकर,दुर्गावर पीतांबर आदि सबने इस ढांचे की रचना की है,किन्तु वैष्णव कवियों ने ऐसा नहीं किया है । इस भय के अनेक दशक पश्चात नारायण देव ने पद्मपुराण की रचना गीति काव्य में की,किन्तु यह उनके विषय वस्तु का आवाहान था,बाद की दूसरी रचना गंगादास का `अश्वमेध पर्व है,सुबुधीर्य और भवानीदास ने इसका अनुकरण किया है किन्तु इन तीन (कवियों का वैष्णव शैली : : से परिचय न था । किन्तु कुछ कारणों से यह कला नव वैष्णवों द्वारा हेय समझी गई[1] । इस प्रकार की कविता पांचाली या पाचाली पाठ में स्थान स्थान पर कही गई है[2] ।

---

१ - उषा परिणय - डा० महेश्वर नेओग १६५१ पृष्ठ २६-२७

२ - The word panchali or pacali derived [illegible] from [illegible] or [illegible]

यह उल्लेखनीय है कि मनसा और चांद सौद की कथा किसी संस्कृत स्रोत से नहीं ली गई है, दुर्गावर की राम कथा का आधार माधव कंदलि की पूर्व रचना है पीतांबर के काव्य की कथा सीधे हरिवंश और पुराणों से ली गई है । पीतांबर की रचनाएं अनुवाद और रूपांतर वर्ग में रखी जा सकती थीं किन्तु उनकी गीतात्मकता और लोकप्रियता के कारण इन्हें दूसरे वर्ग के साथ रखा जा सकता है । इन गीति काव्यों का केन्द्र युवक और युवतियों के प्रेम और विवाह हैं ।

पीतांबर कवि

पीतांबर कामरूप के थे और कामता नगर में रहते थे, कदाचित वे शंकरदेव के समसामयिक थे या कुछ बड़े थे, कुछ रचनाएं उन्होंने कूचबिहार के समरसिंह के अनुरोध : / : पर की । शंकरदेव ने अहोम राज्य १५४६ ई० में त्याग कर कामरूप आये और बरपेटा में ठहरे[१] । उन्होंने अपने नवीन शिष्य नारायण ठाकुर से पूछा कि वे इस अंचल के कुछ प्रभावपूर्ण व्यक्तियों को बताएं जो गधलेखक : / : का काम कर सकें । नारायण ने तीन व्यक्तियों का नाम लिया, जिनमें पीताम्बर का भी नाम था, जिन्होंने पहले ही भागवत पुराण दशम का रूपांतर पदों में किया था, शंकरदेव ने पीताम्बर कवि की कविता रचना को देखना चाहा । नारायण ने पीताम्बर कवि की रचना का एक अंश पढ़ा, जिसमें, कुंडिननगर की राजकुमारी रुक्मिणी कृष्ण के दर्शन के लिये व्याकुल थी, का वर्णन था ।

विलाप करि कांदे माइ रुक्मिणी
कोन अंगे सून देखि भैला यदुमनि ।

---

१ - महेश्वर नेओग -- श्री श्री शंकरदेव द्वितीय संस्करण पृ० १२३

शंकरदेव ने कवि को शाक्त और कामुकता प्रेमी समझा और उसे धर्म उपदेशक के अयोग्य कहा क्योंकि वह गर्व पर्वत पर बैठा है।[1]

उषा परिणय : यह काव्य कामता नगर में १४५५ शक वैसाख मास के पांचवें दिन या १५३३ ई० में पूर्ण हुआ। यह पीतांबर की प्रथम उपलब्ध रचना है। इसमें युवराज समरसिंह :शुक्लध्वज: का नाम कहीं भी नहीं मिलता है। १४५५ शक में नरनारायण सिंहासनारूढ़ हुए और उन्होंने भाई शुक्लध्वज को युवराज और प्रधान सेनापति नियुक्त यद्यपि पीतांबर उस समय राजधानी में रहते थे, पर उस समय तक उन्हें राज्याश्रय प्राप्त न हुआ था।

बाणासुर और यादवों का युद्ध, कृष्ण और हर के मध्य युद्ध, उषा और अनिरुद्ध का प्रेम व्यापार और विवाह आदि का वर्णन अत्यन्त विस्तार से किया है हरिवंश :विष्णुपर्व -- ११६-१२८: से पीताम्बर ने कथा ली है और अधिकतर वे मूल के निकट रहे हैं। वह कहते हैं :-

व्यासर मुखर कथा अनिबो अवसे
आरासब रचिवो ताहार आसे पासे

उषा के सौंदर्य वर्णन में कवि अधिक स्वतंत्र रहा है। वसंतऋतु के प्रभाव से उषा का मन प्रेम के विचारों में निमग्न हुआ था, अनिरुद्ध का स्वप्न में कामसेना यक्षिणी से क्षोपभोग आनन्द प्राप्त करना, उषा का कामुक स्वप्न और युवा होना आदि आकर्षक वर्णन हैं। हरिवंश में बाण समस्त घटनाओं का केन्द्र है किन्तु इस काव्य में वही केन्द्र है। काव्य का प्रथम भाग अधिक कामुकता पूर्ण और गीतिमय है। प्रेम और विवाह मूल तत्व हैं। इसमें अलौकिकता पूर्ण कुछ वर्णन हैं जो अधिक लोकप्रिय हैं। हर और गौरी की पूजा के समय तत्कालीन समाज की झलक देखने को मिलती है और विवाहों का भी सूक्ष्म विवरण मिलता है।

---

१ - गर्व्व पर्व्वत सितो उठिया आछय।
कथा गुरुचरित -- सं० उ० चं० लेखारु, पृष्ठ ६५

भागवत पुराण : इस रचना में इसका रचना काल नहीं मिलता है । पीताम्बर कहते हैं :---

कामता नगर अद्भुत नगर है, जहां राजा विश्वसिंह रहते हैं, उनके पुत्र का नाम समरसिंह है जो कृष्ण की अलौकिक क्रीड़ा से आनंदित होतेहैं, वे कृष्ण के युगल कमलवत चरणों के भक्त हैं । पीताम्बर ने बाल बुद्धि द्वारा उनके निकट रह कृष्ण संबंधी इन पदों की रचना की ।[1]

अन्य स्थलों पर समरसिंह को युवराज कहा गया है जिसका संबंध शुक्लध्वज अथवा चिलाराम से अधिक है दरं राजवंशावली में यह उल्लेख उपलब्ध है, मल्लदेव या नरनारायण के राज्याभिषेक के अवसर पर शुक्लध्वज युवा नृपति घोषित किये गये थे और उन्हें संग्रामसिंह की उपाधि रण कुशलता के कारण दी गई । गुरुचरित में उन्हें प्रत्येक स्थल पर छोटा राजा कहा गया है । पीतांबर ने संग्रामसिंह को समरसिंह के रूप में अंकित किया है । शुक्लध्वज कृष्ण भक्त थे, शंकरदेव के आगमन पर वे वैष्णव सम्प्रदाय में सम्मिलित हो गये थे भागवत पुराण दशम का रचना काल डा० महेश्वर नेओग १५४६ ई० के बाद मानते हैं ।[2] यह सोलहवीं शती के प्रथम अर्द्धक की रचना है ।

भागवत पुराण की कथा का अत्यन्त मनोरंजक रूप में पीताम्बर ने कहा है ।

मार्कण्डेय पुराण : :चंडी आख्यान: शुक्लध्वज या समरसिंह के अनुरोध पर पीतांबर ने इसकी भी रचना की । इस समय संरक्षक राजकुमार भवानी के परम भक्त रूप में निरुपित हुआ है, कवि स्वयं ग्रंथ के प्रारंभिक पदों में भवानी की स्तुति कोटि कोटि प्रणाम कर करता है पीतांबर इस काल के अत्यन्त उल्लेखनीय कवियों में से हैं । शंकरदेव के पूर्व के लेखकों में माधव कंदलि के बाद उन्हीं का स्थान है, वे उच्च कोटि के विद्वान कवि और संगीतज्ञ हैं ।

---

१ - निरुपमा-रत्नौ पीताम्बर भागवत - ४.

२ - A.E.A.L. पृ० ५२.

दुर्गावर कायस्थ

गीति रामायण : गीति रामायण का वर्तमान उपलब्ध रूप अपूर्ण लगता है । इसमें कर्ता के परिचय के संबंध में कुछ भी प्राप्त नहीं है । उनकी दूसरी रचना पद्म या मनसा पुराण में कुछ विवरण मिलते हैं । इसमें वे कामता नरेश विश्वसिंह को श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं । राजा की मृत्यु १५४० ई० में हुई,कवि ने अपनी रचना इस समय तक अवश्य समाप्त कर ली होगी,-- गीति रामायण उनकी प्रारंभिक रचना कही जा सकती है क्योंकि इसमें किसी आश्रयदाता का नाम नहीं आता । दुर्गावर अपने को भी कायस्थ चंद्रधर का पुत्र कहते हैं ।

दुर्गावर नाम भाटों और घूमने वाले चरणों केलिये भी प्रयुक्त होता था :कवि गाइते आइ राजार भाट दुर्गावर :[1] गीति रामायण में दुर्गावर किसी विशिष्ट धर्म की ओर नहीं झुके थे,यद्यपि राम को उन्होंने अनेक बार प्रणाम किया है । राम के लिये कवि सारंग,गांडीव ,मुरारी, चक्रपाणि,दैत्यारि देवराज अलंकारिक नाम दिये हैं । वह एक ग्रामीण कवि जान पड़ता है और उसका शास्त्रीय ज्ञान नहीं के बराबर है संभवतः इसने रामायण संस्कृत में न देखी और माधव कंदलि के संस्करण अथवा अपनी रचनाओं के ऊपर निर्भर रहा ।सम्प्रति गीति रामायण का जो रूप प्राप्त है उसमें आदि और अयोध्या कांड नहीं है,लंका और उत्तर कांड अत्यन्त संक्षिप्त हैं । यह अधिसंभव है कि प्रथम दो कांड शताब्दियों बाद खोगये या नष्ट हो गए अथवा यह कभी लिखे ही न गये । अरण्यकांड के आरंभ में अयोध्याकांड का उल्लेख है ।[2]

गीति रामायण गीतात्मक सौंदर्य की दृष्टि से माधव कंदलि के रामायण का लोकप्रिय संस्करण है जिसका प्रयोग ओजा और ओजापालि ने समवेत गान में अधिक किया है । कथा प्रवाह सर्वदा सरल नहीं कभी कभी कथा विशृंखलित हो गई है । अनेक पद्यांश कंदलि समान हैं । दुर्गावर ने कभी कंदलि की कुछ पंक्तियां जोड़ ली है और

---

१ - गोपीचंदर गान क०वि० भाग १,१९२२ पृ० ५७

२ - अयोध्या कांड कथा मैला समापति
अरण्य कांडर शुनियो सम्प्रति ।

कभी घटा ली हैं । कंदलि के कुछ पदों को दुर्गावर ने विभिन्न रागों में मोड़ा है मात्रा और गान की सुविधा के लिये ह है या इ : जोड़ दिया है । नवीन लय लाने के लिये कुछ मात्राओं और शब्दों में परिवर्तन भी किया है ।

करुण रस से ओतप्रोत गीतों की रचना में दुर्गावर अद्वितीय हैं । अहीर राग कवि की मधुर तथा मंजुल प्रिय राग जान पड़ती है । काव्य के अत्यन्त सुन्दर गीत सीता, राम तथा तारा के विलाप के हैं । मनुष्य या पशु : स्वर्ण मृग: का सौंदर्य वर्णन कवि ने कुछ पंक्तियों ही में किया है । अयोध्या जैसे अनुपम नगर तथा मदन चतुर्दशी उत्सव का वर्णन कुछ पंक्तियों में हुआ है ।

मनसा पूजा के गीत

असम के कामरूप, ग्वालपाड़ा जिले और मंगल दैर सब डिवीजन में मनसा, विषहरी पद्मावती अथवा मारइ की पूजा होती है -- ब्राह्मण से लेकर चांडाल शूद्र वर्ग के व्यक्ति इस देवी की पूजा करते हैं । मनसा की पूजा में मुसलमान भी समवेत गान ओजा पालि में भाग ले सकते हैं और लेते हैं । यह स्पष्ट नहीं कि कब और कहां से मनसा सम्प्रदाय का उद्भव हुआ किन्तु नाग पूजा के चिन्ह असम की अनेक वन्य जातियों में पाये गए हैं -- खासी, मैते, मिशमी और राभा । मनसा और शैव व्यवसायी चन्द्रधर की कथा बाद में मनसा सम्प्रदाय में परिवर्तित की गई, ऐसा लगता है कि यह अनार्य देवी को हिन्दू रूप देने के लिये किया गया । वर्षा ऋतु के आषाढ़, श्रावण, भाद्रपद और अश्विन मास में इस देवी की पूजा की जाती है । कवि मनकर ने कहा है कि इनकी पूजा श्रावण में चार दिन तक करनी चाहिए । उन्होंने यह भी कहा है कि देवी की प्रतिमा को मंच पर रख रात दिन वर्षा ऋतु में पूजा करनी चाहिए । मृतिका की प्रतिमा में सर्प के आसन पर वह विराजमान होती हैं, सर्प उनके अलंकार हैं । सिजु :पल्लव: और सहस्त्रदल कमल को कलश में रख उसकी पूजा की जा सकती है । देवी के गीतों का गान, देउधनी और देउधा का नृत्य इस उत्सव के आकर्षक अंग हैं, जो प्राय: चार दिन या इससे अधिक समय तक चलता है[१] । असमिया में ऐसे अनेक मंत्र हैं जिनके उच्चारण मात्र से

---

१ - H. E. A. L.

सर्प विष का शमन हो सकता है । मनकर,दुर्गावर और नारायण देव तीन प्रमुख कवि हैं जिनके गीत मनसा पूजा के अवसर पर गाये जाते हैं इनके पद मनकरी,दुर्गावरी और सुकनान्नी :सुकविनारायण: के नाम से जाने जाते हैं । नारायण देव बाद के और संभवत: राजा मालि नारायण या धर्मनारायण दरंगी राजा के दरबारी कवि थे,इनका समय सत्रहवीं शती माना जाता है ।

मनकर : मनकर असमिया के कदाचित मनसा कवि हैं । अपने पदों में कवि ने राजा की वंदना की है । जल्पेश्वर और कामता नरेश और जल्पेश्वर नगर के धन और वैभव की तुलना अमरावती से की है । इनकी शब्दावली में फारसी के शब्दों की संख्या कम है बाजार शब्द ही मात्र मिलता है । राजा जल्पेश्वर कामरूप के नरेश थे और उनकी राजधानी जल्पेश्वर की वर्तमान जलपाईगुड़ी थी । वह स्वयं शैव थे,उन्होंने जल्पेश्वर नामक शिव मंदिर का निर्माण किया ।

मनकर सोलहवीं शती के पश्चिमी असम :कामता: के कवि थे । इनकी भाषा ग्वालपाड़ा और कामरूप की है । कवि ने जिस प्रकार की वैवाहिक रीतियों का वर्णन किया है वह उसी भाग की हैं । कोच लोगों का संदर्भ अधिक आता है और गोमाना बाध मंत्र का उल्लेख मिलता है जिसका व्यवहार बोड़ो लोग अधिक करते हैं । कवि मनसा का उपासक जान पड़ता है किन्तु वह नारायण को भी प्रणाम करता है,लौकिक को भी अभिवादन करता है । बुद्ध का भी उल्लेख प्राप्त है ।मनकर ग्रामीण कवि और चारण था,मनसा के गीत हाथ में करताल लेकर गाता था । उसकी भाषा सरल और सीधी थी,उसमें कल्पना और संगीत का अविरल प्रवाह है । हर गौरी के गंधर्व विवाह का वर्णन अत्यन्त शृंगारिक है ।

दुर्गावर : दुर्गावर मनकर की अपेक्षा अधिक सुसंस्कृत और उच्च कवि हैं । उनके गीत कामाख्या में मनसा पूजा के समय ओजा पालि गाते हैं । सभी गीत भारतीय राग में लिखे गये हैं और इनका नाम गीत के ऊपर दिया गया है । मानव रूप,कार्य व्यापार और प्राकृतिक दृश्यों के वर्णन में कवि सिद्धहस्त हैं इनमें यथार्थ झलकता है । बेउला तथा लखीन्दर की कहानी प्रधान विषय वस्तु है ।[१]

---

१ - बिरिंचि कुमार [illegible] और [illegible] - [illegible] सन १९५२.

ग

धार्मिक पृष्ठभूमि

धार्मिक पृष्ठभूमि : कालिका पुराण और योगिनी तंत्र में प्राचीन असम के तीर्थ क्षेत्रों की भौगोलिक स्थिति के विषय में विस्तृत वर्णन मिलता है । कालिका पुराण की रचना योगिनी तंत्र से कई सौ पूर्व हुई हुई थी, इसमें नव-प्रचारित देवी पूजा प्रचार का विशेष विवरण प्राप्त है[1] । कालिकापुराण के अनुसार जब वराह विष्णु और पृथ्वीदेवी ने जब अपने पुत्र नरक को राजपद देने के लिए प्रागज्योतिषपुर लाई, उसके पहले इस देश में शिवपूजा का प्राधान्य था । इस देश के अधिवासीगण किरात जाति के थे और वे शैव मतावलंबी प्रतीत होते थे । कहा जाता है कि विष्णु ने शिव की अनुमति से किरातों को कामरूप के मध्य के अंचल से हटाकर पूर्व में ललिता और कांता की सीमा निर्धारित कर सागर के तट पर बसाया[2] । राजा नरक शैव-धर्म का पृष्ठपोषक था, उसके तत्वावधान में देवी पूजा प्रचलित हुई और कामाख्या के अतिरिक्त अन्य देवता की पूजा निषिद्ध थी[3] । राजकीय पृष्ठपोषकता न पाने पर भी भीतर भीतर नरक के राज्य में शिव पूजा चल रही थी । शिव मेरे आराधनीय नहीं है मेरे राज्य में शिव भीतर गुप्त भाव से हैं[4] । नरक के राजत्व काल में वशिष्ठ ने संध्याचल पर शिव की आराधना की थी ।

कालिका पुराण में उल्लिखित तीर्थों में शिव के क्षेत्रों की संख्या सबसे अधिक है। पश्चिम में करतोया नदी के पार के महावृक्ष लिंग से आरंभ कर पूर्व में बूढ़ी गंगा नदी के पार के विश्वनाथ क्षेत्र तक शिव के क्षेत्रों की संख्या पन्द्रह हैं । इसके विपरीत विष्णु क्षेत्र की संख्या चार और देवी क्षेत्र की संख्या पांच मात्र हैं । योगिनी तंत्र के अनुसार कामरुप में शिव की संख्या एक करोड़ से अधिक है[5] ।

---

१ - का० अ० धा० -- पृ० १४

२ - एवमुक्ता स्वयंविष्णु शंभोरणुमते: तदा
सर्वान किरातान पूर्वस्यात सागरन्ते न्यवेश्यात:
का० पु० - ३८।२८।८

३ - कामाख्या त्वं बिना पुत्र नान्यदेवं यजिष्यामि ।
का० पु० १३८।५३।५४

४ - नैवाराध्यस्तथा शंभुरन्तर्गुप्त: स मे पुरे ।। ४४।८५।८

५ - सार्द्धकोटिस्त्था लिंगं त्रिशतं च कलौयुगे ।
भूम्यन्तस्थं लक्षं च सार्द्ध लक्षं जलेप्रिये ।।
योगिनी तंत्र।२।५।२६।३१

कामरूप शासनावली में ई० ७ म शती से लेकर १२ वीं शती तक के १० राजाओं का वृतांत है। धर्मपाल ने वराह रूपी नारायण को नमस्कार किया है शेष राजाओं ने शिव की विभिन्न मूर्तियों को प्रणाम किया। इन्द्रपाल :११००: ने अनेक शिव मंदिर का निर्माण कराया। शासनावली के निर्देशित काल के पश्चात भी शिव पूजा प्रचलन का प्रमाण गुरुचरित आदि में पाया जाता है। गोपेश्वर शिव की आराधना कर कुसम्बर भुइयां ने पुत्र लाभ किया, इसलिये पुत्र का नाम शंकरदेव हुआ। माधवदेव के बड़े भाई रुपचन्द्र गिरि ने शिव चतुर्दशी तिथि को शिव पूजा करने के लिये माधवदेव को आदेश दिया था।[1] दक्षिण पार सत्र के संस्थापक बनमाली देव के चरित में है कि एक समय बनमाली देव को हलेश्वर नाम की शिवमूर्ति के सम्मुख होना पड़ा। बनमाली देव ने एक शरण धर्म की मर्यादा रख शिवमूर्ति को हरि समझ कर नमो नमो लक्ष्मीपति भगवंत कर सेवा की।[2]

कामाख्या देवी को स्वयं भगवती का रूप माना गया है किन्तु भगवती ने किस प्रकार कामाख्या रुप धारण किया इस विषय में भिन्न भिन्न शास्त्रों में पृथक पृथक बातें मिलती हैं। कामाख्या देवी ब्रह्म रूपा सनातनी और परम विधा से अभिन्न हैं।[3] कामाख्या के योनिपीठ और योनिमंडल भिन्न भिन्न स्थान पर हैं, इसका परिमाण पांच कोस का है। इनमें से नील नामक पर्वत पर मनोभाव गुहा[3] के भीतर योनिमंडल हैं। ब्रह्मशैल, नीलशैल, मणि पर्वत और भस्माचल इनमें से प्रसिद्ध हैं।

कालिका पुराण में कामाख्या की निरुक्ति दी गई है किन्तु योगिनी तंत्र के उपाख्यान के साथ उसका संबंध नहीं है कालिका पुराण के अनुसार देवी शिव के साथ गुप्त गुप्त संभोग करने आई थीं, इस कारण उनका नाम कामाख्या हुआ। कामाख्या शब्द का अर्थ हुआ- कामा। कामाख्या देवी के दो भिन्न रूप की कल्पना कालिका पुराण में की

---

१ - हरि बुद्धि करि ताक करिलंत सेव।
नमो नमो लक्ष्मीपति भगवन्त देव।।

२ - या काली परमाविधा ब्रह्मरुपा सनातनी।
कामाख्या सैव देवेशि सर्वसिद्धि विनोदिनी।।
यो० तं०

३ - का० पु० ६२।६८।७५

गई है-- संहार मूर्ति और संभोग मूर्ति । संहार मूर्ति में देवी ने हाथ में खंग, धवल प्रेत :शव: के ऊपर अवस्थित हैं और संभोग मूर्ति में हाथ में पुष्प की माला ले लोहित कमल के ऊपर आसन ग्रहण किया है [1]।

कालिका पुराण में शबरोत्सव नामक एक उत्सव का उल्लेख है । शारदीय पूजा के दसवें दिन शबरोत्सव द्वारा देवी का विसर्जन करना चाहिए । कुमारी नारी, वेश्या और नर्तकी आदि को सुन्दर वस्त्रों से सुसज्जित कर इनके साथ धूल, कीचड़, चावल और पुष्प से खेलना चाहिए और स्त्री पुरुष के गुप्तांग का नाम उल्लेख कर, इनके प्रक्रियापूर्ण गीत सहित विनोद करना चाहिए । यदि कोई इस खेल में योगदान न करे, तो उसके ऊपर भगवती कुपित होंगी और शाप देंगी [2]।

विष्णु ने नरक के अभिषेक समय सावधान कर दिया था कि कामाख्या के अतिरिक्त अन्य देवता का भजन न करना, करने से उसका प्राण नाश होगा । देवी पूजा के क्रमविकास के समय में इसका संबंध विष्णु के साथ था, शिव के साथ नहीं । वैष्णव जन काली व कामाख्या का पूजा को शैवों के विरुद्ध उन लोगों की पृष्ठपोषकता में प्रवर्तित एक नये धर्म के समान बताया । शैवों ने इस धर्म की भविष्य लोक प्रियता और इससे प्रतिद्वंद्विता की आशंका कर जड़ से पृष्ठपोषकों के विरुद्ध उठे और भेद नीति का अवलंबन लिया ।

शिव क्षेत्रों की अधिक संख्या और कामरूप शासनावली के साक्ष्य द्वारा प्रकट है कि प्राचीन कामरूप में शिव भक्ति की प्रधानता थी किन्तु देवी पूजा के संबंध में अत्यन्त उदार मत प्रवर्तित था । प्रत्येक देश के पीठ में स्थानीय रीति से पूजा करने की विधि निर्धारित की गई है किन्तु कामाख्या में व्यक्ति निज देश के विधिनुसार पूजा कर सकता है ।नरक के आख्यान में पाया जाता है, शैव धर्म आदिम किरात जनों का धर्म था । नरक के राजत्व काल के पूर्व भी यह गुप्त भाव से चल रहा था । यह अनुमान किया जा सकता है कि शिव पूजा, विशेषत: शैवाचार, आर्य धर्मावलंबियों के

---

१ - का० पु० ६२।६८।७५

२ - का० पु० ६३।१६

पक्ष में निंदनीय था । परशुराम के भय से अपने को छिपा कर, अनेक बार क्षत्रियों ने म्लेच्छों का वेश धारण कर जल्पीश शिव का आश्रय लिया और निज आर्यभाषा को गोपन कर म्लेच्छ भाषा में बात की । इससे यह प्रकट होताहै कि शिव की पूजा गुप्त रूप से चलती थी और यह म्लेच्छों तक सीमित थी ।[1]

-- कालिका पुराण का प्रधान लक्ष्य शिव की प्रधानता नष्ट कर देवी की [illegible] माहात्म्य वृद्धि है ।

योगिनी तंत्र में कामरूप के समस्त तीर्थों को ६ श्रेणी में विभक्त किया गया है, प्रत्येक श्रेणी को योनि कहा गया है जैसे उपवीथि, वीथि, उपपीठ, पीठ, सिद्धपीठ, महापीठ, ब्रह्मपीठ, विष्णु पीठ रुद्र पीठ । इसी प्रकार समस्त कामरूप को विभिन्न पीठ में विभक्त किया गया-- कामरूप, सौमार, नाथवृक्ष, सौमार पीठ, कौलपीठ, श्रीहार, रत्नपीठ, मणिपीठ इत्यादि । कामरूप में जितने मनुष्य हैं वे सब देवता स्वरूप और यहां पर जितना पानी है वह तीर्थ के समान है, कामरूप स्वयं देवी क्षेत्र, इसके तुल्य कोई स्थान हो नहीं सकता है ।[2] कामरूप का धर्म वैरातक- कामरूप में संन्यास विधि और किसी दीर्घ व्रत का उल्लेख नहीं है । यहां पर हंस, कबूतर शूकर आदि खाया जा सकता है, और रोकने पर दुर्गति होती है ।[3] कंठ भूषण नामक एक ब्राह्मण का पुत्र काशी वेदांत पढ़ने गया वहां छात्रों ने उसे कामरूपी मछली खाने वाला कह घृणा की ।[4]

योगिनी तंत्र के ग्रंथकार ने कामरूप में प्रचलित समस्त आचार, विधि, तीर्थ और [illegible] शास्त्रीय भक्तागम का वर्णन किया है । इसी प्रकार दिव्य योग, वीरयोग आदि रहस्यमय

---

१ - कामदकृता भयाद्भीता क्षत्रिया पूर्व भैरव ये ।
म्लेच्छ रूपमुपादाय जल्पीशं शरणं गता: ।।
ते म्लेच्छ भाषा: सततमार्यां वाचश्च सर्वदा ।
जल्पीशं सेवमानास्ते गोपयन्ति च तं हरम् ।।
:८०।५५।५६

२ - का० पु० १।९१।२३, १।९१।२४

३ - प्रा का० ध०सा० - पृ- १५-१६

४ - अनेक पढ़ुआ सेहि थानत थाकय
कंठभूषणक तारा सबे नौछोवय ।।
कामरूपी विप्र एन्तो मत्स्यक गुंजय।
एहि बुलि छुले स्नान तेसने करय ।।

प्रक्रियाओं की भी व्यवस्था है मुंड साधन की प्रक्रिया में-- मनुष्य का मुंड,बिल्ली का का मुंड,भैंसे का मुंड,यह ३ मुंड या तीन मनुष्य का मुंड लगाने पर त्रिमुंडी होता है । इसी प्रकार शगुन का सिर,सांप का मुंड,कुत्ते का मुंड,गाय का सिर और मनुष्य का मुंड नहीं तो पांच मनुष्य का मुंड एक साथ लगाने से पंचमुंडी होता है । इन मुंडों को मिट्टी में खोद कर गाड़ना चाहिए,उसके ऊपर निर्दिष्ट परिमाण में बेदी सजाना चाहिए । विधि के अनुसार भूतनाथ की पूजा कर बलि देनी चाहिए ।[1]

तांत्रिक षटकर्म के अंतर्गत शांति,वशीकरण,स्तंभन विद्वेषण,मारण और उच्चाटन की प्रक्रिया है । मारण कर्म शव पर करना चाहिए । :४।३ :यो०तं०:

योगिनी तंत्र में विष्णु को जनार्दन कह निर्देश किया गया है केवल तीन जनार्दन क्षेत्र का उल्लेख है -- अश्वक्रांत पर कल्कि रूपी जनार्दन :२।३।३०: नंदन पर्वत के पश्चिम बौद्ध जनार्दन :२।५।२२१: हाजो में हयग्रीव जनार्दन :२।६।३२:

युद्ध विग्रह आदि की यात्रा समय असम में राजा काली व शिव की पूजा करते थे। उसका एक उदाहरण दिया जाता है ।

आहोम राजा प्रतापसिंह के राजत्व काल में,बंगाल और अहोम युद्ध के समय,राजा ने शिव देवी की पूजा की लुइत को,आठ भैंसा ,हंस,कबूतर और बकरी आदि अन्य उपहार की वस्तु दे राजा ने प्रार्थना कर कहा -- "ब्रह्मपुत्र मेरे सम्बन्धी सुप्रसन्न हो अपने स्रोत को तल में फेंक दो । राजा की प्रार्थना पर ब्रह्मपुत्र ने हाजो की स्रोत को नीचे फेंका,और बंगाल की नावें जहां थी,वे सब लग गई ।[2]

नरनारायण कोचविहार के राजा ने अहोमों के विरुद्ध युद्ध यात्रा के समय शिव के आदेशानुसार कछारी रीति के अनुसार शिव की पूजा की । सोन कोष नदी के तट पर थाना गाड़ कर कछारियों को लाकर नचाया और हंस कबूतर,मद,भात,महिष,शूकर मुर्गा बकरा आदि का उपहार दिया,मादल बजा नृतकों ने नृत्य किया ।[3]

---

१ - का० ध० धा० - पृ० १६

२ - देउधाइ बुरंजी -- पृष्ठ ७०

३ - सोन कोष नदरि तरित थाना गारि ।
पातिला नाचन मत आनिया कछारी ।।
हंस,पार,मदभात महिष शूकर ।
कुकुरा ,छागल,उपहार,निरंतर ।।
पातिला नाचन तथा मादल बजाइ ।
सवारो माजत तुलिलंत देउधाइ ।। द०रा०व० पृष्ठ ६३।६४

गोहाइ कमला की आलि को मध्य सीमा कर उत्तर में जितने देव देवी के मंदिर हैं,इनमें कोच मेच पूजा करेंगे और दक्षिण की ओर देवालयों में ब्राह्मण पूजा करेंगे ।

एक ओर शव साधन,मुंड साधन आदि की भयावह प्रक्रिया और दूसरी ओर कुलाचारी मंत्रचारी गणों का मद मांस और स्त्री आदि के साथ भजन होता था । कुलाचारी मद,मछली,मांस,भूचर ..., नभचर और जलचर सब को खाते थे और निज की माता के अतिरिक्त अन्य समस्त स्त्रियों के साथ संगम करते थे [१]।

कामरुप में एक कुमारी की पूजा करने से देवता की पूजा सिद्ध होती है,कुमारी पूजा में जाति भेद नहीं है,किसी भी जाति की कुमारी की पूजा की जा सकती है । जाति भेद करने पर नरक प्राप्त होता है [२]। यदि कुमारी पूजा करने वाला कोई कामी होता है तो वह वैकुंठगामी होता है [३]।

कुमारी पूजा में जिस कुमारी का उल्लेख है वह केवल इस अर्थ में कुमारी है । कुमारी का अर्थ अविवाहिता,अक्षतयोनि नहीं । कुमारी किसी के अधीन नहीं होती ।

---

१ - महामद्यं विना कौल: क्षणार्द्धं न तिष्ठति ।
तस्मान्मद्यादिव्यं देवी सेवितव्यं दिने दिने ।।
मत्स्यं मांसं तस्य देवी जल भूचर खेचरम ।
पूर्वोक्ता च भवेन्मुद्रा सेविता सादरान्विता ।।
मातृ योनि परित्यज्य मैथुनं सर्वयोनिषु ।
क्षतयोनिस्ताड़ितव्या अक्षतां नैव ताड़येत् ।। १।६।१७।४३,४४

२ - एकाहि पूजिता बाला सर्वं हि पूजितं भवेत् ।
जाति भेदो न कर्तव्य: कुमारी पूजने शिवे ।।
जाति भेदान महेशानि नरकान्न निवर्त्तते ।। १।१७।३१।३५

३ - यदि कामी भवेत कोऽपि वैकुंठं परमं व्रजेत ।
मल्लोकं वा महेशानि गच्छेनम मणिमंदिरम ।।
:१।१७।५४ :

कलिका पुराण और योगिनी तंत्र दोनों ग्रंथों में अशेष देव-देवी के पूजा का क्रम है। किन्तु दोनों ग्रंथों की समाप्ति विष्णु के श्रेष्ठत्व कीर्तन से हुई है। दोनों ही ग्रंथकार ऐसा लगता है कि वैष्णव मतावलंबी थे, तथापि ग्रंथकार की दृष्टि से नाना अवैदिक प्रक्रियाओं का वर्णन किया गया है। कलिका पुराण रचयिता ने वशिष्ठ के मुख से कहलवाया है कि कामरूप में म्लेच्छाचार चलेगा और देवी भी बाम पूजा भोग करेंगी और स्वयं विष्णु भी इस स्थान पर पुन: न आयेंगे अर्थात बामाचार प्रतिपादक आगम शास्त्रादि विरले होंगे।[१]

स्वयं महापुरुष शंकरदेव के मत से कलिका पुराण विष्णु माहात्म्य प्रतिपादक ग्रंथ है। गुरुचरित में है जब महापुरुष दूसरी बार कोच बिहार जाने के लिये निकले नारायण ठाकुर के तत्वावधान में व उनकी मूल्यवान वस्तुओं से नाव लादी गई। नाव में समस्त वस्तु लाद दी गई, किन्तु एक छोटी से पोथी मात्र ही नाव पर है। ठाकुर ने महापुरुष से निवेदन किया कि नाव पर पोथी नहीं है, ब्राह्मणों से विवाद करनेपर क्या होगा? महापुरुष ने कहा 'यह छोटी सी पोथी ही सब बाद को खंडन कर सकती है, तथापि यदि पुस्तक चाहिए तो अनेक पुस्तक राजा के घर में है, कृष्ण देव की श्रेष्ठता दिखा दूंगा।[२]

---

१ - स्वयं विष्णुर्नचायाति यावत् स्थानमिदं पुन: ।
विरलाश्चागमा सव प एतत् प्रतिपादका ।। :८४-२३:

२ - समस्ते पुस्तक आछे रजार घरत ।
कृष्णदेव श्रेष्ठ देखाइबो समस्तत ।।
शुनिया ठाकुरे बुलिलंत शंकरक ।
प्रतिपक्षे यदि सिखो देखावे शास्त्रक ।।
कालिकापुराणे यदि आनि देखावय ।
तेबे ना कि हैवे बाप कहियो निर्णय ।।
शंकरे बोलंत शुना मोर अभिप्राय ।
कालिकापुराणे देखाइबोहो तिनि ठाइ ।।
आनो शास्त्र समस्तत हरिकैसे क्य ।
समस्ते शास्त्र जाना रहिसे निर्णय ।।
:द्विज रामानंद - गुरुचरित:

कलिका पुराण में विष्णु माहात्म्य सूचक बहुत बचन हैं।[1]

योगिनी तंत्र का ग्रंथकार स्वयं वैष्णव मतावलंबी जैसा लगता है। स्थान स्थान पर उन्होंने विष्णु को सर्वश्रेष्ठ देवता घोषित किया है।[2] संभवत: विष्णु मतावलंबी होने के कारण ही ग्रंथ कार ने अश्वक्रांत तीर्थ :२।४।३५: और अपूर्णभव :हाजो: के हयग्रीव क्षेत्र का :२।६।२२: अति सुदीर्घ वर्णन और माहात्म्य प्रकाशित किया है।

मणि कूट में हयग्रीव माधव की स्थापना केविषय में कहा जाता है कि उड़ीसा में इन्द्रद्युम्न स्वप्नप्रेरित हो,सागर के पार तक जा,एक वृक्ष के सात टुकड़े किये। उसी का दो भाग काष्ठ कामरूप लाया गया-- उसी के एक भाग से हयग्रीव माधव का और दूसरे भाग से मत्स्याख्य माधव का निर्माण हुआ।[3]

कलिका पुराण के वर्णन में विष्णु पूजा का कोई प्राधान्य नहीं देखा जाता। जिन स्थानों पर वासुदेव विष्णु की पूजा होती थी,उनकी संख्या पांच मात्र है। :क: विष्णु ने हयग्रीव रूप में जरासुर का वध मणिकूट नामक स्थान पर किया :क०पु० ८२।७५: :ख: मणि कूट के पूर्व मत्स्यध्वज पर्वत पर विष्णु मत्स्य अवतार के रूप

---

१ - कामरूपे यथाविष्णु : सर्वश्रेष्ठो महेश्वरि।
कामरूपे तथा देवी पूजा सर्वोत्तमा स्मृता ।। :२।६।४६ यो० तं०:

२ - यथा नारायण: श्रेष्ठो देवानां पुरुषोत्तम: । :२।४।३१ वही :

मणिकू

३ - मणिकूटे ततोद्देव स्थापितं वरुणेन हि।
प्राच्यां नन्दी श्चैशान्ये मत्स्याख्यो नाम माधव: ।।
।माख्यो मणि कूटे च माधवाख्यो व्यवस्थित: ।
यो० तं० २।६।२४४,२४५

में पूजे गए :क०पु० ८२।५०: :ग: पांडुनाथ नामक भैरव की आकृति में रत्नकूट पर माधव की पूजा की गई :क०पु० ८२।६५: :घ: पांडु के पूर्व चित्रवह पर्वत पर माधव की पूजा की जाती थी : क० पु० ८२।७४: उ० दिक्कर वासिनी अंचल में वासुदेव विष्णु की पूजा चलती थी ।

कालिका पुराण में व्याख्या की गई विष्णु पूजा का मंत्र है `ॐ नमो भगवते वासुदेवाय`। उनके साथ और पांच जन संपूरक देवता की पूजा करनी होगी-- राम,कृष्ण, ब्रह्मा,शंभु और गौरी । पूजा में शेष के दो जनों को कभी पृथक नहीं किया जा सकता। वासुदेव के आठ सहचर:योगी: हैं -- बलभद्र,काम,अनिरुद्ध,नारायण,ब्रह्मा,विष्णु और नृसिंह और वराह । नायक वासुदेव और नायिका बिमला हैं । बलभद्र प्रकृति की सहचरी :योगिनी: हैं उत्कर्षिणी,शैया,ज्ञाना,क्रिया,योगा,प्रहवी,ऐशानी और अनुग्राही ... फूल और निरामिष नैवेद्य द्वारा पूजा करनी चाहिए । दंड पद्म आदि अस्त्र और अलंकारादि के पूजा के निमित्त विभिन्न अक्षरी बीज मंत्र हैं[१] ।

---

१ - क० पु० :८३।६०:

द्वितीय अध्याय

शंकरदेव का जीवन वृत्त

शंकरदेव का जीवन वृत:-

शंकर देव के पूर्वज:- शंकरदेव ने स्वयं अपने पूर्वजों का उल्लेख अनेक ग्रंथों में किया है।[1] आभ्यंतर प्रमाणों द्वारा यह स्पष्ट होता है कि लूहपरीया बरदौवा गांव के `महाग्रामेश्वर` राजधर कायस्थ, राजधर के पुत्र सूर्यवर `महाबड़ादेशधर`, सूर्यवर के पुत्र नौमिक शिरोमणि कुसुमवर, कुसुमवर के पुत्र शंकरदेव थे । राजा दुर्लभ नारायण ने राजधर के पिता चंडीवर को सम्मान पूर्वक बठ्ठुवा ग्राम में बसाया तथा उन्हें देवीदास के नाम से विभूषित किया।[2] पूर्णानंद गिरि ने कृष्ण की उपासना कर कृष्णगिरि नामक पुत्र की प्राप्ति की । कृष्ण गिरि भगवन्त सुवर्णादि की आराधना की और इस प्रकार सुवर्णगिरि का जन्म हुआ-- सुवर्णगिरि ने गंधर्वों की आराधना की और गंधर्व गिरि पुत्र का जन्म हुआ-- भगवान के राम रूप की आराधना करने से रामगिरि का जन्म हुआ । रामगिरि के पुत्र हेमगिरि, उनके पुत्र हरिवरगिरि थे । हरिवर गिरि की एक मात्र कन्या थी, वह भी चिरकुमारी। सदाशिव के वर द्वारा कृष्णकांति को लंगिदेव नामक पुत्र उत्पन्न हुआ- लडावर ने चंडी देवी की उपासना की और उनकी भार्या सुभद्रा के गर्भ से चंडीवर का जन्म हुआ ।[3]

जन्म कथा गुरु चरित के अनुसार शंकरदेव का जन्म कार्तिक संक्रांति, वार बृहस्पतिवार १३७५ शक में तथा महाप्रयाण १४९० शक में हुआ ।[4] बरदौवा चरित के अनुसार इनका जन्म `३७५ शक कार्तिक संक्राति अमावस्या तिथि, बृहस्पतिवार अर्द्ध रात्रि को हुआ- भाद्र मास की द्वितीया तिथि को मध्याह्न के पूर्व १४९० शक में इनका तिरोभाव हुआ।[5] रामचरण ठाकुर के अनुसार इनका जन्म पांच दिन व्यतीत होने पर अश्विन मास की शुक्ला दशमी, शुक्रवार को हुआ।[6] दैत्यारि ठाकुर ने भी १४९० शक में शंकरदेव का वैकुंठ

१- शंकरदेव- भागवत षष्ठ स्कंध ५५३४- ३५

२- वही - वही- दशम स्कंध १२९०१-०२

३- उपेन्द्र चंद्र लेखारु- कथा गुरुचरित- पृष्ठ ४-८

४- उपेन्द्र लेखारु- कथा गुरुचरित पृ०

५- डा० म० नेओग- श्री शंकरदेव पृ० ३४

६- वही - वही

गमन लिखा है।[1] रामानंद द्विज के गुरुचरित में शंकरदेव की जन्मतिथि फाल्गुन मास शुक्ल द्वितीया है और जन्म काल अर्द्ध रात्रि है और मृत्यु तिथि भाद्रपद शुक्ला द्वितीया वार बृहस्पतिवार है।[2] रामानंद द्विज ने अपने पिता जो भवानीपुरीया गोपाल आता के शिष्य थे, से सुनकर चरित्र की रचना की। अन्य चरित लेखकों के पीछे रामानंद का रचना काल आरंभ हुआ और इनके इस चरित के वर्णन और अन्य चरितों के विवरण में अधिक अंतर है। डा० महेश्वर नेओग ने जन्म मास फाल्गुन के संबंध में दो तर्क उपस्थित किया है, प्रथम शंकरदेव का गुप्त नाम अर्थात सोवरणि नाम गदाधर था यह प्रवाद है, यह नाम ज्योतिष के अनुसार मकर राशि का सूचक है। दूसरे शंकर का जीवन काल ११८ या ११६ वर्ष और छ: मास का स्थिर किया गया है। आश्विन अथवा कार्तिक में जन्म और भाद्रपद में महाप्रयाण होने से एक वर्ष पूरा नहीं होता । प्राचीन काल में इसे आधा वर्ष ही कहते थे। किन्तु रामानंद ने मकर राशि तथा छ: मास के लेख की गणना कर फाल्गुन मास निकाला यह उनका भ्रम कहा जा सकता है।[3] सार्वभौम भट्टाचार्य के 'शंकर चरित' में मृत्यु के समय शंकरदेव की आयु ११६ वर्ष की लिखी है। रुद्रयामल नामक प्राचीन चरित मूलक ग्रंथ में भी शंकरदेव का निर्वाण शक १४९० और आविर्भाव १३७९ शक लिखा है।

अलिपुखुरी के बरभुइयां वंश के कुसुमदेव की पत्नी सत्यसंधा के गर्भ से १३७९ शक में वर्तमान नवगांव के बरदोवा अंचल में शंकरदेव का जन्म हुआ । इस समय नवगांव और लुइत के उत्तर पार का समस्त अंचल बर भुइयाँ के अधिकार में था। रामचरण के अनुसार कपिली में चामधरा तक और सिंगरी से उत्तर में धिलाधारी तक बरभुइयों का स्थान था।[4] बरदोवा चरित में कालियाबर से लेकर काजली के मुख तक भुइयां लोगों के राज्य का उल्लेख है। भुइयां राज्य के निकट ही कछारी लोगों का देश था अत: राज्य की सीमा, या गोचारण भूमि के संबंध में कभी कभी उन लोगों से युद्ध या विवाद होता था। कुसुमवर की प्रथम पत्नी से कोई संतान उत्पन्न नहीं हुई हुआ और इसलिये उन्होंने

१- दैत्यारि ठाकुर -- गुरुचरित

२- रामानंद -- गुरुचरित

३- डा० महेश्वर नेओग - श्री शंकरदेव पृ० ३६

४- वही पृ० ४५

गोपेश्वर विष्णु की पूजा की।[१] अन्य चरितों के अनुसार उन्होंने शंकर की उपासना की और अपने पुत्र का नाम शंकर रखा। शंकर जब तेरह मास के थे,उसी समय कछारियों ने भुइयाँ राज्य पर आक्रमण किया-- पहले भुइयाँ वन में छिप गए पीछे कछारियों पर अकस्मात आक्रमण कर उन्हें नष्ट भ्रष्ट कर दिया। इसी संघर्ष संक्रांति काल में शंकर देव की सौतेली माँ को एक पुत्र हुआ जिसका नाम हलधर अथवा वन में जन्म होने के कारण वन गञ्यां हुआ । शंकरदेव सात वर्ष के तथा वनगञ्यां दो वर्ष के थे जिस समय कुसुम्बर की मृत्यु हुई। उनके साथ शंकर की माँ का भी देहांत हुआ।[२] रामराय के पिता सत्यानंद ने कर्मकाज किया। कथा चरित में शंकर के माता-पिता की मृत्यु के संबंध में कुछ मतभेद है। शंकरदेव सेल कूद में जब ब्रह्मपुत्र आर पार करने लगे उसी समय कुसुम्बर वैकुंठगामी हुए और सत्यसंध्या भी स्वामी की अनुगामिनी हुईं।[३] कथा गुरुचरित के अनुसार शंकर ने पितृ कर्म किया। भूषण द्विज के चरित के अनुसार शंकर के विवाह के पश्चात उनके पिता की मृत्यु हुई और उनकी मासिक श्राद्ध के पीछे माता का तिरोभाव हुआ ।[४] प्राचीन प्रचलित प्रवाद पर विशेष बल देकर लक्ष्मी नाथ बैजबरुआ ने शंकर की माँ की मृत्यु तिथि उनके जन्म के तीसरे दिन स्वीकार की है।

मातृ-पितृ हीन शंकर का पालन पोषण उनकी आयी :दादी: ने किया-बारह तेरह वर्ष की अवस्था तक वे खेलते कूदते रहे। उसके पश्चात ही महेन्द्र कंदलि की पाठशाला में प्रविष्ट हुए जिस समय शंकर ने पाठशाला में प्रवेश किया पाठशाला कंपने लगा। यहाँ शंकर ने व्याकरण,कोष पुराण,भारत,रामायण,चौदह शास्त्र तथा काव्य आदि का अध्ययन किया ।[५] सर्व प्रथम मार्कण्डेय पुराण की कथा लेकर हरिश्चन्द्र उपाख्यान की रचना की।[६] एक दिन गुरु ने प्रतिभाशाली विद्यार्थियों को बुला कर आदेश किया कि कल प्रातः मुझे अपने उपास्य देव के संबंध में एक एक श्लोक लिख कर देना। छात्रों ने गुरु को प्रणाम कर विदा ली और श्लोक रचना की। शंकर ने भी गुरु की आज्ञा शिरोधार्य कर कृष्ण-स्तोत्र की रचना पूर्ण की। प्रातः काल अन्य छात्रों के साथ शंकर ने गुरु को श्लोक दिया। गुरु ने देखा कि शंकर के श्लोक कवित्व से परिपूर्ण तथा अर्थ की दृष्टि से गहन,

---

१- रामानंद - गुरुचरित पृ० २१-२४

२- वही पृ० ३० पद सं० ११६

३- उ० ले० कथा गुरु चरित पृ० २४

४- द्विज भूषण :- `कतो दिन`- अनंतरे तान पाचे मातृ मरिलंत ।

५- म० ने-- श्री शं० पृष्ठ ४८

और सुनने में अत्यन्त मधुर हैं। शंकर का मुख देख गुरु ने कहा कि किस प्रकार तुमने ऐसा श्लोक लिखा, तुम तो पुस्तक के पत्र भी नहीं जानते, फिर कैसे यह श्लोक जान गए। शंकर की प्रशंसा तब विप्रों ने की।[1] राम चरण के अनुसार सत्रह वर्ष की अवस्था में शंकर ने गुरु गृह त्यागा, किन्तु आचार्य संहिता के अनुसार महेन्द्र कंदलि ने शंकर को दस वर्ष तक पढ़ाया।[2] बेजबरुवा ने भी इस बात की पुष्टि की है। शंकरदेव ग्रंथ में उनकी शिक्षा समाप्ति की तिथि १३८२ दी गई है।[3] अभिप्राय यह है कि हरिश्चंद्र उपाख्यान की रचना २१।२२ वर्ष की अवस्था के पूर्व हुई। शंकर ने महेन्द्र कंदलि की पाठ शाला में योगाभ्यास की भी शिक्षा ग्रहण की।[4] इस योगभ्यास के परिणाम स्वरुप उनका शरीर स्वस्थ एवं सुगठित हुआ।

विवाह :- सूर्य भुइयां की पुत्री सूर्यवती से शंकर का विवाह हुआ- विवाह के समय शंकर २१ वर्ष के तथा सूर्यवती चौदह वर्ष की थीं। सत्रह वर्ष की अवस्था में शंकर की पत्नी ने मनु को जन्म दिया---जब कन्या नव मास की हुई माताका देहांत हो गया।[5] शंकरदेव के चरित लेखकों के विवरण से स्पष्ट प्रकट होता है कि शिरोमणि भुइयां का कार्यालय अलिपुखुरी से बरदोवा तथा बरदोवा से अलिपुखुरी तक लाया और ले जाया गया। शंकरदेव भुइयां अलिपुखुरी में बीस वर्ष तक रहे उसके पश्चात वे टेमनि, टेमनिया, टेमुनिया व टेम्बुवानी बरदोवा जाने को बाध्य हुए।[6] शंकर के विवाह के छह वर्ष पश्चात कछारियों का प्रबल आक्रमण भुइयां राज्य पर हुआ और प्रजागण लूट मार के भय से अरण्य में छिप गए।

पत्नी की मृत्यु :- विवाह के तीन वर्ष पश्चात शंकर की भार्या सूर्यवती के गर्भ से मनु का जन्म पौष मास में आठ दिन व्यतीत होने पर हुआ और मनु केजन्म के बाद नव मास

१- रामानंद द्विज गुरुचरित पृ० ४०-४२

२- म० ने-- शी०शं० पृ० ४६

३- लक्ष्मी नाथ बेजबरुवा- शंकरदेव:म०ने०शं०४६:

४- उ०ले० - का० गु० च० पृ० २६

५- वही ० २६

६- म०ने० - शं० पृ० ५०:बरदोवा चरित:

माता जीवित रहीं और दो दिन आश्विन व्यतीत होने के पश्चात पच्चीस वर्ष की अवस्था में सूर्यवती की मृत्यु हुई। डा० महेश्वर नेओग का मत है कि उस समय शंकर-देव की आयु पच्चीस वर्ष की थी, उनकी पत्नी की नहीं। बेजबरुवा के अनुसार १३८६ शक में मनु का जन्म हुआ इस गणना के अनुसार भी सूर्यवती की अवस्था मृत्यु के समय पच्चीस वर्ष की मानना समीचीन न होगा। पत्नी की असामयिक मृत्यु ने शंकर को चिंतित कर दिया था, सदैव ही वे तीर्थभ्रमण की चिन्ता करते थे। उनकी पुत्री मातृ-विहीन थी, अतः उसके स्नेह का परित्याग न कर सके।[1] एक दिन आश्विन मास व्यतीत होने के उपरांत बुधवार के दिन रामचंद्र कायठ के पुत्र हरि से मनु का विवाह संपन्न हुआ।[2] दैत्यारि इस प्रसंग में मौन हैं। रामानंद ने भी हरिप्रिया का विवाह हरि के साथ लिखा है। एक वर्ष पश्चात शंकर की पत्नी परलोक गामी हुईं। उनका मन क्लान्त हुआ और उन्होंने अहोम राज्य अधिकारी बेजढिला से एक मास का अवकाश लिया।[3] बरदोवा चरित से यह अस्पष्ट रूप से जाना जाता है कि मनु के विवाह के का उपरांत सूर्यवती का देहांत हुआ और शंकर तीर्थ यात्रा के लिए बाहर गए। कथा गुरु-चरित तथा रामचरण ने परिस्फुट रूप से लिखा है कि सूर्यवती की मृत्यु मनु के जन्म के ९ मास पश्चात हुई।[4] डा० महेश्वर नेओग का मत है कि यह विश्वास आज असमिया वैष्णवों के मध्य प्रचलित है।[5]

<u>प्रथम तीर्थ यात्रा :-</u> शंकर ने कमलयांगिरि, बूढ़ा खाँ, मधु, रामराय को एक स्थान पर बुलाया हाँ तथा बनमळयां को घर खेती आदि की समस्त व्यवस्था समझा दी। जयंत दलै को आमंत्रित कर अत्यन्त स्नेह पूर्ण भाव से शंकर ने उन्हें भाई तथा बूढ़ा खाँ के संरक्षण का भार दिया।[6] जयंत माधव आदि समस्त बंधुओं को संबोधित कर शंकर तीर्थ यात्रा के लिए चले। कथाचरित के अनुसार जयंत को राज्य भार तीर्थ यात्रा के पूर्व मिल चुका था। शंकरदेव के साथ सत्रह व्यक्ति तीर्थ यात्रा के लिये गए- इनकी

१- वही पृ० ५३

२- उ०ले० क०गु० च० २६

३- रामानंद - गु०च० ५६

४- उ०ले०-- क०गु०च० पृ० २६

५- म० ने० -- श्री० शं० पृ० ५४

६- रामानंद० गु० च० पृ० ५७

सूची इस प्रकार है :- राम राम, सर्व्वजय, परमानंद, बलोराम बलोभद्र, गोविंद, नारायण परशीराम, गोपाल, छोट बलेराम, मुकुंद, मुरारि, महेन्द्र, कंराले, हरिदास बानेया दामोदर आता तथा दो अन्य जन।[1] रामानंद के अनुसार अनेक जन शंकरदेव के सहित तीर्थ यात्रा को चले, किन्तु बारह व्यक्ति के अतिरिक्त शेष गंगा स्नान कर घर लौट आए और शंकरदेव जगन्नाथ दर्शन के लिये यात्रा गए।[2] डा० महेश्वर नेओग का मत है कि तीर्थ यात्रियों की यह नाम तालिका प्रामाणिक नहीं है क्योंकि इनमें से कई व्यक्ति शंकरदेव से उस समय तक परिचित न थे और इन्हें शंकरदेव का सम्पर्क पीछे प्राप्त हुआ रामानंद के अतिरिक्त किसी ने नहीं लिखा है कि बारह व्यक्तियों को छोड़ शेष यात्री घर वापस चले आए।[3]

शंकर की तीर्थ भ्रमण कथा का वर्णन प्रत्येक चरित्र में भिन्न रूप में अंकित किया गया है। रामानंद तथा दैत्यारि के अनुसार शंकरदेव जगन्नाथ क्षेत्र में अधिक दिन ठहरे। रामानंद, रामचरण, बरदोवा चरित द्वारा तीर्थ यात्रा का विस्तृत विवरण प्राप्त किया जा सकता है। पुनर्भवा करतोया में सर्व प्रथम स्नान कर के गंगा के चिलिपुर घाट पर स्नान दान किया इसके पश्चात गया जाकर फल्गु के तीर पर दान दक्षिणा दी और चौदह पुरुषों को पिंड दान किया।[4] यहां तक पहुंचने में नो दिन कम तीन मास लगे---गंगा घाट पर नौ दिन लगा। गंगा से गया तक जाने में दस दिन का समय व्यतीत हुआ--- गया में तीन दिन रहे थे पुन: गंगा घाट लौट आए---इस यात्रा में दस दिन लगा। वहां से तीन सप्ताह पूर्ण होने के पश्चात वे जगन्नाथ पुरी पहुंचे। किंतु वे अधिक दिन जगन्नाथ पुरी न ठहर सके।[5] कथा गुरुचरित में इस समय की जगन्नाथ यात्रा का उल्लेख नहीं मिलता। गया से शंकरदेव काशी-विश्वेश्वर के धाम वाराणसी पहुंचे और स्नान दान किया। प्रयाग में मुंडन करा के अक्षय बट का दर्शन किया---गंगा यमुना के संगम में स्नान किया। वहां से राम की पवित्र भूमि अयोध्या गए और सरयू में स्नान किया। नन्दिग्राम में भरद्वाज आश्रम का दर्शन किया और वहां कुछ दिन ठहरे। कई दिन यात्रा करनेके पश्चात वे अपने कृष्ण देव के वृंदावन- गोकुल पहुंचे। यहीं राधा नामक सन्यासी ने शंकर की शरण ली। कालीदह में स्नान कर कालिंदी के तट

१- उ०ले० क०गु० च० पृ० २६

२- रामानंद - क० गु० च०-५८पृ०

३- म० ने० --- श्री० शं० पृ० ५५०

४- उ० ले० - क० गु० च० - पृष्ठ ३०

५- म० ने० --- श्री० शं० पृ० ५६

पर ठहरे। यहीं रूपसनातन, तथा बृंदाबन दास ने शंकरदेव को गुरु मान कर शरण ली।[1] बरदौवा चरित के अनुसार शंकरदेवा ने इस बार पंडों के सम्मुख ब्रह्मपुराण से जगन्नाथ महात्म्य की व्याख्या की। रामानंद ने भी स्पष्ट लिखा है कि लौटने के पूर्व वे पुरुषोत्तम क्षेत्र में चार-पांच मास रहे और जगन्नाथ यात्रा के समय इन्होंने चैतन्य से साक्षात्कार भी किया। रामानंद ने इस देखा-देखी का वर्णन अत्यन्त रोचक ढंग से किया है। शंकरदेव पूर्व दिशा में तीर्थयात्रियों के साथ खड़े थे और चैतन्य पश्चिम दिशा में थे। चैतन्य ने शंकर को देख अपने शिष्यों से इनके संबंध में पूछा। एक ब्रह्मचारी ने उत्तर दिया कि वे पूर्वदेशी महंत शंकर हैं। शंकरदेव ने भी चैतन्य के विषय में नागरिकों से पूछा। नागरिकों ने चैतन्य का परिचय दिया। इन दोनों महापुरुषों की देखा देखी दूर से हुई- आपस में कोई बातचीत न हुई।[2] डा० नेओग का मत है कि रामानंद की धारणा भ्रांतिपूर्ण है। किसी अन्य चरित्र में यह बात नहीं मिलती है। द्वितीय बार की तीर्थ यात्रा में शंकर चैतन्य की देखा देखी हुई थी, यह वर्णन अन्य चरितों में मिलताहै, संभवत: इसी कथा कोउन्होंने प्रथम तीर्थ यात्रा की कहानी समझी हो । तीसरी और मूल बात तो यह है कि दो बार की तीर्थ-यात्रा में शंकर चैतन्य का मिलन संभव नहीं। ३२ वर्ष की अवस्था से शंकरदेव ने तीर्थ यात्रा आरंभ की और ४४ वर्ष की अवस्था में वापस आ गए। १४०३ शक में, चैतन्य का जन्म ही हुआ न था-- निमाइ १४१५ शक में नदिया में सात आठ वर्ष के पाठशाला के बालक थे---क्योंकि उनका जन्म १४०७ शक में हुआ[3] ।बरदौवा चरित के अनुसार बृंदावन के अनेक पंडितों को शंकर देव ने तर्क में परास्त किया और यहीं उनकी भेंट रुप सनातन से हुई। इनके संबंध में यह कहाजाता है कि ये पहले विधवा ब्राह्मणी के पुत्र थे, यवन राजा को कोई पुत्र न था, इसलिए इन दोनों को ले, रूप को युवराज नियुक्त किया। इन लोगों को यह राज्य का कार्य रुचिकर नहीं लगा, इन्होंने राज्य का परित्याग किया। रामानंद ने शंकरदेव और रूप-सनातन के मिलन का उल्लेख नहीं किया है। यद्यपि रुप सनातन की कहानी विस्तार पूर्वक अंकित की गई है। रामानंद के अनुसार इन दोनों का जन्म दाक्षिण परिवार में हुआ और एक यवन कुल के अधिकारी थे।[4] श्री श्री चैतन्य के

१- उ०ले० -- क० गु० च० पृ० ३०

२- रामानंद०- गु०च० पृ० ६०-६१

३- म०ने०- श्री० शं० पृ० ५७

४- रामानंद -- गु०च० पृ० २४१

चरितों में रूप सनातन की कहानी अन्य रूप में लिखी गई है। रूप सनातन का शंकरदेव के साथ क्या संबंध था, यह विचार का विषय है संभव है कि रूप-सनातन की युवावस्था में शंकरदेव की उनसे भेंट हुई हो, पर यह स्पष्ट नहीं कहा जा सकता कि उन्होंने शंकरदेव का भक्ति-धर्म ग्रहण किया होगा। निसंदेह रूप-सनातन शंकर के भक्ति धर्म के अनुयायी अंत तक न रहे, हो सकता है आरंभ में वे शंकरदेव से व्यक्तिगत रूप में प्रभावित हुए हों। द्वितीय बार की तीर्थ-यात्रा के वर्णन में रूप-सनातन का नाम आता है। शंकरदेव की इच्छा थी कि वृंदावन की यात्रा की जाय, किन्तु कालिंदी जाने के लिए असहमत थीं। उस समय शंकरदेव ने रूप-सनातन को एक शरण के धर्म का प्रचारक कहा है और उनको देखने की इच्छा प्रकट की है। शंकरदेव ने मुख, मुख, ताल, कुंज, मुंज, निकुंज, खाजूर अशोक, मंदारि कादम्बरिद्र, अशोक वेशीप।८, बंसी वट का दर्शन कर यमुना में स्नान किया। गोवर्धन पर अधिक दिन ठहरे। पांडवों के स्थान हस्तिनापुर और इन्द्रप्रस्थ में एक वर्ष रुके। कृष्ण-गोपियों की लीला भूमि का दर्शन करने के उपरांत वे बद्रिकाश्रम पहुँचे। वहां से नेपाल, नैषध, वैकेउ, कैवल्य, द्रविड़ पांचाल तथा श्वेत द्वीप आदि देश, राज्य का भ्रमण किया। केसरी- कावेरी में स्नान किया- नाग्री कासी, विन्दु काशी में कुछ दिन ठहरे - सोनामा में स्नान किया और उप द्वारका पहुँचे।[१] अगर, नगर, चंद्रावती ग्राम, रामेश्वर सीता कुंड, सुबाहु नगर, विदिशा नगर, दंडक वन, चित्रकूट पर्वत, गोदावरी, गोमती नदी, पंचवटी आश्रम ऋष्यमूक पर्वत, किष्किंधा, पुष्करावती, मरुद्वार, हरिद्वार जयद्वार, नर्मदा[२], महानदी, कटक नगर उड़ीसा राज्य का भ्रमण कर वे पुन: जगन्नाथ पुरी पहुँचे।

<u>पुनर्विवाह का प्रस्ताव</u>:- तीर्थ यात्रा से लौटने के पश्चात शंकर पुन: सांसारिक बने। उस समय उनकी धाई: दादी: सेरसुती अत्यन्त वृद्ध हो गई थी प्रथम बार ही उनके पौत्र के कोई पुत्र उत्पन्न न हुआ, उनके मन में अशांति थी। एक दिन शंकर की सेरसुती माता ने शंकर से कहा कि आगे कोई संतान नहीं है, यदि इच्छा हो तो एक कन्या का प्रबंध करें। सर्व प्रथम शंकरदेव ने विवाह को जंजाल कह अस्वीकार कर दिया। इसे सुन बूढ़ी माता को अधिक कष्ट हुआ। दूसरे दिन राम सा रूपसा, गाभूसा, केताइ सा, बूढ़ासा, हरिसा मुख्यां ने मिल कर शंकरदेव को पकड़ा इस दशा में शंकरदेव इन लोगों का आग्रह टाल न सके और

१- उ०ले० क० गु० च० पृ० ३१

२- वही ० पृ० ३२

अच्छा कह विवाह की स्वीकृति दी। ५४ वर्ष की अवस्था में शंकर का दूसरा विवाह ग्यारह वर्षीया कालिंदी के साथ हुआ।[1]

भेलाकथा के अनुसार तीर्थ-भ्रमण से लौटने और बूढ़ी मां सत्यसंधा के देहांत के पश्चात् कालिका भुइयाँ की पुत्री कालिंदी से शंकर ने विवाह किया। डा० नेओग का मत है कि यह विवाह १४२५ शक में संपन्न हुआ।[2] शंकर का राज्य कार्य में मन न लगा- यह देख सब भुइयों ने मिलकर शंकर को गोमोस्ता नियुक्त किया। बरदौवा चरित के विपरीत भूषण द्विज ने लिखा है कि शंकर को तीस घर तंत्रीगिरि के ऊपर गोमोस्ता नियुक्त किया गया, तथापि शंकर ने इस दायित्व को हरि जोंवाई को सौंप दिया।

विवाह के पश्चात् शंकर केवल पांच वर्ष अलिपुखुरी में रहे। उसके उपरांत शास्त्र रस तत्त्व से हरि कीर्तन और कृष्ण कथा करने लगे। वहाँ उन्हें अनेक कंगाल मिले- फलस्वरूप उन्होंने राम राम गुरु, नरोत्तम, बलुबुढ़ा, रामचरण, परमानंद और सर्व राम--नर सी राम, बूढ़ा देका, जयानंद पर बलोराम, नरसिंह, नारायण, ठाकुरिया नारायण, गोविंद हरि इत्यादि के साथ बातचीत की और कुंआबारी[3] से पुराने छोड़े हुए ग्राम पहुँचे। यहाँ घर की नींव खोदते समय वासुदेव की मूर्ति निकली। रामचरण और भूषण द्विज के अनुसार शंकर इस बार बरदौवा के पास गंगमाऊ में ही रहे, शंकरदेव गंगमाऊ में छः मास तक रहे यह कथाचरित में लिखा है। इस बार लगभग ६० वर्ष की अवस्था में अर्थात् १४३१ शक में शंकर बरदौवा चले गए। राम चरण, दैत्यारि कथा और बरदौवा चरित के अनुसार तीर्थ भ्रमण करने के पूर्व बरदौवा में कीर्तन घर का निर्माण करते समय चतुर्भुज-विष्णु मूर्ति प्राप्त हुई और उसकी स्थापना शंकर ने की।[4]

<u>धर्म प्रचार</u>:- शंकरदेव ने प्रथम तीर्थ भ्रमण के काल में अनेक धार्मिक स्थानों की यात्रा की और उन स्थानों की उपासना पद्धति को भी देखा गीत, पद, महिमा, छप्पय आदि गा, खोल इत्यादि से हरिकीर्तन की प्रणाली निश्चित की। उन्होंने वृंदावन, मथुरा, उड़िसा वाराणसी आदि स्थानों से सीखा और इसका असम में प्रचलन किया। कीर्तन में स्पष्ट

१- उ० ले०--- क० गु० च० पृ० ३४

२- म० ने० --- श्री० शं० पृ० ७०

३- उ० ले०--- क० गु० च० पृ० ३४

४- म० ने० --- श्री० शं० पृ० ७२

लिखा है 'उरेषा वाराणसी ठावें ठाये,कबीर गीत शिष्ट सबै गावै।' उनके नाटकों पर पश्चिमी रास लीला का अधिक प्रभाव है। नाम घर,मणिकूट सजा,सक ति स्थापना कर नाम कीर्तन कर धर्म प्रचार करना,उन्होंने पश्चिम बिहार में प्रचलित प्राचीन बौद्ध विहारों से लिया है,ऐसा अनुमान किया जा सकता है यह ध्यान देने योग्य है कि शंकर ने चिन्ह यात्रा का अभिनय प्रथम तीर्थ भ्रमण के पूर्व किया था[१]। भागवत स स्कंध स।एकनाम का नाम,गीता का एक शरण,इन तीन वस्तुओं को व्यक्त किया।[२]इस समय से उन्होंने धर्म प्रचार की ओर अधिक ध्यान दिया।

भक्तिप्रदीप तथा रुक्मिणी हरण की रचना :- बरदौवा में ही शंकर ने गरुड़ पुराण का आधार ले भक्ति प्रदीप की रचना की तथा हरिवंश से रुक्मिणी हरण काव्य की रचना की।[३] बेज बरुवा ने भक्ति प्रदीप को पाटबाउसी में रचित कहा है। डा० महेश्वर नेओग का मत है कि युक्ति की धार,रचना प्रणाली आदि अंतरंग प्रमाण द्वारा यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि यह उनके प्रारंभिक काल की रचना है। छंद लालित्य तथा तत्व गांभीर्य के मध्य षष्ट अध्याय के नाम महिमा वर्णन में अंत पोथी में सन्निवष्ट शंकर की लेखनी में कहीं ऐसा गांभीर्य नहीं है। शंकरदेव कृत 'भक्ति रत्नाकर',माधवदेव कृत 'भक्ति रत्नावली',भट्टदेव के 'भक्तिविवेक' आदि प्रकरणग्रंथ की कोटि में इसे स्थान नहीं दिया जा सकता और न उनके साथ इनकी तुलना ही की जा सकती है। बरनगर के भवानंद साउद जिस समय शंकर के शिष्य हुए और गुरु ने उन्हें नारायण नाम दिया। नारायण ने विदा होते समय भक्ति प्रदीप की प्रति प्रार्थना कर प्राप्त की और घर में उचित आसन पर रख परिवार के प्रत्येक व्यक्ति को कृष्ण देव की शरण में लाया।[४] भक्ति प्रदीप में उन तीर्थों के नाम आए हैं जिनकी यात्रा शंकर ने की थी। निश्चित ही यह रचना उनके प्रथम-तीर्थ भ्रमण के बाद की है। इसके अतिरिक्त शंकर ने रुक्मिणी हरण आख्यान को ले एक काव्य और नाटक की रचना की । शंकर ने भागवत के सार,

---

१- म०ने०-- श्री० शं० पृ० ७२

२- उ०ले० -- क० गु० च० पृ० ३४

३- वही पृ० ४५

४- म० ने० -- श्री० शं० पृ० ७३

हरिवंश के मिश्रण से रुक्मिणी हरण तथा कुरुक्षेत्र की रचना की। रुक्मिणी हरण नाटक में रामराम का नाम मिलता है ---यह उत्तर काल की रचना है।[१] यह निर्विवाद है कि रुक्मिणी हरण काव्य की रचना बरदौवा में हुई।--- केशवरुवा रुक्मिणी हरण काव्य को शंकर के युवा काल की रचना मानते हैं। डा० बाणीकांत काकति ने स्पष्ट संकेत द्वारा यह दिखाया है शंकरदेव के प्रारंभिक जीवन की रचनाओं में `कायस्थ शंकर` शब्द और शेष काल की रचनाओं में `कृष्णर किंकर` अंश रहता है। `कायस्थ शंकर` का उल्लेख रुक्मिणी हरण काव्य में अनेक स्थान पर हुआ है अत: यह युवा काल की रचना का स्पष्ट संकेत देता है।

भागवत:- जगदीश मिश्र द्वादश स्कंध भागवत ले शंकर के गांव पहुंचे। यहां उन्होंने लोगों से शंकर का कौन घर है पूछा । शंकर स्वयं चार पग आगे बढ़े और चौकी पर शास्त्र को स्थापित किया। जगदीश मिश्र ने अपना परिचय देते हुए बताया कि मैं तिरुतिया ग्राम वाराणसी का हूं और ब्रह्मानंद की पाठशाला में बारह वर्ष तक अध्ययन किया है,गुरु ने मेरा नाम जगदीश रखा है। मुझे बारह स्कंध कंठस्थ है,मैं इसे जगन्नाथ को सुनाने गया था। जगन्नाथ ने जगदीश मिश्र को स्वप्न में आदेश दिया कि पूर्व देश के शंकर को भागवत सुनाओ[२] । दैत्यारि ने लिखा है कि जगदीश मिश्र के बरदौवा आने के समय शंकर अपने फूफा के यहां गामीर गए थे।[३] यह निर्विवाद है कि जगदीश मिश्र तथा शंकरदेव का मिलन हुआ। जगदीश मिश्र एक स्कंध की व्याख्या एक मास तक करते थे,इस प्रकार एक वर्ष में यह व्याख्या पूर्ण हुई। डा० महेश्वर नेओग का मत है कि जगदीश मिश्र के आने के पूर्व असम-कामरूप में भागवत का प्रवेश हो चुका था। इसके पूर्व शंकर ने उद्धव संवाद की रचना की थी। शंकरदेव के कामरूप आनेके पूर्व पीतांबर कवि ने दशम स्कंध का रूपांतर किया था[४] । रामानंद गुरुचरित में जगदीश मिश्र के स्थान पर जगन्नाथ का नाम मिलता है[५] । जगदीश मिश्र,विष्णु पुरी सन्यासी के शिष्य

१- वि० कु० ब० -- अं० नाट पृ०

२- म० ने० -- श्री० शं०

३- उ० ले० --- क० गु० च०- पृ० ३५

४- दैत्यारि --- गुरुचरित - पृ०

५- म० ने० --- श्री० शं० - पृ० ७६

रामानंद--- गुरुचरित - पृ०

ब्रह्मानंद के शिष्य थे। अत: ऐसा प्रतीत होता है जगदीश मिश्र भागवत टीका सहित लाए थे। बेजबरुवा ने लिखा है कि जगदीश ने 'सात्वत तंत्र' और पंचरात्र भी पढ़ कर सुनाया था।[1] मूल को देख प्रथम से द्वादश स्कंध तक आठ स्कंध पद्यात्मक पद किया तथा उद्धव संवाद की रचना की। जगन्नाथ की कृपा वर्णन के निमित्त उड़ीसा के इक्कीस कीर्तन की रचना पूर्ण की।[2]

शंकर को काव्य तथा नाट्य शास्त्र की पूर्ण शिक्षा गुरु के निकट संपर्क द्वारा प्राप्त हुई, इसके अतिरिक्त बारह वर्ष के तीर्थ भ्रमण में जो अभिज्ञता प्राप्त हुई उसका योग उन्होंने अपने प्रथम अंक नाटक में किया। चिन्ह यात्रा नामक नाटक लिखकर स्वयं उसका अभिनय कराया। यह चिन्ह यात्रा, असमिया संगीत तथा नाट्य साहित्य के इतिहास का गौरवपूर्ण पृष्ठ है। बरदौवा चरित के अनुसार कांत दलै के नाती, शतानंद दलै के पुत्र जगतानंद के :पीछे इनका नाम राम राम हुआ: अनुरोध पर इस उत्सव का आयोजन हुआ । जगदीश मिश्र को महानाटक दिखाने और चिन्हयात्रा करते समय शंकर ने ओजा पालि नृत्य का आयोजन किया था। चिन्ह अर्थात 'सात बैकुंठ' चिन्ह अंक में अन्य अंक नाटकों की भाँति धेमालि घोष की बाद श्लोक, नाट, सूत्र, भाटिमा और तिमिर वायुमंडली तथा मेघ मंडली आदि राग के गीत-सुर से परिपूर्ण है। पात्रों के संवाद का उल्लेख किसी भी चरित में प्राप्त नहीं है। समय के अनुसार गायक, वादक तथा नर्तक को भी सुसज्जित किया गया। मृदंग, बरताल तथा छोटताल को नए ढंग से गढ़ाया गया। रंगघर, छो घर का निर्माण इस नाटक के अभिनय के लिये किया गया। चिन्ह यात्रा के हेतु शंकर ने पुष्पक आदि सात बैकुंठों का चित्र कपास, कुंकुम तथा हरताल की सहायता से अंकित किया।[3] राम चरण के मत से १६ वर्ष की अवस्था अर्थात १४६० शक में इस चिन्ह का अभिनय हुआ । कथा गुरु चरित तथा बरदौवा चरित के अनुसार इसका अभिनय बरदौवा में शंकर के निवास काल में ही हुआ-- इसी समय से फागुना उत्सव का प्रवर्तन भी प्रारंभ हुआ। चिन्ह यात्रा का अभिनय प्रथम तीर्थ भ्रमण के पश्चात हुआ

१- म० नै०---श्री० शं० पृ० ७७

२- उ० ले०-- क० गु० च०-- पृ० ३६

३- म० नै० -- श्री० शं० -- पृ० ८२

यही अधिक समीचीन लगता है और इस समय से लोगों ने भक्ति-धर्म की शरण ली। चिन्ह माआ में अभिनताओं ने संबाद किया था या नहीं-- इस संबंध में दृढ़ विश्वास के साथ कुछ भी नहीं कहा जा सकता है।[1]

कीर्तन घोषा :- सर्व प्रथम भागवत का सार ले शंकर ने कीर्तन के छंद, उसके बाद अन्य प्रकार के छंद, गीत, पद, भटिमा, कथा, श्लोक आदि लिख उड़ेसा के एक्कीस कीर्तन, पाषंड कीर्तन, अजामिल उपाख्यान और प्रह्लाद चरित्र की रचना की। कीर्तन घोषा का अधिकांश भाग बरदौवा में लिखा गया। बेजबरुवा के अनुसार शंकर को ४४ वर्ष की अवस्था में जगदीश मिश्र से भागवत की प्रति प्राप्त हुई। डा० महेश्वर नेओग का मत है कि वे ४४ वर्ष की अवस्था में अलिपुखुरी लौटे। जगदीश मिश्र ने बरदौवा में ही शंकर को भागवत दिया। कीर्तन घोषा के अधिकांश खंडों की रचना बरदौवा में हुई। डा० नेओग के अनुसार यह कार्य १५३१ से १५३८ के भीतर हुआ । अवश्य ही कुछ अध्याय बेलगुरी में लिखे गए। दैत्यारि तथा कथागुरुचरित के अनुसार :धूवाहाट: में प्रवास करते समय कीर्तन घोषा का उड़ेसा वर्णन गाया गया, दवना पुष्प की गंध उठी।[2]

पाषंड मर्दन :- कथा गुरुचरित में पाषंड मर्दन रचना की पृष्ठभूमि दी है।[3] शंकरदेव के बेलगुरी धूवाहाट पहुंचने के पूर्व वहां बौद्ध मत के दो टाटकिया :सिद्ध: रहते थे--एक था व्याधिदूत,था वैद्य। ये दोनों लोगों को झाड़ फूंक कर ठीक करते थे, लोग प्रसन्न हो इन्हें धान तथा द्रव्य दिया करते थे। इस प्रकार इस मत का प्रचार हो रहा था। गुरु ने यह सुन पाषंड मर्दन के कीर्तन गा दिया---भक्तों ने भी कीर्तन आरंभ की।[4] पाषंड मर्दन में तीर्थ भ्रमण के अनेक स्मृति अंतर्निहित है, उरेसा वाराणसी ठावे ठावें। कबीर गीत शिष्ट सबे गावें। पाषंड मर्दन संभवत: शंकर माधव मिलन के पश्चात लिखा गया। पद्मपुराण के स्वर्ग खंड की कथा वस्तु को ले शंकर ने `नामापराध` की रचना की। पद्म पुराण के कुछ प्रसंग पाषंड मर्दन में भी है -- इससे ऐसा प्रकट होता है जैसे दोनों एक व समय की रचना हों।

१- वही --- पृ० ८५

२- म०नै० -- श्री० शं०---पृ० ८६

३- उ० ले० -- क० गु० च० -- पृ० ४५

४- वही ---- पृ० ४५

गुणमाला :- शिंगरी परित्याग के पश्चात शंकर गांभो में सत्र की स्थापना कर रहते थे यहीं शतानंद व देवीदास नामक देवी-उपासक को उन्होंने शिष्य बनाया और गुणमाला पुस्तक उसे दी।[1] इसके द्वारा यह समझा जा सकता है कि इस पुस्तक की रचना बरदौवा प्रवास काल में हुई। होगी ठाकुर आटा को शरण देने के समय, धूनधारा में यही पुस्तक उन्हें दी गई, यह विवरण चरित पुस्तकों में मिलता है। भूषण द्विज के अनुसार राजा के गरमालि गुण माला लीलामाला के कृष्ण गुण गाते थे। गुणचिंतामणि गुणमाला का दूसरा नाम है। एक दिन राजा नरनारायण ने शंकर से सम्पूर्ण भागवत लिख देने को कहा- उन्होंने एक रात में प्रथम अध्याय की रचना कर सम्पूर्ण कर दिया।[2]

प्रथम तीर्थ भ्रमण के पश्चात शंकरदेव सात वर्ष तक अपने भक्तों सहित बरदौवा में रहे तथा प्राय: ६७ वर्ष की अवस्था में :१४३८ शक में: वे उत्तर पार के आसम :आहोम: राज्य के भीतर प्रविष्ट हुए। इस समय से ही शंकर के वंश का भुइयांगिरि या भूमि अधिकार लुप्त हुआ। बरदौवा चरित के अनुसार शिंगरी में एक रात, कथाचरित के मतानुसार रोटा में छ मास--- धिलाधारी में एक रात और बेजबरुवा के अनुसार मलुआगुरि में डेढ़ मास और कोमोरा कूटा में कुछ दिन रह वे बूढ़ी गंगा से गांग मुख अथवा गांभो पहुंचे।[3]

गांभोर से चले जाने के पश्चात शंकर कोमोराकटा चार मास ठहरे। बेजबरुवा ने बरदौवा चरित पर निर्भर हो यह लिखा है कि वे हाथिया दले अथवा माधवी दले आदि लोगों के अनुचित व्यवहार से विरक्त हो बेलगुरि कोमोराकटा चले आए और वहां छ: मास रहे। इन दोनों प्रमाणों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि शंकरदेव के प्रथम पुत्र रामानंद का जन्म गांभो में हुआ। चांगनि में छ मास प्रवास कर शंकर धूवाहाट चले गए- गांभो में ही जयंत माधव की मृत्यु हुई।[4] कथाचरित के मतानुसार चागिंनि कोमोराकटा के सब स्थान पानी के नीचे आ गए- यह देख वे मलूवार आटि चले गए। किसी के अनुसार बरठाकुर रामानंद का जन्म यहीं हुआ। डा० नेओग का मत है कि गांभो में इनका जन्म होना अधिक संभव है मलुवार आटि में दो मास ठहर, लुइत के पार उत्तर लखीमपुर के अंतर्गत नारायणपुर के समीप संभवत: माजुलि के धूवाहाट व बेलगुरि कहे जाने वाले स्थान में रहे।

१- म० ने०-- श्री० शं० ६९

२- म०ने० --- श्री० शं० पृ० ६९

३- वही पृ० ६३

माधव मिलन :- कथा चरित के अनुसार ३३ वर्षीय माधव ने शंकरदेव की ७७ वर्ष की अवस्था में भेंट की[1] अर्थात यह मणि कांचन योग १४४४ शक में हुआ। माधव और उनके बहनोई गयापणि शंकर से धूवाहाट में मिले।

कीर्तन घोषा की खंड रचना -- डा० महेश्वर नेओग के अनुसार शंकर चौदह वर्ष तक धूवाहाट में रहे बेजबरुवा के अनुसार वे यहाँ १८ वर्ष रहे। इस समय नारायणपुर अंचल में किसी प्रकार की अशांति नहीं थी न किसी शत्रु का आक्रमण ही हुआ। आहोम शासन के अंतर्गत भुइयां लोग धूव हाट में एक प्रकार स्वायत्त शासन करते थे--रामराम तथा हरि जवाई इस शासन सूत्र का संचालन कर रहे थे।[2]

इस समय शंकर माधव ने सब चिन्ता छोड़ भक्ति प्रचार आरंभ किया। हरिकीर्तन की ध्वनि धूवाहाट बेलगुरी के गगन को भेदने लगी। शंकर ने प्रहलाद चरित्र[3] और शिशु-लीला की रचना यहीं पूर्ण की। कंसबध तक के पद यहीं लिखे गए। डा० नेओग के अनुसार कीर्तन के प्रहलाद चरित्र अंश की रचना बरदोवा में हुई।

बेजबरुवा के मत से शंकर के द्वितीय और तृतीय पुत्र कमललोचन और हरिचरण का जन्म गांमों में हुआ-- रामचरण के अनुसार पुत्री हरिचरण और रुक्मिणी का जन्म धूवाहाट में हुआ । कथा चरित के अनुसार कमल लोचन हरिचरण व पुत्री रुक्मिणी अथवा विष्णुप्रिया का जन्म बेलगुरी में हुआ कालिंदि आइ के परामर्श से शंकर ने जब माधव को विवाह के लिये पकड़ा, उस समय रुक्मिणी की अवस्था विवाह योग्य थी।[4] शंकर की पुत्री विष्णुप्रिया की मृत्यु रात में शय्या पर हुई।[5]

पुरोहितों तथा पंडितों का विरोध :- शंकरदेव जिस समय बेलगुरी में नाम प्रसंग की चर्चा कर रहे थे, उस समय अनेक व्यक्तियों ने भक्ति धर्म ग्रहण किया, क्योंकि इसका द्वार प्रत्येक के लिये खुला था। रत्नाकर कंदलि, व्यास कलाइ, हरि मिश्र, जयराम आदि ब्राह्मण पंडितों ने इस समय शंकर की शरण ली। शंकरी-धर्म-प्रचार के पूर्व सर्वसाधारण हिन्दू

१- वही -- पृ० ११८

२- वही -- पृ० ११०

३- वही -- पृ० १११

४- म० ने० -- श्री० शं० पृ० ११२

५- उ० ले०- क० गु० च०-- पृ० १००

पुरोहित तथा पंडित समाज के हाथ में थे। अधिकांश लोगों ने एक शरणीय मत को ग्रहण किया शूद्र शूद्र को नाम मंत्र देने लगे, इस प्रकार विपरीत कार्य आरंभ हुए- वे देवी की पूजा न कर पंडितों के वचन का खंडन करते हैं- शंकर की शिक्षा से काठ की माला जपते हैं। समस्त लोक बौद्ध मत लेकर भ्रष्ट हो गए हैं। यह स्थिति देख वासना आचार्य ने ब्राह्मणों को संबोधित करते हुए कहा कि जहां ऐसे भक्त दिखाई दें उनकी माला उतार लो, वे अपमानित होंगे। श्रीधर भट्टाचार्य ने भी अपनी सम्मति दी। ब्राह्मणों ने देखा कि शूद्र होकर भी लोग भागवत पढ़ते हैं और ब्राह्मणों को शिक्षा प्रदान करते हैं--इस प्रकार इन लोगों ने ब्राह्मणों की वृत्ति को नष्ट कर दिया है। इस निर्णय के पश्चात लोग भक्तों की माला उतारने लगे और कूकूर की पूंछ पूंछ से मारने लगे-- इन भक्तों की वितंडा करने लगे और भक्तों की नाना प्रकार से कदर्थना करने लगे। ब्राह्मणों से भक्तों को नाना प्रकार के कष्ट मिले, एक दूसरे आलोचना कर भक्त शंकर के निकट गए।[१]

बूढ़ाखां भरुवा के पितृश्राद्ध के समय ब्रह्मानंद भट्टाचार्य तथा अन्य पंडित गण उपस्थित थे इसी समय शंकर माधव आदि भक्तों के सहित वहां आए। यहीं शंकर तथा भट्टाचार्य से अनेक विषयों पर तर्क हुआ। शंकर ने ब्रह्मानंद को संबोधित करते हुए कहा कि आप सब पंडितों में श्रेष्ठ हैं, आप बताइए कि कलियुग में शास्त्रों के अनुसार महापातकी का क्या धर्म है ? ब्रह्मानंद भट्टाचार्य कुछ समय के लिए मौन थे- सोच विचार करने के उपरांत उन्होंने कहा कि पुराण, भागवत, भारत गीता आदि शास्त्रों का यही निर्णय है कि कलियुग में नामधर्म के अतिरिक्त अन्य धर्म द्वारा व्यक्ति का उद्धार नहीं हो सकता है।[२]

<u>मदन गोपाल मूर्ति निर्माण :-</u> करोता बढ़ई को शंकर ने आदेश दिया कि काष्ठ की ऐसी मूर्ति का निर्माण करो, जिसे लोग हरि समझें । करोता बढ़ई अत्यन्त आनंदित हुआ और बेल का एक खंड काष्ठ उठा लाया। प्रत्येक अंग की आकृति बना कर वह मुख पंकज की आकृति न बना सका । शंकर का मुख देखकर उसने प्रतिमा का मुख गढ़ा। ब्राह्मणों ने मदन गोपाल की प्रतिमा को प्रतिष्ठापित किया।[३] इसी समय शंकर ने सभासदों को संबोधित किया कि आज से अन्य देवता की पूजा छोड़ दो, आज से ईश्वर को

१- रामानंद द्विज -- गु० च०-- पृष्ठ १४१-१४२

२- वही ------ पृ० १५२- १५३

३- वही ० पृ० १५६-१६०

जानो श्रवण कीर्तन कर संसार से पार हो ।[1]

दिहिङिया राजा -- पंडितों ने दिहिङिया राजा के सम्मुख शंकर के विरुद्ध यह अभियोग लगाया कि वैदिक धर्म के आचार विचार को नष्ट कर शंकर पाषंडधर्म का प्रचार कर रहा है। इस समय तक अहोम राजाओं ने हिन्दू धर्म को ग्रहण न किया था तथा वैदिक आचार विधि का न तो उन्हें ज्ञान था न उन्होंने कभी उसे जानने की चेष्टा ही की। दो एक प्रश्न पूछ ब्राह्मणों को तिरस्कृत कर राजा ने इस अभियोग को समाप्त किया।[2]

स्वर्गदेव राजा ने सन्दिक को हाथी पकड़ने का आदेश दिया। बारह भुइयां भी संदिक के साथ सहायता के लिये गए एक ओर की रक्षा का भार मटिया भुइयां को और शेष तीन पक्ष में अन्य लोग रखे गए। मटिया भुइयां की ओर से हाथी भाग गया। भुइयां लोग मृत्यु दंड के भय से अपना शरीर ले भाग गए। जब संदिक को यह सूचना प्राप्त हुई कि हाथी भाग गया, वे अधिक रुष्ट हुए और भुइयों को बंदी करने की आज्ञा दी। शंकर के जमाता मनु को दूतों ने डोर से बांधा।[3] राजा की आज्ञानुसार अनेक भुइयों और मनु जमाता को प्राण दंड दिया गया।[4]

माधव के मुख से हरि जमाई की मृत्यु समाचार प्राप्त होते ही शंकर ने सब समझ लिया। अहोम राज्य में शांतिपूर्वक धर्म और शास्त्र चर्चा असंभव हो गई।[5]

बरदोवा चरित से यह ज्ञात होता है कि शंकर को पकड़ने के लिये अहोम राजचर ने उस समय भी दूत भेजा जब वे जाने की तैयारी कर रहे थे। सब नदी की धार के विपरीत दिशा में जाने के लिये प्रस्तुत थे : इसी समय देववाणी हुई `शंकर तुम भाटी की ओर जाओ ऊपर न जाओ।' दो महापुरुषों ने इस वाक्य को सुना, दिन में नाव पर बोझा लाद, रात में भाटी की ओर नाव खोल दी।[6]

शंकरदेव ने असम की इस विषम स्थिति को देखा और नरनारायण की प्रशंसा सुनने के बाद ही वे कामरुप की ओर जाना चाहते थे। गुरु चरित के अनुसार भी ८७ वर्ष की अवस्था अर्थात १४५८ शक से प्राय: ९४।९५ वर्ष की अवस्था अर्थात १४६५-६६ के भीतर

१- वही ० पृ० २६६

२- म० ने० -- श्री० शं० पृ० ११७

३- रामानंद द्विज - गु० च० पृ० २७६

४- वही पृ० १८२-१८४

५- म० ने० - श्री० शं० - पृ० ११८

६- वही पृ० १२२

शंकर भाव इुवारा कामरूप आए। वेजबरुवा के मतानुसार वे गांभों में ७। और धूवाहाट में १८ वर्ष रहे [1]।

बेजबरुवा ने `पत्नी प्रसाद` आदि कई नाटकों को पाटबाउसी में लिखा कहा है, यद्यपि यह सत्य नहीं है। रामचरण तथा कथागुरु चरित ने स्पष्ट संकेत किया है कि शंकर देव जब असम राज्य त्याग बरपेटा पहुंचे यहीं चूनपारा में प्रवास करते समय उन्होंने पत्नी प्रसाद नृत्य का आयोजन किया [2]। निश्चित ही इसके पूर्व इस नाटक की रचना हुई होगी। कलकत्ता विश्वविद्यालय के भूतपूर्व अध्यापक कालिकानाथ शर्मा का मत है कि पत्नी प्रसाद अंक की रचना १४४८ शक में हुई।

कपलाबारि में मनोरमा आइ की मृत्यु हुई। यहीं उनका दाह कर्म संस्कार संपन्न हुआ। यहां से चिरलिया के मूल के निकट गए चूनपारा में स्थायी रूप से रहने का प्रबंध शंकर ने किया। यहीं उन्हें माधव की भांति प्रिय भक्त प्राप्त हुआ-- उनका प्रसिद्ध नाम भवानंद साउद था। गुरु जन की कीर्ति सुन कर ये उनकी ओर आकृष्ट हुए। शंकर ने नारायण नाम से इन्हें पुकारा। कालांतर ये नारायण ठाकुर अथवा ठाकुर आता के नाम से प्रसिद्ध हुए।

मनोरमा आइ के श्राद्ध के उपलक्ष में नाम कीर्तन, नटुवा का `पत्नी प्रसाद` नाच यात्रा महासमारोह पूर्वक चूनपारा में संपन्न हुआ मिट्टी काट कर भक्तों के घर का निर्माण किया गया। बरदोवा चरित के अनुसार नारायण ने लिखा छोते समय गुरु से `गुणमाला` व रामचरण के मत से `भक्ति प्रदीप पोथी ले घर गए और इस पोथी को गुरु मानकर घर के समस्त लोगों को भक्ति धर्म में शरण दी। इसके विपरीत कथा चरित में है `ठाकुर आता के परिवार गुरु के निकट शरण ली [3]।

जांतीकूचि आदि स्थानों के अनेक लोगों ने चूनपारा में शंकरी धर्म ग्रहण किया। बूढ़ा गोपाल ने भी यहीं शरण ली। रामचरण के मत से शंकर चूनपारा-पाटिलिंगि में केवल छ: मास रहे-- दैत्यारि के अनुसार पाटिलिंगि में एक वर्ष ठहरे। वहां से वे गनककूचि अथवा

१- म० नै० -- श्री० शं० पृ० १२३

२- उ० ले० --- क० गु० च० १०२

३- म० नै० --- श्री० शं० पृ० १३०

गणककुचि ग्राम में तीन मास रहे । कुमारकुचि आतेरिक्त उन्होंने घर बाड़ी की व्यवस्था माधव को सौंप दी । कटकआली ताल :थिल: के निकट कुमारिकुचि के कुमार पाड़ा में घर आदि निर्माण कर शंकर एक वर्ष रहे । यहीं रुक्मिणी का देहांत हुआ । अतः उन्हें इस स्थान में रहना उत्तम न लगा और वे सब भक्तों सहित पाटबाउसी चले गए ।[1]

पाटबाउसी में धौनुकंदा बिल के समीप बरखेवाँ नामक वन को नष्ट कर शंकरदेव ने नामघर तथा भक्तों के लिए छोटी घर का निर्माण कराया । डा० महेश्वर नेओग के अनुसार शंकर १४६८ शक में पाटबाउसी आए । चरित पोथियों के अनुसार शंकर पाटबाउसी में चौदह वर्ष तक रहे ।[2] पाटबाउसी में भक्तों की संख्या ताल की कुहल के वन के समान बढ़ी, रामचरण ने उन भक्तों के नाम की तालिका दी है-- वह इस प्रकार है---
माधवदेव, नारायण ठाकुर, राम राम गुरु, सर्वजय परमानंद, ठाकुर गोविंद, बलभद्र, बलोराम, बूढ़ागोविंद, हरि विप्र, भोबोरा दामोदर, बलाइ हरिचरन, बूढ़ा दैवज्ञ शरिदास बनिया, केदार खाँ, रामराम तथा रतिकांत दलै आदि। भवा ग्वाल बलाइ का पुत्र शीतला रोग से पीड़ित था और वे शिव तथा शीतला की पूजा करने को उद्यत थे, किन्तु शंकर ने उन्हें अन्य देव देवी की पूजा करने से रोका ।[3]

दामोदर हरि मंदिर में भक्तों सहित कीर्तन गाते थे--- नाम श्रवण उन्हें अमृत पान की भाँति लगता था । नाम समाप्त होने पश्चात वे अपने घर लौट जाते थे, शंकर प्रत्येक दिन उन्हें देखते थे । एक दिन शंकर ने उन्हें अपने निकट बुलाकर कहा कि आज से भक्तों के साथ नाम कीर्तन करो, मैं अन्न वस्त्र देकर पोषण करूंगा । यह सुन दामोदर आनंदित हुए हुए और अपना घर छोड़ शंकर के पास चले आए । दामोदर ने शंकर से शरण लेने की प्रार्थना की । दामोदर के अनुरोध पर शंकर ने राम राम गुरु को बुलाया-- रामराम गुरु ने दामोदर को हरि चरणों में शरण दिया ।[4] दैत्यारि के अनुसार दामोदर शंकर केवल प्रस्ताव से असहमत हुए । तुम्हारे अतिरिक्त मैं अन्य को गुरु न मानूंगा और तुम्हारे संग कृष्ण कथा सुनूंगा । यह कहकर दामोदर गुरु ने कृष्ण के पद में शरण ली ।[5]

१- म० नै० - गी० शं० - पृ० १३२

२- उ० ते० -- का० गु० च० भूमिका पृ० ७

३- म० नै० - गी० शं० - पृ० १३६

४- रा० द्विव० -- गु० च० - पृ० २०६-२०७

५- दैत्यारि - गु० च० १६७

शंकर के ब्राह्मण शिष्य अनंत कंदलि ने गुरु की आज्ञानुसार दशम स्कंध का मध्य तथा अंतिम भाग का रुपांतर किया। शंकर द्वितीय बार की तीर्थ भ्रमण से जब लौटे उसी समय कंदलि ने दशम के पद दिखलाए। गुरु ने इसे देख कर कहा `तुमने भक्ति को कम स्थान दिया और युद्ध का विस्तृत वर्णन किया है।` बेजबरुवा ने कंदलि के दशम स्कंध के पद रुपांतर के संबंध में लिखा है, शंकरदेव की मृत्यु के पीछे ही यह रचना पूर्ण हुई इसे कंदलि ने दशम के शेष में स्पष्ट कहा है `शंकर कृष्ण को स्मरण कर वैकुंठ गामी हुए।` अंतिम पुष्पिका में कंदलि ने उल्लेख किया है--`तंमीतुल-कमल- विमल गुणशाली केशव दास दले बौध के उद्योग और गोविन्द के प्रसाद से दशम की रचना की।[1]

कथाचरित के अनुसार सार्वभौम भट्टाचार्य इसके पूर्व ही शंकर के शिष्य हो गए थे।[2] इसके उपरांत योगिनी तंत्र, हरगौरी संवाद, रुद्र यामल, सात्वत तंत्र दीपिका छंद, पद्मपुराण, स्वरोदय केकैसा स्वर्ग खंड में शंकर को ईश्वर के तुल्य अंकित किया है।

<u>कीर्तन घोषा</u> :- पाटवाउसी पहुंचने के पूर्व कीर्तन घोषा की रचना पूर्ण न हुई थी। यहीं शंकरदेव ने शेष की रचना कर कीर्तन को पूर्ण किया । धूवाहाट से एक भक्त ने आकर शंकरदेव से उजनि आसाम के लिये धर्म प्रचारक की प्रार्थना की-- इस समय वे मध्य दशम के जरासंघ युद्ध कीर्तन कर रहे थे । श्रीमदभागवत का प्रथम द्वितीय, तृतीय, सप्तम, अष्टम और दशम स्कंध का पद रुपांतर पाटवाउसी में हुआ-- कुरुक्षेत्र निमिनव सिद्ध संवाद की भी रचना यहीं हुई । बेजबरुवा का कहना है `रुक्मिणी हरण भक्ति प्रदीप प्रदीप की रचना पाटवाउसी में हुई--पाटवाउसी ही में उन्होंने भागवत के एकादश और द्वादश स्कंध का पदानुवाद किया-- उनका `कालियदमन नाट आदि और अन्य गीत भटिमा आदि की रचना पाटवाउसी में ही हुई वेद- वेदांत, गीता भागवत के सार का उद्धरण कर शंकर ने यहीं `रत्नाकर`ग्रंथ की रचना संस्कृत में की । अंतरंग साक्ष्यों के आधार पर निर्भर कर `भक्ति प्रदीप और रुक्मिणी हरण काव्य को बरदौवा में रचित कहा जा चुका है डा० नेओग के अनुसार `पत्नी प्रसाद`धूवाहाट में---लिखा गया राम विजय की रचना कूच विहार में हुई, रुक्मिणी हरण, पारिजात हरण, केलि गोपाल कालियदमन भी संभवत: इस समय की रचना नहीं है ।[3]

१- म० ने० -- श्री० शं० - पृ० १४१-१४२

२- उ० ले० --- क० गु० च० - पृ० ४३

३- म० ने---- श्री० शं० पृ० १४३

अनादि पतन में शंकरदेव ने भागवत के मूल में ज्योतिष भंग कर मिश्रण किया[1]। भाग... का द्वितीय, दशम का पूर्व भाग और एकादश स्कंध का पदरूपांतर शंकर ने द्वितीय तीर्थ भ्रमण के पूर्व किया था। कहा जाता है कि जिस समय वे इस द्वितीय स्कंध का पदानुवाद कर रहे थे, उसी समय उनके प्रिय भक्त जयंती माधव की मृत्यु हुई और उनका व हाथ कंपने लगा, हाथ से कागज-स्याही गिर गई। द्वितीय स्कंध के पद भागवत द्वितीय स्कंध के अक्षरश: अनुवाद जान पड़ते हैं[2]। रामचरण के मत से तीर्थ से वापस आने के पश्चात एकादश स्कंध की रचना की। दूसरी ओर कंठभूषण ब्राह्मण काशी के ब्रह्मानंद संन्यासी से मूल भक्ति रत्नावली पुस्तक लाने के समय गुरुजन एकादश के पद उतार कर सुनाने की कथा चारितों में थी। निश्चित ही यह तीर्थ यात्रा के बाद की घटना है। एकादश के पद लिखने में हरिवंश, प्रथम और तृतीय स्कंध भागवत की भी अनेक कथा समाविष्ट की गई है। बेजबरुवा ने लिखा है 'शंकरदेव ने पाटबाउसी में प्रवास करते समय आद्य दशम की रचना की[3]। इसके पश्चात वे तीर्थ भ्रमण के लिए निकल पड़े। अनादि पतन में वामनपुराण का मिश्रण भी किया गया है। निमिनव सिद्ध संवाद की रचना एकादश स्कंध के पदों का रूपांतर है, इसकी रचना भी पाटबाउसी, प्रवास के पूर्व भाग की है। रामराम आटा दशम की कालि चर्चा से संतुष्ट हुए और गुरु से कालिदमन नाट की रचना के लिये आग्रह किया। पाटबाउसी में शंकर ने एक के बाद दूसरी पुस्तक लिखना प्रारंभ किया। ठाकुर आटा ने अपना विस्मय भाव माधव से प्रकट किया। माधव और आटा दोनों लोग एक दिन रात गणक्कूचि से बाउसी आए। दोनों ने जब खिड़की से देखा, गुरुजन पोथी लिख रहे थे। यह पुस्तक केलिगोपाल नाटक थी[4]।

द्वितीय तीर्थ यात्रा आरंभ करनेके पूर्व ही शंकरदेव के मध्यम पुत्र कमललोचन की मृत्यु हुई। कहा जाता है कि द्वितीय स्कंध भागवत की रचना के और जयंती माधव की मृत्यु के पूर्व कमललोचन की असामयिक देहांत हुआ[5]।

दैत्यारि ठाकुर ने इस बार की तीर्थ यात्रा के पूर्व ही शंकर नरनारायण के साक्षात्कार का उल्लेख किया है। इतना ही नहीं, उन्होंने यह भी लिखा है कि शंकर चिलाराय

१- उ० ले० -- क० गु० च० - पृ० १०४
२- म० नै० -- श्री० शं० पृ० १४४
३- वही ० पृ० १४५-१४६
४- उ० ले०-- क० गु० च० पृ० १०५
५- म० नै० -- श्री० शं० - पृ० १४८
वही० पृ० १४६

के भवन में दो बार ठहरे और दूसरी बार चिलाराय दीवान ने शंकरदेव से शरण ली ।[1] दैत्यारि की भाँति रामानंद द्विज अनुसार द्वितीय तीर्थ यात्रा के पूर्व शंकर का नरनारायण राज्य सभा में विप्रों के गोचर :अपवाद: के संबंध में उपस्थित हुए ।[2] डा० महेश्वर नेओग का मत है,यह घटना क्रम का उलट पलट जान पड़ता है । इसके अतिरिक्त बेजबरुवा ने लिखा है कि राम आटा की पुत्री भुवनेश्वरी के मुख से शंकर का एक गीत सुनकर चिलाराम ने उन्हें बुलाने के लिये एक नाव भेजी और नरनारायण ने वृंदावनीया व वस्त्र बनाने को कहा । किन्तु चरितों के अनुसार यह घटना द्वितीय तीर्थ यात्रा के बाद की हो सकती है ।[3]

चैतन्य का कामरुप आगमन :- बेजबरुवा के श्री शंकरदेव आरु माधवदेव ग्रंथ में है श्री चैतन्य मणिपुर में संन्यासी वेश धारण कर आए और धर्म प्रचार किया । वहाँ से आ हाजो में कुछ दिन रहे,हाजो से लौटते समय शंकरदेव और माधवदेव से उनका साक्षात्कार पाटबाउसी में हुआ । किसी भी प्राचीन चरित पुस्तक में चैतन्य- शंकर का यह मिलन नहीं दिखाई देता है-- किसी प्रकार इसका विश्वास नहीं किया जा सकता है।[4]

भारतीय तीर्थ क्षेत्रों के भक्तों से मिलने के लिये,शंकर ९७ वर्ष की अवस्था,अर्थात १४९८ शक में तीर्थ यात्रा के लिए अभिमुख हुए । इस बार वे वृंदावन तक जाना चाहते थे किन्तु कालिंदि आइ ने माधव को संकेत दे रखा था कि यदि प्रभु वृंदावन जायंगे,तो कदाचित वे वहां सेनलौटें--- अतएव माधव यदि तुम न जाओगे तो वे किसी प्रकार वहां न जा सकेंगे । आइ ने शंकर की वृद्धावस्था को देख कर ही ऐसा संकेत माधव को दिया होगा ।[5]

शंकर- चैतन्य साक्षात का प्रवाद :- दैत्यारि के अनुसार चैतन्य के स्थान या मठ,और[6] भूषण के मत से जगन्नाथ क्षेत्र में शंकर चैतन्य ने एक दूसरे को दूर से देखा । बरदोवा चरित के अनुसार दोनों ने एक साथ बैठकर नटी का नाच जगन्नाथ क्षेत्र एक मंदिर में देखा ।[7] रामानंद के चरित के अनुसार श्री क्षेत्र में शंकर-चैतन्य की भेंट हुई । शंकर-चैतन्य

१- दैत्यारि - गु० च०- पृ० ११४
२- रामानंद-- गु० च०- पृ० २१०,२६२,२७५
३- म० ने०-- श्री० शं०- पृ० १४६
४- वही -- पृ० १५१
५- वही-- पृ० १५२
६- दैत्यारि- पृ० १२८.
७- रामानंद-- पृ० २८०.

की भेंट न तो प्रथम तीर्थ यात्रा में हुई न द्वितीय तीर्थ यात्रा में ही हुई होगी। [1] वेजबरुवा कहते हैं शंकरदेव इसी शक में :१४६८ शक में अहोम राज्य छोड़ कोच राज्य यदि नहीं भी गए तो भी, उनका पाटबाउसी से द्वितीय बार तीर्थ भ्रमण करने के लिए जाते समय नादिया या पुरी में :नादिया छोड़ा नहीं सकता क्योंकि जीवन के शेष अठारह वर्ष चैतन्य ने पुरी में ही समाप्त किया: चैतन्य के साथ साक्षात होना असंभव है, कारण चैतन्य की मृत्यु १४५५ शक में हुई। डा० नेओग का मत है कि ऐसा लगता है कि चरितलेखकारों ने तारतम्य घटना को भूल कर उस युग के प्रत्येक महापुरुष का मिलन कीर्तन करने के उद्देश्य से लिखा है। [2]

कबीर के मठ में शंकरदेव :- दैत्यारि के मत से जगन्नाथ के मार्ग में गया तीर्थ पहुंचने के पूर्व [3] कथाचरित के मत से गंगा पहुंचने पूर्व, वेजबरुवा/महानदी, जगन्नाथ पहुंचने के पहले शंकर कबीर के मठ में प्रविष्ट हुए। रामानंद ने लिखा है 'गंगा, गया, तीर्थ कर घूमते समय शंकर कबीर के मठ पहुंचे। [4] राम चरण ठाकुर के अनुसार जगन्नाथ दर्शन के पश्चात, भूषण द्विज के अनुसार गया, वाराणसी, कुरुक्षेत्र तीर्थ करने के पश्चात शंकर कबीर का मठ देखने मालि नाम नगर तक गए। इस समय कबीर मठ में न थे उनकी नतिनी ही थी-- कबीर की मृत्यु सं० १५७५ वि० के पूर्व हो गई थी। इतना अवश्य है कि उस समय समस्त उत्तर भारत में कबीर के गीत प्रचलित हो रहे थे। [5]

कथा चरित में कबीर के मठ का विवरण इस प्रकार है :- कबीर के स्थान पहुंचने पर प्रश्न किया कबीर का कौन है? उत्तर मिला एक नतिनी है। उसने आ सेवा की। उसका पति घर में न था। अतः गुरु वहां न ठहरे और एक पुरानी अंगूठी उसे दी। पथ में भक्त गण आपस में चर्चा कर रहे थे कि हमने सुना है कि कबीर यवन हैं, यह कैसा अन्याय है? शंकर ने उत्तर दिया 'कबीर ईश्वर विराट ब्रह्म के अंश हैं। [6]

रामानंद के मतानुसार कबीर का मठ देखते ही शंकर ने माधव का मुख देखते हुए कहा 'कबीर को केवल भक्त जानना- महंतों का स्थान तीर्थ से श्रेष्ठ है।' शंकर ने देखा, कबीर की नतिनी केवल राम राम शब्द का उच्चारण कर रही है। शंकर माधव को

१- म० नेo- शं० ---- पृ० १५५
२- वही० पृ० १५५
३- दैत्यारि-- गु० च० पृ० १३४
४- रामानंद-- गु० च० पृ० २५६
५- म० नेo-- श्री० शं०

भक्तों सहित देख खड़ी हो गई और अनेक प्रकार से अभिवादन किया और कहा "मेरे स्वामी आज घर नहीं हैं ।" इसके पश्चात वह घर से पाग : ℓ : लाई और ?
प्रार्थना की आप चरण धो लें । शंकर ने प्रियवाणी द्वारा उसे आश्वासन दिया और पैर न धोया । कबीर के स्थान का दर्शन कर भक्तों सहित आगे बढ़े ।[1]

दैत्यारि के अनुसार शंकर ने कबीर के स्थान में एक स्त्री देखा और उससे पूछा कबीर का कौन है ? इन्हें विष्णु भक्त जान उसने उत्तर दिया मैं उनकी जीव नतिनी हूं। इसके पश्चात दोनों ओर से परिचय के प्रश्न किये गए । नतिनी ने अपने पति का पाग ला कर उनके सम्मुख रख दिया तथा निवेदन किया "आप लोग इससे पद पोछ लें । दुर्भाग्य है कि मेरा खसम यहां अब उपस्थित नहीं है इस पाग पर गिरी धूलि लेने से उसे सौभाग्य प्राप्त होगा । राम राम गुरु ने उस पाग पर चरण न रखा- अंत में शंकर ने चरण से पाग का स्पर्श किया ।[2]

जगन्नाथ क्षेत्र में :- कथाचरित के अनुसार शंकरदेव जगन्नाथ के सिंहद्वार में तीन पक्ष ठहरे । वहां श्वेतगंगा, मार्कण्डेय कुंड हृद, इन्द्रद्युम्न, चंदन सरोवर, और लोकनाथ इन पांच तीर्थों को कर, समस्त पवित्र स्थानों के दर्शन किया । सागर में स्नान करते समय सागरजूलि कथा लेकर भक्तों को बांट दिया, माधव ने उसका एक प्राचीन कफन को बांधने के लिये रखा । उन्होंने जगन्नाथ में घोषा तथा गीत की रचना की । इसके अतिरिक्त जगन्नाथ नाट मंदिर में भी चैतन्य हरिदास, रामानंद, नित्यानंद, शिशु जगन्नाथ छोटे जगन्नाथ, गोरखा, शिशु नारसिंह, बड़ नारसिंह, छोटे नारसिंह, हनुमान, जांबवंत, उद्धव अरजालाना, विभीषण आदि महन्त एकत्र हो बैठे थे ।[3] डा० नेयोग का मत है कि यह आख्यान पूर्णतया काल्पनिक और अवास्तविक है । जगन्नाथ क्षेत्र के प्रमुख पंडे शंकरदेव के शिष्य हुए--[4] दैत्यारि कथा के मत से दस और चरितमाला चरित के अनुसार अठारह पंडे उनके शिष्य हुए । शंकर ने समवेत लोगों के सम्मुख ब्रह्मपुराण से जगन्नाथ क्षेत्र की उत्पत्ति कथा की व्याख्या की ।[5]

१- रामानंद -- गु० च०-- पृ०-- २५६-२५७

२- दैत्यारि -- गु० च०-- पृ०-- १३३-१३४

३- उ० ले० --- क० गु० च० -- पृ० १५४-१५५

४- वही---- पृ० १५७

५- म० ने० -- श्री० शं० -- पृ० १६४

पाटवाउसी की ओर :- कटक नगर में पहुंच शंकर देव ने माधवदेव को एक रुपया [1] सरोकने के लिये दिया । इस रुपए को देख धोली फाटि ने कहा `इस पर गोकुल के कानाइ का चिन्ह है।`इस रुपए को तुला पर रख उतने ही भार की अन्य वस्तुएं माधव को दे दीं [2]। यहां से वे महानंद वैतरणी के पार जाजाद पुर और बूढ़ा नदी के तीर बालेश्वर पहुंचे । यहीं माधव ने एक बूढ़ी को रोते हुए देखा । उन्होंने उससे प्रश्न किया `बूढ़ी तुम क्यों रो रही हो ? बूढ़ी ने उत्तर दिया `वत्स मेरा एक ही पुत्र है वह भी सिपाही बन कर युद्ध में गया है । माधव ने उत्तर दिया `तुम्हारा बेटा पच्चीस वर्ष का है,उसकी दाढ़ी नहीं निकली है,मुख चपटा है ।`इस उत्तर से बूढ़ी अत्यन्त प्रसन्न हुई,और चावल इत्यादि वस्तुएं बिना मूल्य के दे दिया [2]। यहाँ से वर्द्धमान,कुमारपुखुरी, नदिया गोपीनाथ,शांतिपुर कलना,कासिमगंज,मुलवीवाज,गंगा के तट पर जंगिनपुर पहुंचे । यहां से भगनगोला में रहे भगितपुर घाट से पद्मा पार हो पुठुरियागंज में ठहरे-- कालिंद्री गंगा में स्नान कर चंदा गंज में रहे । निलिमपुर,दिनाजपुर गोविंद गंज घोराघाट होते हुए सिंगियागंज पहुंचे [3]। सिंगियागंज कूचबिहार राज्य का भाग था और यह चिलाराम का गांव था [4]। दूसरे दिन प्रात: नलीया नदी के तीर शाबिंपुर गंज सोनकोष के किनारे कदारगंज प्रवास कर पाटवाउसी पहुंचे । छ मास के बाद शंकर भक्तों सहित पुन: पाटवाउसी फागुन मास में आए [5]।

शंकरदेव ने पाटवाउसी में सत्र की स्थापना की,श्रीमद्भागवत शास्त्र के अनुसार विशुद्ध वैष्णव धर्म प्रचार करने की इच्छा प्रकट की-- नाना शास्त्रों के तर्क द्वारा तंत्र-मत को निर्मूल करने की चेष्टा की । इससे ब्राह्मण शंकर से द्वेष करने लगे । माधव ने विपद की अधिक आशंका देख,श्राद्धादि को लोप न कर तंत्रमत को कुछ परिमाण में रखने का अनुरोध करने पर रचित शास्त्रों को नष्ट कर दिया । दैत्यारि ने लिखा है `अजाति शुद्धिरो करत मिले । सुपक्क दर्शनेया कल गिले `एकादशी दिन मुंजप भात मूख नलवै तुलसी पात ।`इस प्रकार के विद्रूपात्मक पद्य लिख कर भक्तों की खिल्ली उड़ाते थे । यह

१- उ० ले०--- क० गु० च० --- पृ० १६०

२- वही --- पृ० १६३

३- वही --- पृ० १६४-१६६

४- वही --- पृ० १६६

५- वही० -- पृ० १६६

देव शंकर ने नाना शास्त्रों का तत्व उद्धार कर एक पुस्तक[1] लिखी, किन्तु माधव की बात सु-
पर इसे नष्ट कर 'पाषंड मर्दन' कीर्तन की रचना की ।

नागराज की पुत्री कमलप्रिया व मुक्तेश्वरी के मुख से चिलाराय ने नेरि राम चरणादि काव्य गीत सुन मुग्ध हो गए और शंकरदेव का भक्तिका पूछ उन्हें लाने के लिए नाव भेज दिया । शंकरदेव ने चिलाराय की शरण ली [2]। शिष्यत्व ग्रहण करने के पश्चात दीवान चिलाराय शंकरदेव के वैष्णव धर्म के प्रचार में कितनी सहायता की यह इतिहास का विषय है । शंकर के पुत्र रामानंद भी चिलाराय के आश्रित में कार्य करते थे । यह निश्चित है कि कमलप्रिया के योग से ही शंकर- चिलाराय का दर्शन हुआ ।

वागीश भट्टाचार्य के पुत्र, वाग चक्रवर्ती, मादइन्द्र हिराइ, गिराइ, मैसेरा कंदलि, यह पांच मुख्य और अनेक ब्राह्मणों ने तांत्रिक तथा शाक्त मत का प्रचार देख नरनारायण से निवेदन किया कि शंकर किसी को नहीं मानता, देव, देवी, श्राद्ध विधि, मूर्ति को पानी में फेंकता है, भागवत को तोड़ पद करता है, ब्राह्मण, गंगा, तुलसी, शालग्राम को नहीं मानता है और न पूजता है--- ब्राह्मण, कैवर्त देवक, कोच सब भजते और एक साथ खाते हैं, कुलशील, धर्म, कर्म, वेद, नीति को छोड़कर तुम्हारे देश को मतवारी कर दिया है । वेद, भागवत के सम्मत धर्म नष्ट होने पर राजा का नाश होता है, प्रजा काल तथा दुर्भिक्ष से पीड़ित होती है। राजा यह सुनकर अधिक क्रोधित हुआ और कहा मेरे रहते मेरे देश में ऐसा करता है ? राजा ने पांच सैनिक शंकरदेव को बंदी करने के लिए भेजा [3]। सैनिकों ने अनेक प्रयत्न किए, किन्तु वे शंकरदेव को न पा सके । नारायण ठाकुर और गोकुलचांद को पकड़ लाए ।

प्रारंभ में कुछ ऐसे यत्न किए गए जिससे शंकरदेव के संबंध में कुछ ज्ञात हो सके । अनेक प्रकार की यंत्रणा और शक्ति का प्रयोग करने पर भी इन दोनों व्यक्तियों ने शंकरदेव के संबंध में कोई सूचना न दी [4]।

कोच राज्यसभा में शंकरदेव :- कथाचरित के विवरण के अनुसार शंकरदेव अपनी भक्तों सहित कुछ दिन तक छिपे रहे [5]। चिलाराय ने शंकरदेव से अनुरोध किया कि वे राजा नरनारायण

१- म० ने० श्री० शं० पृ० १६७
२- उ० ले०--- क० गु० च०---पृ० १०६
३- वही पृ० १७६
४- वही० पृ० १७७-१७८
५- वही पृ० १८२

की राज्यसभा में पधारें और यह आश्वासन दिया उनके साथ किसी प्रकार का दुर्व्यवहार न किया जायगा । शंकर `मधु दानव-दारुण देव वरम्` आदि तोटक श्लोक पढ़ते हुए राज प्रासाद में प्रवेश किया । कहा जाता है कि चार श्लोक पाठ कर राजा को आशीर्वाद दिया--- `जय जय मल्ल नृपति रसधान` गा कर उनकी प्रशंसा की ।[1] राजा उनकी विद्वता पर अत्यन्त प्रसन्न हुए और सादर आग्रह किया कि कल से आप प्रात: काल मेरे यहां आया करें और मध्याह्नोत्तर समय गुरु के यहां रहें । `कूच बिहार के दरबार में शंकरदेव तीन मास तक आते जाते रहे और विरोधियों का मत खंडन कर अपने अगाध पांडित्य द्वारा खंडित किया । दूसरे दिन शंकर ने `वन्दो गोविन्दा गोपीजनानन्दा` भटिमा गया । और राजा कोआशीर्वाद दिया `महाराज आप द्वितीया के चन्द्र जैसे हों, धर्म प्रकाश युक्त हो` तीसरे दिन राज सभा में शंकरदेव ने भटिमा गाकर राजा की प्रशंसा की `हासि समानन्द करु बहु थिर, मल्ल नृपतिक सभ मानिक्य बीर।` इस दिन भी ब्राह्मणों ने उनके विरुद्ध अभियोग लगाया कि गंगा, गया, काशी तीर्थ लोगों को शंकर नह नहीं मानते हैं। राजा ने पूछा क्या यह सत्य है? शंकर ने उत्तर दिया महाराज युवाकाल में बारह वर्ष तक समस्त तीर्थों का भ्रमण कर स्नान दान किया, अभी कुछ ही दिन पूर्व गंगा-जगन्नाथ कर लौटा हूं ।[2] अंत में ब्राह्मणों ने शंकरदेव से अनुरोध किया कि आप ब्राह्मण की जीविका का नाश न करें । इस पर शंकर ने अंगूठे से पृथ्वी को स्पर्श कर कथन किया `यदि आप लोग भक्ति का विरोध न करें तो कौन पामर है जो हिंसा करेगा ।[3] इस प्रकार यह अनुमान किया जा सकता है कि शंकरदेव विप्रों के प्रतिकूल न थे और न उनके प्रति किसी प्रकार का द्वेष शंकर के मन में था ।

कविचंद्र :- साठ शिष्यों सहित कविचंद्र नामक पंडित शंकर से तर्क, शास्त्रार्थ करने के लिये पश्चिम से आए । राज प्रासाद में प्रवेश करते ही हरि ध्वनि की, राजा के प्रश्न करने पर कहा कि मैं पंडितों से तर्क करना चाहता हूं ।[4] पश्चिमी पंडित को आश्चर्य हुआ, राज्य के सभी कर्मचारी संस्कृत बोल रहे थे । संस्कृत के अतिरिक्त और कोई बोली वहां नहीं सुनाई देती थी । एक दिन इनके शिष्य दीवान चिलाराम के स्थान पहुंचे और देखा शंकरदेव

१- वही पृ० १८५

२- वही पृ० १८६

३- दैत्यारि -- गु० च०-- पृ० १७६

४- उ० दे० -- क० गु० च० -- पृ० १८३

चंदन की चौकी पर विराजमान हैं । शिष्यों ने शंकर से कहा `शूद्र को भागवत पढ़ने का अधिकार नहीं है[१] । कथागुरुचरित के अनुसार `ब्राह्मण ने शंकर को नहीं पहचाना और पूछा शंकर कहां रहता है । शंकर ने उत्तर दिया यहीं है । तुम शूद्र हो न,क्या ग्रंथ लिख रहे हो ? `नवम स्कंध भागवत `उत्तर मिला । विप्र ने आपत्ति करते हुए कहा शूद्र भागवत लिख पढ़ नहीं सकता `शंकर ने यह उत्तर दिया `यदि महाभागवत को द्विजगण पढ़े उन्हें मनसिद्धि प्राप्त होगी,क्षत्रिय पढ़ेगा उसका राज्य सागर तक होगा और शूद्र पढ़कर नवनिधि को प्राप्त करेगा[२] । इस प्रकार अनेक श्लोकों का उद्धरण दे यह सिद्ध कर दिया कि भागवत पढ़ने का अधिकार चारों वर्णों के लोगों को है ।

एक दिन राजा ने ब्राह्मण पंडितों से आग्रह किया,कल तक मुझे बारह स्कंध भागवत सुनाना है । ब्राह्मणों ने उत्तर दिया बारह स्कंध भागवत सुनने के लिए बारह मास का भी समय कम है । हां ईश्वर ही ऐसा कर सकता है,मनुष्य की शक्ति नहीं। दूसरे दिन राजा ने ब्राह्मणों से प्रश्न किया `क्या आप सुना सकते हैं । ब्राह्मणों ने उत्तर दिया `महाराज ईश्वरीय कार्य की शक्ति मनुष्य में नहीं है । शंकरदेव से पूछा `आप सुना सकते हैं ? हां महाराज जो हो सकेगा वह सुनाऊंगा । शंकरदेव नेदो दंड में गुणमाला गा कर सुना दिया[३] । राजा गुणमाला सुनकर अत्यन्त हर्षित हुए और ब्राह्मणों से कहा जिसके लिए आप बारह मास समय चाहते थे,उसे शंकर ने दो दंड में सुना दिया ।

डा० नेओग का मत है १४८० शक के आस पास शंकरदेव- नरनारायण का साक्षात्कार हुआ होगा[४] । इसके पश्चात कई बार वे बिहार से बरपेटा आए गए । बेजबरुवा ने लिखा है कि प्रथम बार वे तीन मास बिहार में रहे । बरदोवा चरित में इसे छः मास कहा गया है । एक बार दीवान चिलाराय ने उनको जन्म पुराण के कतिपय श्लोक अनुवाद करने के लिए दिया । इस समय शंकर ने कहा `पाटवाउसी में इसे समाप्त कर आप को दूंगा । अंत में यह कार्य भार माधव को सौंप दिया गया क्योंकि वे ह्रस्व दीर्घ कर सकते थे[५] ।

१- दैत्यारि -- गु० च० -- पृ० १८८

२- उ० दे० -- क० गु० च० पृ० १६३

३- वही पृ० २०१

४- म० ने० -- गि० शं० -- पृ० १७७

५- उ० दे० -- क० गु० च० पृ० २०२

<u>राज प्रासाद में योगी</u> :- राजा नरनारायण के प्रासाद में निर्विषय, निर्विकारी, निरपेक्ष, निराशा, निर्गुण शून्य एकयोगी था । चिलाराम ने एक दिन शंकरदेव से पूछा कि मेरे दादा भागवत सुनते हैं उसके भीतर एक योगी है क्या उसके संबंध में कुछ कहा है ? शंकर ने उत्तर दिया `नहीं कहा `शंकर ने जाकर महाराज से प्रश्न किया ` महाराज आप के प्रासाद में एक योगी है न ? हां, पहले सी ही है । `राजा ने उसे भगा दिया । लूण्ठ सन्यासी ने एक बौद्ध भिक्षु को भी घर में रखा था । दीवान चिलाराम समझते थे, शंकरदेव की भांति वह एक ब्रह्म का चिंतन करता है । जब शंकरदेव ने भागवत पुराण संस्कृत में पूछे, किसे पूजते हो, किसका ध्यान करते हो ? वह बार बार यही कहता `मैं ब्रह्म का चिंतन करता हूं । शंकर ने दीवान से कहा `यह व बौद्धाचार है, इसे भगा दीजिए । `दीवान ने इस सन्यासी को अपने स्थान से निर्वासित कर दिया। कहा जाता है इस घटना से साइटा सन्यासी क्रुद्ध हो कर शंकर का पुतला बनाया और सर के बाण से उसे बेधा-- कुछ दिन के बाद शंकर का स्वास्थ्य गिरने लगा ।[1]

शंकर गोकुल, मथुरा, द्वारका, वृंदावन, गोवर्द्धन आदि बारह बन :की कथा सदैव कहते थे: कालिन्द्री, वत्स, धेनु, गोप गोपी की लीला चरित्र सदैव कहते थे । राजा ने कहा आप जिस प्रकार मेढक पायस की, दरिद्र अष्टनिधि की, भिक्षु अमृत की, कामना करता है, उसी प्रकार मैं भी वह लीला देखना चाहता हूं । `शंकर ने कहा `अवश्य दिखा सकता हूं ।` नौ दिन की यात्रा समाप्त कर शंकर पाटवाउसी पहुंचे ।

प्रात: काल छोट आता तथा ठाकुर आता ने सेवा की-- इसी समय उजान असम से अनंत कंदलि दशम के मध्य, शेष पद के द्वारा सेवा की । कंदलि ने भक्ति को ह्रस्व कर के युद्ध को दीर्घ कर दिया था । यह रचना शंकर के अनुकूल न थी, अत: उन्होंने माधव से कहा `मैं आरंभ का भाग ले रहा हूं, तुम मध्य के भाग से आरंभ करो । `आर को ले और हरिवंश की कथा का मिश्रण दे, शंकर ने रुक्मिणी हरण तथा कुरुक्षेत्र की--माधव ने राजसूय की रचना की ।[2] डा० नेओग का मत है, यहां रुक्मिणी हरण नाटक की ही रचना हुई होगी, क्योंकि रुक्मिणी हरण काव्य बरदोवा में ही लिखा जा चुका था ।[3]

१- वही -- पृ० २०५-२०६

२- वही० -- पृ० २०७-२०८

३- म० ने० -- गि० श्री० -- १७९

वृंदावनीया वस्त्र :- इस विचित्र व स्त्र के बुनने में छ: मास से अधिक समय लगा । एक वर्ष पश्चात स्करात दीवान चिलाराम को हविष्यान्न कराके,एक चौकी पर चटाई बिछाकर उस इस वस्त्र को फैला दिया । इस वस्त्र में वृंदावन के बारह बन और समस्त लीलाएं दिखाई गई थीं,इसके अक्षर स्पष्ट और पठनीय थे [1] । राजा इससे परम संतुष्ट हुए तीस रुपया,चार सुवर्ण-मुद्रा और एक जोड़ा वस्त्र दिया । इसके अतिरिक्त दिग-विजय में प्राप्त युधिष्ठर के यश की वासुदेव मूर्ति भी दी ।

राम विजय नाट :- व स्त्र को देखने के पश्चात चिलाराम ने शंकर से रामायण के नाटक लिखने को कहा । एक रात में उन्होंने नाट,सूत्र गीत,भटिमा कथा पूर्ण की,राजा को सुनाया राजा इसे देख सुन कर अत्यन्त प्रसन्न हुए-- उनकी तीस पत्नियों ने व्रत किया और शंकर देव की सेवा की । राम विजय नाट उनकी अंतिम रचनाई । फ्लाण के गद्य श्लोक में शब्द किया गया है । `श्री शंकर क्षिति तुरंग गुणेन्द्र शाके जातो गमतु हरिपदं खनिला विष्णु चंद्रे इति १४६०` [2] ।

बरगीत :- शंकरदेव ने प्रथम तीर्थ यात्रा में बद्रिकाश्रम में `मन मेरि राम चरणहि लागु` गीत की रचना की थी । पाटबाउसी में उन्होंने दो शतक से अधिक गीत लिखे । कथाचरित के अनुसार इनकी संख्या २४० थी । इन गीतों को कमला गायन भवराव ले गए थे और वहां पूरवा वायु से घर जल गया शंकर को इन गीतों की पुस्तक के जल जाने से खेद हुआ,उन्होंने माधव से कहा `मैंने श्रम से ये गीत लिखे थे,वे जल गए अब तुम गीत रचना करो,मैं न करुंगा । जो गीत भक्तों के मध्य प्रचलित हो चुके थे ,उनका संग्रह माधव देव ने किया [3] ।

अंतिम बार,शंकरदेव पाटबाउसी में एक मास ठहरे । नारायण ठाकुर और दक्षिण तट के भक्तों सहित कथा- वार्ता चलती थी । अन्य भक्तों सहित शंकरदेव माधवदेव के

१- उ० ले० - क० गु० च० -- पृ० २१३

२- वही पृ० २१४

३- उ० ले० -- क० गु० च० -- पृ० २१३

स्थान गनककूचि पहुंचे और यहीं एक रात ठहरे यहां माधव के साथ स्वच्छंद रुप से विचारों का आदान प्रदान हुआ और शंकरदेव ने अपना हृदय खोल कर रख दिया।[1] 'माधव से कहा 'मेरा धर्म सात पीढ़ी तक प्रवर्तित करना। दशम- कीर्तन में मुझे पाओगे -- तुम बड़ा घर और बड़ा मेल न करना, नहीं तो दुखी होंगे और कीर्तन शास्त्र संग्रह करना।[2]

शंकरदेव ने भक्तों से विदा लेकर नाव द्वारा बिहार की ओर प्रस्थान किया-- पानी-कुंधिर, से भक्त गण उन्हें देखते रहे। बटियाभारी शूद्रा पाटगिरी के घर रह, योगीखोला केसमीप यदुनाथ, होते हुए दूसरे दिन काचलकूटा में नाव बांध दी। दूसरे दिन शंकर राजबाड़ी गए। यहां कमलप्रिया और चिलाराम ने उनका सत्कार किया।[3] यह निश्चित है कि इस बार की बिहार यात्रा में उन्हें आठ-दस दिन लगे होंगे।

बेजबरुआ ने लिखा है 'इस बार शंकर देव ढाई वर्ष बिहार में रहे और यहां के काजी बैला के बगीचे को काट कर सत्र का निर्माण किया--यहीं से डेढ़ वर्ष के पश्चात माधव बांकुरा गए। डा० नेओग का मत है कि यह कथा अन्य चरित पुस्तकों में इसके पूर्व दी जा चुकी है।[4]

एक दिन राजा नारायण ने शंकरदेव से शरण देने की प्रार्थना की। इस ओर वे राजा, मंत्री, कर्मकांडी ब्राह्मण का गुरु बने न होने का दृढ़ संकल्प कर चुके थे। इसके अतिरिक्त यह भी था राजा शाक्त मत की ओर अधिक आकर्षित थे-- दो वर्ष पूर्व कामख्या मंदिर का जीर्णोद्धार किया जा चुका था कहा जाता है शंकरदेव ग्यारह दिन राजा से न मिले। एक दिन राजा ने उन्हें स्वयं बुलाया, नाना प्रकार से समझाने पर भी राजा सहमत न हुए। 'कल तय देखा जायगा, कह कर शंकरदेव चिंतित मुद्रा में अपने आवास की ओर लौटे।[5]

काचलकूटा नामक स्थान में, भाद्रपद २१ बृहस्पतिवार, शुक्ल द्वितीया, मध्याह्न बेला बुध योग, आर्द्रा नक्षत्र शक १४९० में शंकरदेव ने नर देह त्याग, राम नाम स्मरण कर

१- म० ने० --श्री० शं० -- पृ० १८५

२- उ० ले० -- कं० गु० च० -- पृ० २२६

३- वही -- पृ० २२५-२२६

४- म० ने० -- श्री० शं० -- पृ० १८६

५- म० ने०-- श्री० शं० -- पृ० १८७

वैकुंठगामी हुए [1] । रामानंद के अनुसार द्वितीय स्कंध की रचना के पश्चात बुधवार के दिन उनके दाहिने हाथ की गांठ में एक फोड़ा हुआ [2] । रात भर शरीर ज्वर तथा पीड़ा से पीड़ित था--- प्रातः काल उठ, उन्होंने स्नान ध्यान किया [3] । भाद्रपद शुक्ल द्वितीया वृहस्पतिवार, एक प्रहर व्यतीत होने पर शंकर ने शरीर त्यागा [4] ।

१- ब० ले० -- क० गु० च० पृ० २२४

२- रा० मं० -- गु० च० पृ० -- ३६१

३- वही ------ पृ० ३६२

द्वितीय अध्याय

माधवदेव का जीवन वृत्त

माधवदेव का जीवन वृत्त

जन्म :- माधव देव का जन्म वर्तमान लखीमपुर जनपद के अंतर्गत लेटेकुपुखुरी पार हरसिंग वड़ा के घर, १४११ शक में ज्येष्ठ मास के अमावस्या तिथि, रबिवार के दिन भरणी नक्षत्र अर्द्ध रात्रि में हुआ।[१] जन्म लग्न के संबंध में चरित पुस्तकों में अत्यधिक मत भेद है। रामानंद के अनुसार उनका जन्म वैशाख मास, शुक्ल पक्ष नवमी तिथि को दो पहर को हुआ।[२] रामराइ की संत सब की वंशावली के अनुसार १४११ शक, ज्येष्ठ मास के रविवार कृष्ण पंचमी को माधव देव का जन्म हुआ।[३] बरदोवा चरित के अनुसार १४११ में ज्येष्ठ मास की पूर्णिमा, रविवार की आधी रात को माधव देव का जन्म हुआ।[४] बेजबरुआ के उद्धृत ष चरित में है कि १४११ शक में ज्येष्ठ मास की प्रतिपदा को माधव का जन्म हुआ। डा० महेश्वर नेओग का मत है कि माधव का अविर्भाव १४११ शक के ज्येष्ठ मास में हुआ।[५]

पिता का रोग :- लेटुकुपुखुरी के पार घर बना कर माधवदेव के पिता माधव और अपनी पत्नी के सहित रहे। कुछ दिन पश्चात माधव लकड़ी-ईंधन संग्रह करने के योग्य बड़े हुए। इसी समय उनके पिता जिंजिवात :अंकुपीड़ा रोग हुआ, केवल अग्नि से सेंकने पर ही पीड़ा कम होती थी।[६] वे नाना औषधियों के सेवन के पश्चात ही रोग मुक्त हुए।

१- कथा गुरु चरित, भूमिका-पृष्ठ - उ० लेखारु - १९५२ पृष्ठ ५०

२- ज्येष्ठ माह, रविवार अमावस्या तिथि भरणी नक्षत्र, १४११ सदिन थाको दुई प्रहर निशा जन्म नरदेहा बेकत हैछे गुरु जन।

३- शुक्ल नवमी तिथि वैसाग मासत।
दिवा मागे जन्मिलंत दुई प्रहरत।। रामानंद द्विज-श्री गुरु चरित सं० डा० नेओग पृष्ठ ६२

३- डा० महेश्वर नेओग- श्री श्री शंकरदेव पृष्ठ ६३

४- वही ६३

५- वही ६३

६- दैत्यारि ठाकुर - श्री शंकरदेव आरु श्री माधवदेव चरित पृष्ठ ३१-१२७-१२६ पद

शिक्षा -- व्याकरण, पुराण, काव्य, कोष भागवत का अध्ययन कर कायस्थ शास्त्र को माधव ने पढ़ा[1]।

हरसिंग बरा का संगत्याग :- माधव के पिता का समस्त धन चिकित्सा में खर्च हो गया और उनके खाने पीने के लिये कुछ भी शेष न रहा। माधव किसी प्रकार अथक परिश्रम कर पिता-माता का पोषण किसी प्रकार कर रहे थे। बड़ कनागिरि से पुत्र की यह दुर्दशा देखी न गई तथा उन्होंने यह निश्चित किया कि वे उजनी असम के एक मित्र के यहाँ सपरिवार जायेंगे। गोधूलि बेला माधव अपने पिता सहित उसके घर पहुंचे। उन्होंने देखा कि इस व्यक्ति ने न इन लोगों की ओर प्रसन्नतापूर्वक दृष्टिपात किया न आदर किया[2]। बड़कनागिरि को देख वह व्यक्ति अत्यन्त चिंतित हो उठा और सोचने लगा कि यदि यह लोग धन की याचना करेंगे तब तो मेरी अधिक हानि होगी। अत: सोच विचार कर इन अतिथियों को ढेकिशाल या माड़लत में बैठने का स्थान दिया[3]। थोड़ा सा चावल लाकर इन तीन प्राणियों को दिया। दुखित हो इन व्यक्तियों ने भोजन किया। प्रात:काल दोनों व्यक्ति वहाँ से चले गए।

क्षुधापीड़ित पुत्र और पिता :- नदी में स्नान करने के पश्चात माधव गांव से एक लौकी का रस पान कर दोनों व्यक्तियों ने क्षुधा की तृप्ति की[4]। किसी भी कुटुंबी ने इन्हें आश्रय न दिया और इनसे प्रश्न करते कि आप लोग खाली हाथ क्यों आए? किसी प्रकार शाक भात का भोजन किया। अनेक दिन माधव ने स्वयं भोजन न किया, माता एवं पिता को भोजन खिला, उपवास किया[5]।

घाघरि माजि के घर :- माधव के पिता का शरीर रोग ग्रस्त हो क्षीण तथा शक्तिहीन हो चुका था, कई दिन तक आहार न मिलने के कारण इनसे चला न जाता था। माधव अपने माता-पिता सहित उठ बैठ कर आगे बढ़ रहे थे[6]। घाघरि माजि ने इनका सम्मान कर घर में रहने की व्यवस्था कर दी। माधव के शरीर में स्वयं तैल मर्दन कर स्नान कराया। भोजन के उपरांत माजि ने तीनों व्यक्तियों को सुन्दर वस्त्र दिया।

१- रामानंद - श्री गुरु चरित, पद ३६८ पृष्ठ ६३

२- दैत्यारि ठाकुर - शंकर आरु माधव चरित। १३० पृष्ठ ३२

३- रामानंद - श्री गुरु चरित, ३७६ पृष्ठ ६५

४- दैत्यारि -- शंकर आरु माधव - १३१-१३२ पृ० ३३-३४

५- दैत्यारि-- शं० मा० च० १५८ पृष्ठ ३७

घाघरि माजि ने माधव को कोई कार्य न करने दिया । माधव और उनके माता का भरण पोषण उसने किया[1] । यहीं माधव की परम सुन्दरी बहन उर्वशी का जन्म हुआ ।

माधव का कृषि कर्म :- घाघरि माजि ने माधव को अपने सात हल देकर कहा कि तुम इनकी सहायता से खेती करो जिससे यहां से जाते समय तुम्हें खाली हाथ न जाना पड़े[2] । माधव ने धान तथा उड़द की खेती आरंभ की । उड़द के बीज उन्होंने इस प्रकार बोया कि यह अधिक घना व जमा और माधव के पिता ने कहा कि जितना होना चाहिए था वह भी अब न हो सकेगा । अत: माधव ने बैलों को उड़द के अंकुरित पौधे खिला दिया पशुओं के चरने के पश्चात सारे खेत में कीचड़ हो गया, इसे देख सब लोग हंसे[3] । पशुओं द्वारा चरे जाने के पश्चात जो डंठल शेष था, उससे उड़द की ऊपज अधिक हुई

माधव का होकोराकूचि में वास :- माधव के पिता ने घाघरि माजि से विदा ली और उर्व्वशी के विवाह के लिये वर की खोज में होकोराकूचि गए । ठेन्वुवानी वंश के होंकोराकुंज्यिा के पुत्र गयापाणि को उच्च कुल का संतान समझ उनके साथ माधव की ब दबहन उर्वशी का विवाह उनके पिता ने कर दिया[4] । अनेक दिन माधव वहीं रहे । मां को बहनोई के घर छोड़ माधव अपने पिता के साथ वांकुका चले[5] ।

रामानंद के अनुसार माधव के पिता के पिता का देहांत फागुन मास में हुआ । एक वर्ष तक वे नारायणपुर में रह कर्म-कार्य करते रहे । माधव ने अपनी माता के साथ आलोचना कर उर्वशी का विवाह राम दास वैष्णव से कर दिया । पिता के कार्य में अधिक व्यय हुआ और एक सौ रुपये से अधिक ऋण हो गया । अत: वे माता को राम दास के घर छोड़ वांकुका गये ।

१- वही ०	१६३	३६
२- वही	१८९	४१
३- वही	१८५	४२
४- वही	१६२	४३
५- वही	२०४	४६

बांकुा में — दैत्यारि के अनुसार माधव और उनके पिता बांकुा गए।[१] रामानंद के मतानुसार माधव के पिता की मृत्यु माधव के बांकुा जाने के पूर्व हो गई थी।[२] माधव के बड़े भाई ने पिता और माधव का आदर सत्कार कर कुशल पूछी। माधव के पिता ने अपने बड़े पुत्र से माधव का परिचय कराया-- माधव ने रुप गिरि को नमस्कार किया।[३]

माधव की शिक्षा — माधव ने बांकुा में शास्त्र/पुराण तथा कायस्थिका वृत्ति को पढ़ा।[४] संस्कृत के गद्य-पद्य/न्याय/तर्क तथा नीति की शिक्षा उन्हें यहीं मिली। डा० महेश्वर नेओग ने राजेन्द्र अध्यापक को माधव का शिक्षक लिखा है।[५]

पिता की मृत्यु — कुछ दिन पश्चात माधव के पिता का यहीं देहांत हो गया।[६] दोनों भाइयों ने मिलकर पिता का शवदाह कर समस्त प्रेतात्मिक कार्य कर्म किया। कई मास बांकुा में रहने के पश्चात माधव ने मां से मिलने की इच्छा प्रकट की। रामानंद के अनुसार माधव के पिता की मृत्यु नारायण पुर में बैसाख मास में हो गई थी।[७]

टेम्बुवानी की ओर प्रत्यावर्तन — श्री तीर्थ नाथ शर्मा के अनुसार माधव के पिता की मृत्यु बांकुा में हुई।[८]

माधव के बड़े भाई ने माधव को सुपारी से भरी एक नाव देकर बिदाई दी। माधव की माता/ब बहन तथा बहनोई ने माधव का अत्यन्त हर्षित हो स्वागत किया माधव की मां ने जब पति की मृत्यु का समाचार पाया/उन्होंने शंख- सिंदूर का त्याग कर सबस्त्र स्नान किया।[९]

कन्या को जोरोन पहनाना — कुछ दिन बाद माधव ने एक सजातीय कन्या को जोरोन पहनाया।[१०] विवाह के पूर्व वर अपनी परिणिता को कुछ अलंकार प्रदान करता है, इसे ही असमिया समाज में जोरोन पहनाना कहते हैं।

१- दैत्यारि - शं० आरु माधव चरित पद २१० पृष्ठ ४७
२- रामानंद द्विज -- गुरु चरित पद ० ३६६
३- दैत्यारि -- शं० आ० माधव चरित २१२
४- दैत्यारि -- शं० आरु मा० चरित २१३ पृष्ठ ४८
५- डा० महेश्वर नेओग- श्री श्री शंकरदेव पृष्ठ १०५
६- दैत्यारि - शं० आरु मा० चरित २१४ पृष्ठ ४८
७- रामानंद द्विज- श्री गुरु चरित पद ३६६ पृष्ठ ६६
८- A. E. A. L. पृ० १५०
१०- दैत्यारि -- शं० आरु मा० चरित, पद २१६

माधव का बांकुका वास माधव देव कुछ दिन अपने अग्रज बंधु के साथ बांकुका में रहे । पैतृक संपत्ति के विषय में दोनों भाइयों में कलह आरंभ हुआ । माधवदेव को भी संपत्ति का अंश प्राप्त हुआ और कुछ दिन उसका उपभोग उन्होंने किया । इस सम्पत्ति को असत्य जान कर इसका त्याग कर,माधव ने इसे अपने बड़े भाई को दे दिया । अत्यन्त विनम्र शब्दों द्वारा संबोधित कर इस प्राप्त अर्थ को लौटा दिया । इस प्रकार सम्पूर्ण कलह नष्ट हो गया,माधव के प्रति उनकी भाभी का अपार स्नेह था । मां के दर्शनार्थ माधव की टेन्बुवानी जाने की इच्छा हुई [१] ।

माधव को संग्रहणी रुप चन्द्र गिरि की भार्या प्रात: काल जल भरने के लिये नदी तट पर आई,उसने देखा कि व्यक्ति अचेतावस्था में पड़ा हुआ है । निकट जाकर देखा,बापु माधव पड़े हुए हैं-- उन्हें देख कलस को फेंक तत्क्षण घर दौड़ी हु' दौड़ी गई । माधव के अग्रज ने आकर उनकी सेवा और सहायता की । बार मास तक वे संग्रहणी से पीड़ित रहे,उनका शरीर अत्यन्त क्षीण तथा दुर्बल हो गया [२] ।

देवी पूजा तथा बलि रुपचन्द्र गिरि ने आश्विन मास में देवी पूजा के निमित्त दस बकरी खरीदा और उनकी बलि दे भगवती की आराधना की-- इस अवसर पर ब्राह्मणों को अर्थ दान दिया । रुपचंद्र गिरि की पत्नी ने मांस रांधा [३] ।

मांस की गंध पा माधव को भी मांस खाने की इच्छा हुई । उनकी भाभी ने कहा कि इस मांस के भक्षण से संग्रहणी रोग और बढ़ेगा और कोई भी रुग्ण व्यक्ति मांस भक्षण नहीं करताहै। ~~व्यंजन~~ माधव की भाभी ने मांस केसमान आलू का व्यंजन ला उन्हें दिया । इसे खा माधव रात भर सुख पूर्वक सोये । रुपचंद्र गिरि को अत्यन्त हर्ष हुआ कि माधव का रोग छाग-मांस से दूर हो गया [४] ।

उजनिकी और प्रत्यावर्तन टेन्बुवानी जाते समय माधव को मार्ग में समाचार प्राप्त हुआ कि तुम्हारी माता अत्यन्त अस्वस्थ हैं,संभव है कि तुमउनके दर्शन न प्राप्त कर सको ।

१- वही   २३३ - २३६

२- रामानंद द्विज -- श्री गुरु चरित - पद ४१५-- ४१८

३- वही --- ४१९- ४२०

४- वही ० ४२१- ४२५

यह समाचार सुनते ही माधव ने देवी से प्रार्थना की कि आज यदि मेरी माता स्वस्थ होंगी, तो मैं आप को एक जोड़ा धवल वर्ण का छाग दूंगा । घर पर माता रोग मुक्त हो धीरे धीरे स्वास्थ्य लाभ कर रही थीं । तीन चार मास के पश्चात माधव सुपारी बेचने के लिये बाहर गये और रामदास से कहा कि वे एक जोड़ा छाग देवी पूजा के लिये खरीद लें ।[1]

रामदास ने बलि के बकरे न खरीदे । माधव के प्रश्न करने पर वे कह देते थे कि बकरा गृहस्थ के घर है । एक दिन माधव ने अधिक बल देकर रामदास से पूछा कि वे बलि के बकरे कहां हैं । रामदास ने उत्तर दिया जो जीव को इस लोक में काटता है, उसे वह जीव परलोक में काटता है ।[2]

शंकर के साथ माधव का तर्क प्रातः काल स्नान कर दोनों व्यक्ति गुवा इत्यादि ले शंकर के दर्शनार्थ चले । शंकरदेव शौच, शुद्धि स्नान, गुरु सेवा, नाम कीर्तन कर भक्तों सहित चौपाल में बैठे थे । कोटि के सूर्य सदृश ज्योति, गौरवर्ण, धनाकृति भाल, नील आकुंचित केश, शंख प्राय ग्रीवा, कानों में मकर कुंडल सुशोभित था । इस रूप को देख माधव सिहर से उठे । रामदास ने दंडवत किया और संकोच सहित माधव ने शंकर को नमस्कार किया ।[3]

रामदास ने माधव का परिचय कराया कि यह दीघलपुरिया के पुत्र हैं । मैंने इनके कहने पर पाठा नहीं खरीदा और आपके समीप इन्हें लाया हूं ।

इसके उपरांत शंकर ने माधव को अपने निकट आसन दिया और कहा मैं समझ गया कि शास्त्रों का परिचय तुम्हें नहीं प्राप्त हुआ है । मत्त मूर्ख व्यक्ति शास्त्रों के ज्ञान के फलस्वरूप अन्य देवी देवताओं की पूजा करते हैं । यह सुनते ही माधव ने अत्यन्त प्रवाह युक्त शैली में श्लोक पाठ किया । महामाया देवी परमेश्वरी हैं और उनकी पूजा चराचर करते हैं ब्रह्मा, रुद्र, चंद्र आदि अन्य देव उनकी अर्चना करते हैं । दुर्गा प्रकृति की अंश है तथा उनकी पूजा सभी व्यक्ति करते हैं ।[4] शंकर देव ने उत्तर दिया "यह जानते हो न कि प्रकृति भी ईश्वर की सृष्टि है, अनादि, अनन्त, नित्य, निरंजन तथा

१- दैत्यारि ठाकुर -- श्री गुरुचरित -- २४६-२४८ पृष्ठ ५७-५८

२- वही ० २५१

३- उपेन्द्र लेखारु- कथा गुरु चरित, पृष्ठ ६६

४- रामानंद -- श्री गुरु चरित -- ४५६-४६० पृष्ठ ११३

सनातन देव हरि हैं जो इस प्रकृति का सृजन तथा संहार करोड़ों बार करते हैं । कोटि कोटि माया जिनकी आज्ञा शिरोधार्य कर सेवा करती हैं तीन गुणों के द्वारा वह विनोद में सृष्टि का प्रवर्तन करता है । ईश्वर से श्रेष्ठ माया है, यह वाममार्गियों का कथन है[1] । पुराण, भागवत गीता में यह नहीं कहा गया है ।

माधव ने कहा कि लोग घी के दीप की बलि देते हैं और इसके द्वारा स्वर्ग की कामना करते हैं । शंकरदेव ने उत्तर दिया कि विष्णु भक्त स्वर्ग की वांछा नहीं करते- जिस प्रकार अमृत पान करने वाला व्यक्ति खारा पानी नहीं पीता है । माधव ने कहा जो व्यक्ति कामरुप में रह अंबिका देवी की पूजा करेगा, अंत काल में वह देवी के प्रसाद से अक्षय स्वर्ग पद प्राप्त करेगा । शंकर ने उत्तर दिया कि हिंसा कर्म द्वारा स्वर्ग प्राप्ति नहीं होती-- जो वैष्णवी पूजा कर स्वर्ग लाभ करते हैं, उन्हें यातना का भय नहीं होता[2] ।

माधव ने कहा कि शास्त्रानुसार गृहस्थ को प्रतिदिन पांच बलि देनी चाहिए, जो पापी इन पांच यज्ञों को नहीं करते, वे मरने के पश्चात नरक में पड़ते हैं[3] ।

<u>माधव को कृष्ण भक्ति का उपदेश</u> जो व्यक्ति कृष्ण के शरणागत हो, काय वाक्य मन से सुदृढ़ विश्वास सहित कृष्ण के पदकमल का स्मरण करता है, इसकी तुलना किसी से नहीं की जा सकती, अंत काल में वह विष्णुलोक में स्थान पाता है । माधव ने कहा यह निवृत्ति मार्गियों की बात है जो घर त्याग, इन्द्रियों का दमन कर विरक्त हो गये हैं । जो प्राप्त हो उसी आहार से संतुष्ट रहना और प्रवास कर तीर्थ यात्रा कर चित्त शुद्ध करना और जन्मान्तर पश्चात सत्संग द्वारा भक्ति कर ही व्यक्ति गति लाभ कर सकता है । लोग भार्या-पुत्र के प्रति आसक्त हैं और साथ साथ काम क्रोध तथा लोभ से उन्हें अधोगति प्राप्त होगी[4] ।

शंकर ने उत्तर दिया कि कृष्ण ने गीता में कहा है कि जो सब धर्मों का परित्याग कर मेरी शरण में आता है उसे मैं समस्त पापों से मुक्त करता हूं । मैंने सब का सार तुम्हारे सम्मुख रख दिया है, इसमें किसी प्रकार का संशय नहीं । पद्मपुराण में शिव ने पार्वती को नाम का महत्त्व बताया है और कहा है कि जो एक देवता की उपासना करता है वह समस्त भोगों को उपलब्ध कर सकता है । पार्वती नाम धर्म ही सर्वश्रेष्ठ धर्म है[5] ।

१- वही ४६० - ४६२ पृष्ठ ११३-११४
२- वही ४६३ - ४६५
३- वही ४६६
४- वही ४६७ - ४६८
५- वही ४६९ - ४७२ पृष्ठ ११८

शंकर ने उत्तर दिया कि जो व्यक्ति कर्म-योग भक्ति करते हैं उनकी यह अवस्था होती है तथा जो लोग भागवती भक्ति करते हैं उसका निर्णय इस प्रकार है, सुनो । दृढ़ निश्चय सहित वे केवल कृष्ण की ही पूजा करते हैं, हरि की पूजा से देवता गण प्रसन्न होते हैं । इस बात को जानकर महंत सकल कृष्ण की पूजा करते हैं । जिस प्रकार वृक्ष के मूल में जल दान देने से शाखा-पत्तियां तुष्ट होती हैं इसी प्रकार कृष्ण की पूजा से सब देवता संतुष्ट होते हैं, डाल-पत्रों को पानी देने से वृक्ष को संतोष नहीं होता, इसी भांति पृथक पूजा से देवता प्रसन्न नहीं होते ।[1]

माधव प्रवृत्ति मार्ग का प्रतिपादन करते थे तथा शंकर उसका खंडन करते थे ।[2] दोनों ही कवित श्लोक पढ़ रहे थे और वही दोनों समझते थे और शेष लोग इन्हें देख रहे थे । माधव छः सात श्लोक क्षिप्र गति से पढ़ते और शंकर केवल एक श्लोक में उत्तर दे देते । शंकर ने पुनः कहा कि देवकी नंदन के अतिरिक्त अन्य कोई देव नहीं तथा नाम, धर्म, भिन्न कोई धर्म नहीं है । माधव का शरीर यह सुनकर पुलकित हो उठा और उठकर उन्होंने शंकर के चरण स्पर्श किये ।[3]

माधव ने कहा कि अनेक जन्मों की दुर्वासना तथा अज्ञान आदि अन्य ग्रंथियां आज आप के वाक्य के प्रभाव से दूर हुई और मैं निर्भीक हुआ । तुम्हारे चरणों को कृपामय मैंने आज पकड़ा है ।[4]

<u>माधव की कृष्ण पूजा</u> घर जा कर माधव ने रामदास से क्षमा याचना की और कहा कि आज मुझे शंकर के प्रसाद से महाधर्म मिला है । दूसरे दिन प्रातः काल माधव स्नानादि कर धौत वस्त्र धारण कर आसन पर बैठे । नैवेद्य आदि पूजा की सामग्री ला माधव ने स्पष्ट कहा कि मैं अन्य देवता का पूजन न करूंगा यह सब केवल हरि को ही उत्सर्ग किया जा सकता है । कभी भी अविद्या देवी की उपासना न करूंगा इसे सुन रामदास गुरु अत्यन्त तुष्ट हुए । हाथ में तुलसी तथा पुष्प ग्रहण कर कृष्ण की पूजा की । मोदक तथा संदेश इत्यादि भोगों को माधव ने कृष्ण को अर्पित किया ।[5]

१- वही ४७७-४७६ पृष्ठ १२१ तथा दैत्यारि ठाकुर-श्री गुरु २६७

२- वही ४८२ पृष्ठ १२२

३- वही ४८४ पृष्ठ १२३
तथा दैत्यारि - गु०च० पद २७० पृष्ठ ६२

४- रामानंद - श्री० गुरु चरित ४८६ पृष्ठ १२४

५- वही ४६६- ४६८ पृष्ठ १२७

<u>माधव का व्यवसाय त्याग</u> शरणागत होने के पश्चात माधव चार पांच दिन घर ठहरे, पुन: श्रा शंकरदेव से निवेदन किया मैं चार मास में घर का लेना देना समाप्त कर आप के स्थान को लौट आऊंगा। घर जा कर माधव ने जिसे चार देना था उसे छ: दिया और दस के पाने वाले को पंद्रह दिया और जिन लोगों से माधव को धन पाना था उन्हें उन्होंने सप्रेम बुलवाया और कहा कि मुझे व्याज नहीं चाहिए और न पूरा मूल ही, केवल मूल का आधा धन शीघ्र चुका कर दो। इस प्रकार उन सभी व्यक्तियों ने रुपये लौटा दिये जिन्होंने माधव से उधार लिया था।[1]

<u>माधव की मां द्वारा गृह त्याग न करने का अनुरोध</u> माधव की माता ने माधव से आग्रह किया कि तुम्हें विवाह करना होगा, यदि विवाह न करोगे, तो पुत्र कैसे होंगे, जिसके पुत्र नहीं होते उसे लोग अच्छा नहीं समझते और देव-पितृ गण पिंडदान भी ग्रहण नहीं करते। पंडित, ब्राह्मण, जाति कुल के वृद्ध व्यक्ति तुम्हारी निन्दा करेंगे यदि तुम अपने बंधुओं को त्याग उदासीन हो जाओगे। माधव ने माता को संक्षिप्त उत्तर दिया "यदि मुझे बंधु माधव त्याग दें तब तो कोई मित्र गण मुझे अच्छा न कहेंगे।[2]

माता को रामदास के स्थान पर छोड़ माधव परम आनंदित हो शंकर के स्थान की ओर चल पड़े।[3]

<u>धूवांहाट में कीर्तन उत्सव</u> दैत्यारि के अनुसार जब शंकर- माधव दोनों व्यक्ति एक स्थान पर मिले, मानों दो ईश्वर ही मिले हों। राम राम गुरु तथा रामदास दो ओजा हुए और माधव डाइना पालि हो कीर्तन करने लगे, इस कीर्तन की ध्वनि गगन को स्पर्श करने लगी और लोग इसे सुन आनन्द सागर में निमज्जित हो गये। स्वभाव से कीर्तन घोषा सुमधुर है, और जब ईश्वर ही ताल धर कर गाते हैं, फिर उसकी महिमा का वर्णन कौन कर सकता है। साक्षात शंकरदेव को सम्मुख देख दर्शकों को अथाह आनंद मिला था।[4]

१- वही ५१८ पृष्ठ १३०

२- वही ५२० - ५२३

३- वही ५२६

४- दैत्यारि - शं० आरु माधव चरित २८५- २८८ पृष्ठ ४५

जोरोन पहनाई गई कन्या का परित्याग शंकर के सम्पर्क में आते ही माधव ने विवाह करने की इच्छा त्याग दी और सोचा कि किस प्रकार कन्या को छोड़ा जा सकता है । अंत में यह निश्चय किया कि हम जाकर कन्या के माता-पिता से अनुरोध करेंगे कि आप शीघ्र विवाह कर दें,मैं कन्या को बांडुका ले जाना चाहता हूं। कन्या बांडुका चली जायगी यह सोच वे लोग विवाह न करेंगे और मैं अलंकार आदि वापस मांग लूंगा । कन्या के घर जा माधव ने स्पष्ट कहा कि कन्या का विवाह कर दो,उसे लेकर मैं बांडुका जाऊंगा । बांडुका का नाम सुनते ही कन्या के अभिभावक ने सब वस्त्र,अलंकार माधव को लौटा दिया और कहा कि मैं कन्या का विवाह नहीं कर सकता ।[1]

विष्णुप्रिया का विवाह माधव से करने की कामना शंकरदेव की पत्नी ने एक दिन शंकरदेव विष्णु प्रिया का उनके साथ विवाह कर दूं । दूसरे दिन गुरु ने माधव से यह प्रश्न किया । माधव ने उत्तर दिया कि आप,सब कुछ किया जा सकता हूं किन्तु इसे मैं नहीं मान सकता । जीवन के कुशल के हेतु ही आप को गुरु स्वीकार कर चुका हूं । आप के दो चरणों की अतिरिक्त मुझे स्वर्ग की कामना नहीं है । विषय विष की अग्नि में आप मुझे न ठेलें ।[2]

शंकर-माधव संबंध प्रतिदिन माधव शंकर के स्थान पर आते थे । शंकरदेव देख कर माधव से पूछते कि तुम कब से यहां बैठे हो ? यह सुन माधव प्रसन्न हो शंकर को प्रणाम करते और अत्यन्त आनंदित हो बात करते । माधव के आने से रुक्मिणी शंकरदेव को अविलंब जगा देती थी और कहती थी कि माधव बांधव आ गये हैं । शंकरदेव माधव को बांधव माधव ही समझते थे ।[3]

बंदी-माधव स्वर्ग राजा के आदेश पर संन्दिकाइ हाथी पकड़ने के लिये भुइयां लोगों के साथ चले । तीन ओर की रक्षा का भार सामान्य जनों को दिया गया और एक ओर की रक्षा का भार भटिया भुइयां लोगों को दिया गया था । भटिया भुइयां की ओर से वह हाथी भाग निकला । यह देख समस्त भुइयां अत्यन्त दुखी हुए कि स्वर्ग (अहोम) उनकी हत्या कर देंगे सब लोग घर-गृहस्थी छोड़ केवल प्राण बचा कर भाग गये । जब संदिकाइ को यह ज्ञात हुआ कि हाथी भाग गया तथा भुइया भी भाग गये वह अत्यन्त क्रोधित

१- वही ३८२- ३८५ पृष्ठ ८७

२- उपेन्द्र लेखारु - कथा गुरु चरित पृष्ठ ७०

३- दैत्यारि - शं० आ० मा० चरित ३६७- ३६६ पृष्ठ ६२

हुआ और मुख्यां लोगों को बंदी करने की आज्ञा दी ।[१]

माधव को चौताल में बैठा देख दूतों ने वस्त्र उतार शरीर को डोर से बांध बंदी बना लिया ।[२] मनु जोवाई और माधव एक दूसरे से कहते थे कि आरामे :अहोम: हम दोनों की । हत्या कर देंगे,यदि पहले तुम्हें मारा तो मैं नाम स्मरण करा दूंगा, यदि मैं मारा गया तो तुम नाम स्मरण करा देना ।[३]

बर संदिकाइ ने इन दोनों को बंदी गृह में डाल दिया । इन लोगों के पास खाने पीने की कोई वस्तु न थी । माधव के दुख का वर्णन कहां तक किया जाय,उनके शरीर पर केवल एक वस्त्र था,भूमि पर सोना पड़ता था हाथ के अंजलि से पानी पीना पड़ता था,केवल एक जोड़ा मंदिरा के अतिरिक्त अन्य कोई वस्तु उनके पास न थी । प्रात:काल माधव मंदिरा पर ताल बजा कर गीत गा घूम फिर कर भिक्षा याचना करते थे,उनके आगे पीछे दो रक्षक सदैव चलते थे । माधव जब उच्च स्वर से गीत गाते थे,उस समय श्रोता गण आनंद सागर में डूब विभोर हो उठते थे ।[४]

भिक्षा द्वारा केवल एक समय का भोजन प्राप्त होता था,आधा मनु खाते और शेष माधव बना कर खाते थे । इस प्रकार माधव ने दो मास कारावास में व्यतीत किया ।[५]

माधव का न्याय

दूतों ने माधव आदि अन्य बंदियों को सुनाया कि संदिकाइ तुम लोगों को बुला रहे हैं । यह सुनते ही माधव दौड़ आगे हो गये और मनु उनके पीछे पीछे खिन्न मन से आगे बढ़ बढ़ रहे थे । माधव को देख,संदिकाइ के मन में श्रद्धा हुई और सोचा यह मनुष्य देवता है,मुख्यां नहीं,इसका कोई दोष नहीं है,अत: यह निरंक और निर्भय है ।[६]

माधव से जब चेऊटिया :[illegible]: ने प्रश्न किया कि तुम हमें कितना धन दे सकते हो ? माधव ने उत्तर दिया मैं भिक्षा याचना कर किसी प्रकार भोजन पाता हूं इस बात से सभी परिचित हैं,मेरा केवल एक जोड़ा मंदिरा ही मेरे पास है ।[७] संदिकाइ

१- रामानंद - श्री गुरु चरित ७००-७०४ पृष्ठ १७६
२- वही ७११ पृष्ठ १७८
३- दैत्यारि- शं० मा०ना० चरित ४१६ पृष्ठ ९६
४- रामानंद - श्री गुरु चरित ७१३-७१५ पृष्ठ १७८-१७९
५- वही --- ७१७ पृष्ठ १७९
६- वही ७२२ पृष्ठ १८०
७- वही ७२५ पृ० १८१

ने माधव को मुक्त कर दिया ।

मधु के वध के पूर्व माधव उनसे मिले और कान में राम राम नाम सुनाया[1] और गले लिपट कर रोने लगे । मधु ने बार बार माधव को प्रणाम किया और माधव एक दृष्टि से उन्हें देखते रहे[2] । मधु के कटे हुए मुंड से तीन बार राम नाम शब्द निकला । रोते हुए माधव शंकरदेव के पास गये और यह वृत्तांत सुनाया[3] ।

माधव की भक्त प्रीति   माधव नाव द्वारा ब्रह्मपुत्र के बहाव की ओर यात्रा करने के लिये प्रस्तुत हुये । नाव में कुछ स्थान खाली देख दो भक्तों ने माधव से प्रार्थना की उन्हें नाव पर बिठा लें । माधव के साथियों ने निषेध किया कि अधिक लोगों के बैठने से नाव का बोझ अधिक हो जायगा । माधव ने कपड़े वस्तु को नाव के बाहर फेंक इन दो भक्तों को सस्नेह नाव में बिठा लिया[4] ।

शंकर-माधव एक वस्तु   दैत्यारि के अनुसार शंकरदेव जाड़े से अधिक पीड़ित रहते थे और एक दिन उन्होंने माधव से कहा कि वे उनके साथ शयन करें, किन्तु माधव को यह असंगत लगा और उन्होंने कहा कि रात में आप को मेरे पैर हाथ लग सकते हैं, यह कदापि अच्छा नहीं । अत: मैं आप की इस इच्छा की पूर्ति नहीं कर सकता । अनेक दिन के पश्चात माधव ने शंकर का कथन मान लिया और उनके डर से मस्तक स्पर्श कर सोने लगे-- शंकरदेव के सो जाने पर माधव उनके ऊपर वस्त्र डाल, उसके ऊपर अपना एक हाथ रख सो जाते थे[5] ।

माधव की गंगा यात्रा-बांकुड़ा में रूपचंद्र की शिव पूजा   राम राम गुरु तथा अन्य ब्राह्मणों सहित माधव गंगा के तट पर गये अस्थि विसर्जन कर दान दान किया । वहाँ का कार्य समाप्त कर जगन्नाथ दर्शन करने चले । जगन्नाथ जाते समय माधव ने एक गीत गाया, जिसमें राम का वर्णन था जब वह विजयी होकर आ रहे थे[6] । अंत में प्रभु जगन्नाथ का, दर्शन कर राम राम गुरु के साथ सभी व्यक्ति लौट आये ।

१- दैत्यारि -- शं० आ०मा० चरित ४२१ पृष्ठ ९८

२- रामानंद - गुरु चरित ७७७-७७८

३- दैत्यारि -- शं० आ०मा० चरित ४२६-४२७

४- दैत्यारि - शं० आ०मा० च० ४४५-४४६ पृ० १०१-१०२

५- वही० ४५६- ४५७

६- वही० ५६५-५६७ पृष्ठ १२४

७- रामानंद श्री गुरु चरित ८३९-८४० पृष्ठ २०४

चैत्र की चतुर्दशी के दिन बांकुरा में लोग घर घर शिव की पूजा कर रहे थे। रुपचंद्र गिरि ने माधव से कहा कि तुमभी मेरे साथ आज शिव की पूजा करो। माधव मुस्करा कर रह गये, मुख से कुछ न कहा। बेल पात और रक्त पुष्प को देख माधव ने एक पद पर एक गीत लिखा, मैं कृष्ण के चरणों की सेवा कर रहा हूं अत: मैं अन्य देवता की पूजा नहीं कर सकता। चैतन्य का परित्याग कर जड़ की उपासना कौन करेगा, मैं कृष्ण को इष्टदेव मानता हूं।[१]

माधव तीन मास तक बांकुरा में रह पुन: शंकर के समीप आये। शंकर ने पश्चिम देश की बात पूछी। माधव ने सारी कथा सुनाई।

<u>तीर्थ यात्रा</u> माधव को शंकर देव ने बुला कर कहा कि मेरी ऊपर के प्रदेशों को देखने इच्छा है और प्रवास के लिये जिन वस्तुओं की आवश्यकता है उनको तुमआप रख लो। राम राम गुरु, रामराम आदि सभी माधव के साथ तीर्थ यात्रा करने निकले। फागुन के मास में सात दिन व्यतीत होने पर शंकरदेव पश्चिम देश की ओर चले तथा उनका पीछा माधव ने किया। जिन स्थानों में शंकर माधव ठहरे वहीं भागवत पढ़ और हरि नाम ले, उत्सव किया।[२]

प्रभात होते सभी लोग चलते थे और माधव शंकर के साथ रहते थे, जब कभी शंकर को प्यास लगती, माधव तत्क्षण आमता दे जल पान कराते थे कभी कभी तप्त भूमि पर शंकर के पद कमल झुलस जाते थे, माधव लोटा में ठंडा जल ले चलते थे। शंकर के चरणों पर शीतल जल डाल उन्हें शांत करते थे। इस प्रकार वह शंकर देव की सेवा करते थे।[३]

<u>माधव की भक्त सेवा</u> शंकरदेव के भोजन कर लेने के उपरांत माधव अपना भोजन स्वयं बनाते थे। साथ के समस्त भक्त जनों को पूछ पूछ खिलाते थे, यदि कभी भोजन शेष न रहता तो वे फिर भोजन बनाते थे।[३ ४]

गंगा के शुभ्र जल को देख शंकर ने माधव से कहा देखो यह प्रभु का पदोदक सब प्रकार के पापों को हरता है। माधव ने प्रश्न किया कि ईश्वर के नाम और पदोदक में नाम धर्म कैसे श्रेष्ठ है।[४५]

१- वही ६४३ पृष्ठ २०५

२- वही ६१२- ६१५, पृ० २२७

३- वही ६१६-६२० पृष्ठ २२८

४- वही ६२१-६२२ पृ० २२६

५- वही ६२६ पृष्ठ २२०

शंकर ने उत्तर दिया कि ईश्वर के नाम में किसी ढंग का भेद नहीं, तीर्थ में स्पर्श का गुण है, इसलिये तीर्थ से नाम श्रेष्ठ है और कलियुग में इसका विशेष महत्त्व है।[१]

गया तीर्थ दर्शन के पश्चात रामराय ने शंकरदेव जी से प्रार्थना की, कि गंगा, गया तीर्थ कर मुझे अधिक संतोष हुआ, यदि हम मथुरा तथा गोकुल के दर्शन कर लें, तो हमारा जीवन सार्थक होगा। शंकर ने रामराय से कहा "माधव चैतन्य है और मैं जड़ समुदाय हूं, माधव के न जाने पर मैं न जा सकूंगा।[२]

राम राय ने माधव से यह प्रश्न किया माधव ने विष्णु का स्मरण कर स्पष्ट कर दिया कि मैं न जाऊंगा क्योंकि मेरे पास खर्च नहीं है। रामराम ने माधव से निवेदन कि मैं आपके खर्च की व्यवस्था स्वयं कर दूंगा-- मेरी एक मात्र इच्छा है कि मैं वहाँ जाकर उस धर्म का अध्ययन कर सकूं जिसका प्रवर्तन रूप भगवान ने किया है और जो इस प्रदेश में भी प्रचलित है यदि दादा द्वारा प्रचारित धर्म और उनका धर्म एक हो, तो मेरे मन का संशय दूर होगा।[३]

माधव ने अत्यन्त कुपित हो रामराम को उत्तर दिया कि जो लोग शंकरदेव का सम्मान करते हैं वे उनके ~~मतरस्य~~ मत का अनुसरण अवश्य करेंगे। तुम्हारा यह आशय था कि जो लोग शंकर के मतावलंबी नहीं हैं, वे शंकर का परित्याग कर दें, मेरा मन दुख से जल रहा है।[४]

माधव का मूर्ति दर्शन   हाजो में हयग्रीव माधव का रूप वर्णन कर, माधव ने कई श्लोक पढ़ा। पुजारी तथा दुवरी के माधव ने सोलह रूपये दान किया। माधव पूजा समाप्त करने के पश्चात कंठ भूषण के पास गये।[५]

कंठभूषण के पास शालिग्राम की बीस से अधिक प्रतिमायें थीं, जिनका पूजन वे प्रत्येक दिन करते थे, चार घड़े जल और पांच टोकरी फूल से इनकी पूजा की जाती थी। माधव के आगमन का समाचार पातेही कंठभूषण पुष्पों की राशि वहीं छोड़ माधव से मिलने चले गये।[६] माधव का कंठभूषण ने उचित सम्मान कर उन्हें अपने समीप रखा। समय समय

१- वही ६२८ पृष्ठ २३०
२- वही ६३३ पृ० २३१
३- वही ६३५-६३८ पृष्ठ २३१-२३२
४- वही ६४१ पृष्ठ २३३
५- दैत्यारि - डॉ० आ०मा०च० १० ६९-१०६२ पृष्ठ २४५
६- वही १०६४ पृ० २४६

पर माधव तथा कंठभूषण कृष्ण कथा की चर्चा करते थे ।[१]

ईश्वर को सिद्धान्न अर्पण करना   एक दिन एक ब्राह्मण ने माधव से प्रश्न किया कि शूद्र होकर तुम ईश्वर को सिद्धान्न अर्पित नहीं कर सकते और न उसे खा सकते हो । माधव ने ऐसा कर उत्तर दिया `तुम्हारे घर में भी दास दासी होंगे और उन्हें तुम भोजन देते होगे । ठीक उसी प्रकार हम लोग कृष्ण के सेवक हैं, फिर हम भक्ष्य, भोज्य आदि वस्तु उन्हें दे सकते हैं । इस उत्तर से ब्राह्मण अत्यन्त प्रसन्न हो माधव के पीठ पर हाथ रख चला गया ।[२]

कौशी में धर्म प्रचार   कौशि विद्यालय के निवासियों ने माधव की प्रार्थना की और उन्हें कौशि तक लिवा गये । माधव ने विद्याधर गणक आदि अन्य जनों--के सम्मुख कृष्ण कथा आरंभ की । दूसरे दिन माधव की प्रशंसा सुन अधिक व्यक्ति आये । बारह हजार से अधिक व्यक्ति माधव का दर्शन करने वहां एकत्र हुये ।[३] तीन दिन चार मास वहां ठहर माधव ने शास्त्रों की कथा कह उनकी शंकाओं का समाधान किया । श्रोताओं को अतिशय आनंद मिला और लोग माधव को गुरु मान, कृष्ण-चरण में शरणागत हुए । भक्तों को संबोधित कर माधव जार्वीरकुविंत की ओर चल पड़े ।[४]

सोना खोने का प्रायश्चित   रामचरण से माधव ने कहा कि यदि सोना मुझे न मिला तो प्रायश्चित करना होगा, यह कह माधव ने उस दिन स्नान न किया । उसी समय राम चरण ने आकर समाचार दिया कि सोना उन्हें मिल गया है । अतः माधव उठ कर शरीर में तैल मर्दन कर स्नान की तैयारी करने लगे । स्नान करने के पश्चात गायत्री पाठ किया उठे, देखा, हाथ में सोने की अंगूठी नहीं है । माधव ने ब्राह्मण-ब्राह्मणी से आकर अंगूठी के संबंध में पूछा । ब्राह्मण ने उत्तर दिया कि मुझे न मिली, किन्तु ब्राह्मणी मौन रही ।[५] ब्राह्मण ने कहा कि परिहास में पाया सोने के लिये मैं भोजन न ग्रहण करूंगा ।[५]

१- वही   ११०३   पृ० १४७

२- वही   १११० - १११५ पृ० १५०-१५१

३- दैत्यारि-- सं०मा०मा०च० ११२७ पृ० १५५

४- वही पद ११३२ पृ० १५६

५- वही   ११५१- ११५४

गृही और उदासीन भक्त एक दिन ग्रीष्म काल में माधव ने कहा `गर्मी के दिन धूप में मेरे लिये भात बनाना अत्यन्त कष्ट प्रद है । `माधव की इस बात को सुन ठाकुर नारायण ने कहा कि तुम्हारा भोजन रामचरण बना दिया करेंगे । माधव ने कहा, हां रामचरण मेरा भोजन बना सकता है, किन्तु उसे उदासीन होना पड़ेगा । रामचरण ने ठाकुर नारायण से निवेदन किया कि वे किसी प्रकार उदासीन हो भोजन नहीं बना सकते, इसके स्थान पर वे अन्य सेवा करने के लिये प्रस्तुत हैं । नारायण ठाकुर ने जब यह[1] कथा माधव को सुनाई माधव ने कहा `भात उसी को बनाना होगा । दो मास तक कहा सुनी होने के बाद भी रामचरण उदासीन न हुए । अन्त में माधव ने अपना भात स्वयं बनाया ।[2]

एक दिन भक्तों प्र० को बुला माधव ने आदेश दिया कि आज राम चरण भात बनायेंगे और सभी लोग भोजन करेंगे । इस प्रकार माधव ने जब राम चरण को भात बनाने को कहा तब भक्तों के मन में विस्मय हुआ । नारायण ठाकुर ने माधव से इसका स्पष्टीकरण मांगा । माधव ने स्पष्ट करते हुए कहा कि बार बार कहने पर जब इन्होंने गृहस्थी का त्याग न किया और शुद्ध चित्त का व्यक्ति जान मैंने भात रांधने की आज्ञा दी ।[3]

अमुरारि भट्टाचार्य से माधव की भेंट आमुरारि भट्टाचार्य वाराणसी में भागवत सहस्र नाम तथा गीता पढ़ कर आये थे राम ने आकर माधव से अनुरोध किया कि उस पंडित के स्थान पर चलें । माधव को देख अमुरारि भट्टाचार्य ने माधव से नाम और स्थान पूछा। माधव ने अमुरारि के सभी प्रश्नों का संतोष जनक उत्तर दिया । इसके उपरांत भट्टाचार्य ने माधव से हरि हर का भेद स्पष्ट करने को कहा । माधव ने अनेक शास्त्रों उद्धरण दे हरि-हर के भेद को पूर्ण रूप से प्रतिपादित किया, भट्टाचार्य उनका मुख देखते रहे । उन्होंने मन में सोचा कि वस्तुतः माधव अन्य पंडितों से भिन्न है परम भगवंत निराकार ब्रह्म मात्र हैं, इसका आप रहस्य स्पष्ट करें । माधव देव की इस बात को सुन भट्टाचार्य पानी पानी हो गया-- माधव की प्रशंसा कर उन्हें शास्त्री से सभा किया । आमुरारि भट्टाचार्य ने माधव को महापुरुष माना ।[4]

१- वही ११५८-११६३ पृ० १६१
२- वही ११६६ पृ० १६३
३- वही ११७२-११७४ पृ० २६१-२६२
४- वही ११६२-११६६

कामरुपा में नीलकंठ के साथ तर्क   श्रुरारि भट्टाचार्य ने सुंदरी में माधव से कहा कि नीलाचल में तुम्हारे संबंध में लोग कहते हैं कि तुम देवी की पूजा नहीं करते, तुलसी की माला नहीं धारण करते । तुम नीलाचल जा उन्हें पवित्र करो । सब राजा बूढ़ा पूजा करेंगे इसी समय तुम्हारा जाना शुभकर होगा । कुछ दिन पश्चात माधव नीलाचल पहुंचे[1] । तुलसी की चार माला हाथ में लिये माधव को नीलकंठ नामक ब्राह्मण ने देखा और माधव को बहुत बुरा भला कहा किन्तु माधव मौन रहे, जब ब्राह्मण ने देखा कि माधव कुछ नहीं बोलते, तो पूछा तुलसी की माला का क्या फल है ? मालती की माला के अनेक फल हैं माधव ने कहा कि मैं अभी तक मौन था इसलिये तुम इच्छानुसार बक बक कर रहे थे । तुम तुलसी की माला का फल जानते हो, पहले मालती की माला का फल झटपट सुनाओ- नाना पुराणों के श्लोकों का उद्धरण दे माधव ने तुलसी की माला का महत्त्व स्थिर किया । माधव की श्लोक पाठ करने की शैली को देख ब्राह्मण अधिक विस्मित हुआ[2] ।

देउरी ने नीलकंठ से कहा कि इस अवसर पर माधव से तर्क न करना चाहिए, उन्हें हम भगवती का दर्शन करायेंगे । जब बर देउरी ने माधव से अनुरोध किया, तो उन्होंने उत्तर दिया 'कौन पापी मातृ का योनि द्वार देखेगा ।' अनेक श्लोक पढ़ यह सिद्ध किया कि इस प्रकार देवी का दर्शन करना अनुचित है । बरदेउरी ने माधव को विचारी पंडित कहा । श्रुरारि भट्टाचार्य ने बरदेउरी को संबोधित कर कहा कि हम लोगों ने जो दस वर्ष में शिक्षा प्राप्त की है, वह भी माधव पढ़ा सकते हैं। मैंने उनके साथ वार्ता की है, उनके समान कामरूप में कोई पंडित नहीं है[3]

सुंदरी परित्याग

सुंदरी के ठाकुरिया कृष्ण दास को समाचार मिला कि राजा रघुदेव सब हरि भक्तों को पकड़ लेता है । माधव ने भक्तों को उस कीर्तन में बैठने का आदेश दिया, वहीं बैठ भक्त गण आसाम राज्य के भक्त बाकड़ा खान से कथा सुन रहे थे[4] । दूसरे दिन भक्तों को कुछ ब्राह्मणों ने बुरी तरह से पीट कर घायल कर दिया । माधव ने जब इस

१- वही १२०१ - १२०५

२- वही १२०७ - १२०६ पृ० २७७

३- वही १२११ - १२१५ पृ० २७७-२७८

४- वही १२७८ पृ० २८८

घटना को सुना, वे अत्यंत दुखित हुये और मथुरा आता को बुला कीर्तन करनेवाले भक्तों को बरपेटा जाने का उपदेश दिया।[1]

गोसाई-घर निर्माण बरपेटा पहुंच माधव ने अनेक प्रकार के नाटक का प्रदर्शन आयोजित किया, जिसे देख वहां के लोग प्रसन्न हुए। झूमुर तथा दधि मंथन नाटक का अभिनय अनेक मधुर गीतों सहित उस स्थान पर हुआ। अत्यन्त मनोरम गोसाई घर की स्थापना की, वैसा घर कामरूप में कहीं नहीं था। नरनारी इस सुन्दर घर का दर्शन करने आते थे। इस घर की कथा राजा को ज्ञात हुई।[2]

राम विजय यात्रा अभिनय तांतिकूचि के लोगों की इच्छा रासलीला करने की हुई। माधव देव से आ कर लोगों ने अनुरोध किया माधव ने कहा कि जो जो हमें चाहिए यदि आप लोग दे सकते हैं तो यात्रा का अभिनय हो सकता है। अस्सी रूपया ले माधव ने सुन्दरा नटुवा को निर्देश दिया कि वह राम एवं सीता की प्रतिमा तैयार करें, अन्य लोगों को रथ सजाने को कहा और अन्य लोगों को चेहरा बनाने का कार्य सौंपा और राम यात्रा के गीतों को स्वयं किया। तांतिकूचि के सभी लोग राम यात्रा का दर्शन करने आये। राम तथासीता की प्रतिमा, दंड, छत्र, चामर सहित रथ के ऊपर रख दी गई-- हनुमान विभिषण भी रथ पर बैठे थे। यात्रा को देख समस्त व्यक्ति प्रसन्न हुए।[3]

श्री शंकर देव का तिथि महोत्सव माधव ने श्री शंकर देव का तिथि महोत्सव [illegible] आयोजित किया, सब श्रेणी के लोग कीर्तन सुनने देखने गये, किन्तु वहां दामोदर देव न थे। माधव हरि चरण से प्रश्न किया 'दामोदर देव को इस उत्सव में भाग लेने के लिये क्यों नहीं आमंत्रित किया। हरि चरण ने उत्तर दिया मैंने एक भक्त को निमंत्रण दे भेजा था, वे न आये, इसके पश्चात मैं स्वयं गया था, उन्होंने यह कह मेरा निमंत्रण अस्वीकार कर दिया कि यदि मैं आज तुम्हारे घर जाऊंगा तो मुझे सब के घर जाना होगा। बापु, इसलिये मैं न जाऊंगा, तुम अपनेघर जाओ। यह सुन माधव हंसे और कहा 'मेरा घर और सब का घर एक समान है, न बुलाने पर भी उन्हें यहां आना चाहिए, मैं समझ गया कि वे क्यों न आये। भविष्य में उन्हें कभी न निमंत्रित करना।[4]

१- वही १२७४ पृ० २८८

२- वही १२८२ पृ० २९०

३- वही १२८६ २९०

४- वही १३०५ - १३२० पृ० १९६

दामोदर गुरु के साथ मतभेद   दामोदर गुरु के पास आ माधव ने प्रश्न किया कि जिसका हम त्याग करतेहैं उसे आप क्यों शरण देते हैं । दामोदर ने उत्तर दिया,तुम्हीं कहो मैं किसे किसे भगा दूं,मेरे सभी हैं,पराया कौन है । माधव ने कहा तुम सत्र स्थापित कर आचार्य तुल्य पद पर सुशोभित हो,क्या विधर्मी को दीक्षा देना दोष नहीं है । उन्होंने कहा जो जो कुछ भी करताहै वह अपनेलिये करताहै,उसका दोष हमें तो न स्पर्श करेगा । शंकरदेव ने तुम्हें गुण-दोष देखने के लिये नियुक्त किया था तुम गुण दोष का विवेचन कर खलों का त्याग कर सकते हो । माधव ने अनेक पुराण, श्रीधर स्वामी के टीका के श्लोकों का उद्धरण किया । दामोदर ने कहा `पुराणों की टीकाकार श्रीधर स्वामी की बातें मैं नहीं मान सकता, श्री भागवत की कथा के अतिरिक्त अन्य पुराण की बात नहीं मान सकता ।[१]

अंत में माधव ने दामोदर से कहा कि शंकरदेव ने रत्नाकर ग्रंथ की रचना अनेक पुराणों के आधार पर की है,तुम्हीं बोलो इस पुराण की कथा का क्या करोगे, शीघ्र कहो,`रत्नाकर ग्रंथ`को मानोगे या न मानोगे ।[२]

दामोदर ने उत्तर दिया `जब चतुर्भुज भगवान स्वयं आकर कह रहे हैं फिर मैं क्यों न मानूंगा ।` माधव यह सुन `सज सज `बोल और कुछ न कहा । यहीं दोनों गुरुओं का संबंध विच्छेद हो गया ।[३]

रामचरण की परीक्षा   भक्तों सहित माधव कृष्ण कथा कह रहे थे बड़ी सभा में बैठ कीर्तननियां कीर्तन कर रहे थे राम चरण पाटर पशोड़ा उड़िया का गान सुनने उसके निकट चले गये और बाद में माधव को दंडवत किया । राम चरण के वस्त्र को मृदुल हंसी कर माधव ने पूछा यह वस्त्र कहां मिला । राम चरण नेउत्तर दिया कि इसे आप ने दिया,और कहां से प्राप्त होगा । माधव ने इस वस्त्र के विषय में चार बार प्रश्न किया किन्तु रामचरण अपना पहला उत्तर दुहराते थे ।[४] कुछ देर बाद राम चरण को अपनी भूल ज्ञात हुई माधव ने इतना कहा कि भविष्य में इस प्रकार की भूल न करना ।[५]

१- वही १३२२- १३२६ पृष्ठ २९७-२९९

२- वही १३२६

३- वही १३२८

४- वही १३२९- १३३३ पृ० ३००-३०१

५- वही १३३६ पृष्ठ ३०३

स्मरण रखना यह वस्त्र विनाशी है,जो वस्तु मैं तुम्हें दूंगा वह होगी जिसे मुझे शंकरदेव ने दी है और इस परलोक में त्यागने योग्य नहीं है,यह सुन कर रामचरण उठ माधव के चरणों पर गिर पड़े । माधव ने अपनेदोनों हाथों से उन्हें उठाया और भक्तों ने रामचरण का यथायोग्य सम्मान किया ।[१]

राजा रघुदेव से ब्राह्मणों का छल बरपेटा के स्थान पर माधवदेव भक्तों सहित बैठे थे,भक्तों के वाम अंग फड़कने लगे लोगों ने उत्पात की आशंका की । सुरानंद ने इसी दिन था ब्राह्मणों से सब बातें बताया और सब ब्राह्मणों ने राजा से कहा कि कहा माधव नाम का एक शूद्र है-- उसने अनाचार कर सम्पूर्ण जगत को नष्ट कर दिया है। राजा रघुदेव यह सुन अत्यन्त क्रोधित हो व उठा और सुरानंद को माधव को बंदी करने की आज्ञा दी ।[२] लस्कर ने माधव से राजा केअनुचर को देख कर कहा कि राजा का व्यक्ति आ रहा है । माधव ने लस्कर को आदेश दिया कि उनके स्वागत के लिये,फूल,चंदन केला,गुवा का प्रबंध करो और शीघ्र ही गोसाइ घर मैं बुला लाओ । माधव को देख गले में वस्त्र डाल कर सुरानंद ने प्रणाम किया । छल पूर्वक उसने बात करना आरंभ किया, भक्त गण नाम लेते हैं इसे ही देखने की मेरिि इच्छा हुई । भक्त गण अपना घर छोनड़ नाम गाने के लिये सुरानंद के समीप आये । जब सब भक्त कीर्तन करने में तल्लीन हो गये, उसने दोनों ओर के कपाट बंद करा दिये और भक्तों को बंदी किया । भक्तों का हाथ पीठ पर बांध दिया,माधव कादोनों हाथ एक साथ बांधा ।[३] प्रभात होते ही सुरानंद घोड़ों पर चढ़ विजयपुर पहुंचा और राजा से वृतांत सुनाया ।[४]

विजयपुर में माधवदेव बंदी माधव बंदी गृह में दिन भर पाशा खेलते थे और विद्वेषी ब्राह्मण दिन भर सब शास्त्रों को देख रहे थे किन्तु माधव खेल में लगे हुए थे उन्हें इन ब्राह्मणों की चिन्ता न थी । उन्होंने भद्रमणि भंडारी से कहा कि उन्हें शास्त्रों का अवलोकन करने दो उनका उत्तर मेरे मुख में है ।[५]

१- वही १३४२ पृ० ३०४

२- वही १४०८-१४११ पृ० ३२१

३- वही १४१४ - १४२२ पृ० ३२२-३२३

४- वही १४३४ पृ० ३२५

५- वही १४३४ - १४३६ पृ० ३२६

वागीश भट्टाचार्य ने सब ब्राह्मणों से कहा कि पापियों माधव से क्या परिहास कर रहे हो ? तुम लोग जलती अग्नि को हाथ से पकड़ना चाहते हो, हाथी को ढोल बजा डराना चाहते हो, जो तुम कर रहे हो उसके लिये तुम्हें लज्जित होना चाहिए। यह सब ब्राह्मणों को समझा लाठी पकड़ उसने राजा के समीप जाकर प्रार्थना की कि प्रभु मुझे विदाई दो शूद्र के साथ तर्क कर विजयी होना किसी प्रकार गौरव की बात नहीं है, यदि शूद्र से पराजित हुआ तो महा लज्जा का विषय होगा ।[1]

<u>माधव की मुक्ति</u> वागीश भट्टाचार्य ने राजा से कहा "प्रभु मैंने सुना था कि माधव अनाचारी है किन्तु जब मैंने देखा तो वैसा न पाया, यह अत्यन्त महाशुद्ध प्राणी है । यह सुन राजा ने सुरानंद को बुला माधव को मुक्त किया और आदेश किया कि इन्हें बरपेटा पहुंचा आओ ।[2]

<u>माधव का सुन्दरी में वास</u> विजयपुर से लौटने के पश्चात माधव केवल डेढ़ मास तक बरपेटा में ठहरे । इसके पश्चात रामचरण के घर सुन्दरी में कुछ दिन ठहरे । रामचरण ने माधव को गोसांई घर में शयन करने का स्थान दिया । दूसरे दिन रामचरण ने एक पृथक घर लीप पोत कर तैयार कर दिया राम चरण के घर माधव एक मास तक रहे, जब भक्त गण विजयपुर से वापस आ गये, सब को रहने के लिए पर्याप्त स्थान दिया गया।[3]

<u>हाजो में वास</u> राजा की आज्ञा शिरोधार्य कर माधव ने सुंदरिया से हाजो के लिये प्रस्थान किया । दैत्यारि के अनुसार माधव ने अगहन मास में यात्रा आरंभ की थी, फागुन में वे हाजो पहुंचे, तीन मास तक वे बालू पर ही रहे । माधव के दर्शनार्थ हाजो में अधिक संख्या में लोग प्रति दिन आनेलगे । हयग्रीव माधव के दर्शन न कर लोग माधव के पास चले आते थे । माधव के इस प्रभाव को देख ब्राह्मणों को ईर्ष्या हुई वे छिद्रान्वेषण करने में लगे थे ।[4]

१- वही १४४१ - १४४३ पृ० ३२७

२- वही १४४६ पृ० ३२८

३- वही १४५६ - १४६२ पृ० ३३०

४- वही १४६५ - १४६ पृष्ठ ३३२

माधव का कामरूप त्याग   नाव पर चढ़ माधव ब्रह्मपुत्र के बहाव की दिशा में चल पड़े । मनदिघार घाट पर नाव बांध रामचरण को बुलाया । तीन दिन पश्चात रामचरण ने माधव से मिल बात चीत की । माधव ने रामचरण से कहा "मैं इस देश को छोड़ बिहार जा रहा हूं,तुम यहां रह कार्य संचालन करना । "राम चरण इस समय करुणा क्रंदन करने लगे और कहा कि मैं अपने साथ कुछ भी नहीं लाया हूं,मैं तो केवल आप से मिलने की इच्छा से आया था । बिहार का सौभाग्य है कि आप वहां जा रहे हैं,किन्तु कामरूप का दुर्भाग्य है कि आप इसे छोड़ रहे हैं । इतना कह राम चरण रोने लगे ।[1][2]

मनपुर को परीक्षा देकर माधव ने बिदाई दी । रामचरण को दुख हुआ कि जाड़े का वस्त्र इस भक्त को देने से माधव को कष्ट होगा । माधव ने रामचरण को प्रबोध विदा ली ।[3]

कुमार गाछि में कुछ दिन माधव ठहरे । लोगों की भीड़ ऐसी हुई कि लोग इस पार उस पार आ जा न सकते थे । भृगुगुरु नामक एक ब्राह्मण उस पार से पूर्व पार की ओर आये और माधव देव के साथ कथा वार्ता की तथा माधव को निमंत्रित किया ।[4] बदुमणि के साथ माधवदेव ने सोनकोष नदी पार की और भृगुगुरु के स्थान पर पहुंचे । प्रत्येक द्वार पर अनेक प्रकार के उत्सवों का आयोजन किया गया था ।[5]

बेहार में माधव का सम्मान   बेहार नगर में प्रवेश करते ही राजा प्रजा वैष्णव जन माधव के दर्शन के लिये आये । माधव देव के चरणों की धूलि ले,प्रणाम कर नागरिक प्रसन्न हुये । माधव देव की कथा अमृत वर्षा के तुल्य थी,जिसे एकाग्र चित्त से लोग सुन रहे थे,किसी का ध्यान इधर उधर न था ।[6]

माधव का रूप   माधव प्रसन्न मुख है,उनकी वाणी अमिय के तुल्य है,धवल मुक्ता की पंक्ति जैसे हैं,नासिका तिलफूल के समान तथा भ्रू धनुष के तुल्य है नेत्र पद्म के सदृश हैं,

---

१- वही १४७०   पृ० ३३२

२- वही १४७० - १४७७   पृ० ३३२ - ३३३

३- वही १४८४   पृ० ३३५

४- वही १४८५- १४८७   पृ० ३३५

५- वही १४६३   पृ० ३३६

६- वही १४६८   पृ० ३०७ - ३०८

उर अत्यन्त विस्तृत है उनकी भुजायें अत्यन्त सुबलित हैं,उनका शरीर गौर वर्ण का है, उनके चरण कमल सुकोमल हैं वे हाथी के सदृश धीरे धीरे गंभीर गति से चलते हैं उनके शरीर पर सदैव शुभ्र वस्त्र सुशोभित रहता है । माधव अनेक गंभीर गुणों के मंदिर हैं उनकी महिमा का वर्णन कहां तक करुं[१] ।

बीर नारायण और उनकी माता का शरण वीरनारायण,उनकी माता,तथा कुमार कुमारियों ने माधव को गुरु मान कृष्ण की शरण ग्रहण की । अनेक नागरिकों ने माधव को गुरु मान कृष्ण की शरण ली-- डाक डाकुवा बुर बरुआ आदि अनेक लोगों ने शरण ली कोच,मेच लोगों ने अपना पूर्व आचार नीति त्याग माधव देव से उपदेश प्राप्त कर सदाचारी हुए । बीरु कायर्थी नामक मुख्य सेवक ने राजा के सम्मुख माधव की प्रशंसा की,उसकी प्रीति माधव देव के साथ भी अधिक थी-- माधव को देखते ही वह घोड़े से उतर नम्र शब्दों द्वारा बात चीत करता था[२] । एक दिन आइ ने माधव से अनुरोध किया कि कृष्ण कथा राजा के सम्मुख होनी चाहिए । माधव ने कहा कि मुझे राज्य के स्थान की आवश्यकता नहीं है । इसे सुन आई आइ मौन हो गई[३] ।

नाम मलिका की रचना बीरु कार्यी को एक दिन एक पुस्तक मिली,जिसका नाम "रत्न नाम मलिका" था -- उन्होंने इस पोथी के अनुवाद करने का कार्य एक ब्राह्मण तथा एक कायस्थ को सौंपा -- माधवदेव से भी उन्होंने इसके पद्यानुवाद करने की प्रार्थना की। माधव ने एक पक्ष के भीतर पद्यानुवाद प्रस्तुत किया -- कायस्थ को इस कार्य में पूरे तीन मास लगे -- ब्राह्मण ने पूरा छ: मास में अनुवाद किया । बीरु कार्यी ने इन तीनों अनुवादों को आरंभ से अंत तक देखा और दो अनुवादों को छोड़,माधव की कृति को अपने स्थान पर रखा । बीरुकार्यी के अनुरोध पर माधव ने नाम मालिका का यह अनुवाद किया,अत: उसने माधव का अधिक आदर किया[४] ।

मथुरा दास के साथ माधव का वार्तालाप मथुरादास से माधव ने कामरूप के भक्तों के विषय में पूछा । मथुरादास नेउत्तर दिया की बरपेटा के स्थान में छः सौ से अधिक

१- वही १५०० पृ० ३०८

२- वही १५०४ पृ० ३४०

३- वही १५०६ - १५०७ पृ० ३४१

४- वही १५०९ - १५१० पृ० ३४२

भक्त गण कृष्ण कथा तथा कीर्तन में भाग ले रहे हैं कुछ दिन बेहार में ठहर मथुरादास बरपेटा चले गये । माधव ने उन्हें विदा करते समय गुवा, पान तथा एक वस्त्र दिया । मनपुर के लिये संदेश देते हुये माधव ने कहा कि उससे कह देना कि उसे मैं भूला नहीं हूं, उसने मेरे शरीर का वस्त्र तक ले लिया मैं उसके इस कृत्य से प्रसन्न हूं ।[1]

राजमाता का वस्त्रदान राज माता ने माथा बंधा, दुपट्टा, पिछौरी इत्यादि अनेक प्रकार के वस्त्र भक्तों के लिये भेज दिया और माधव से निवेदन किया कि वे भक्तों को योग्यतानुसार वस्त्र वितरण करें । माधव ने क्रोध से कहा `कौन भक्त छोटा है और कौन बड़ा है यह मैं नहीं जानता हूं, आइ आप स्वयं अपनी इच्छानुसार बड़ा छोटा समझ कर वस्त्र वितरित कर दें-- अन्यथा इसे वापस घर ले जायं । मैं भक्तों में बड़ा छोटा भेद नहीं देखता ।[2] इसे सुन आइ ने सब भक्तों को एक समान कपड़ा दिया । इसे देख माधव प्रसन्न हुये ।

माधव ने भक्तों से कहा कि आप लोग प्रीति पूर्वक एक साथ रहें । जब तक तुम लोग एक होकर न रहोगे, ईश्वर की भक्ति को नहीं पा सकते हो यह सुन सब भक्त हर्षित हुये ।[3]

घोषा रत्न एक दिन माधव से भक्तों ने ईश्वर के आविर्भाव तिरोभाव, आदि के संबंध में प्रश्न किया । इस प्रश्न को सुन माधव मौन रहे तथा एक भक्त दूसरा प्रश्न न कर सका । तीन दिन के पश्चात माधव भक्तों से बोले क्या और किससे पूछना चाहते हो। तुम में से सभी लोग लोभाविष्ट हो फिर मैं किसी को आदर्श नहीं कह सकता । देखो, घोषा पुस्तक मेरी है, उसमें मैंने सब कुछ कहा है, जो मुझे कहना चाहिये था उसके अर्थ को जो व्यक्ति समझ जाहे वही मेरे समीप आ सकेगा । घोषा में मेरी समस्त बुद्धि-बल है, जिसका जैसा भाग्य है, वैसा वह उपयोग कर सकेगा ।[4]

माधव द्वारा कीर्तन घोषा के संकलन पर आनंद कीर्तन घोषा के खंड, हाजो, दक्षिण कुल बरनगर, बरपेटा और अहोम राज्य के अन्य स्थान पर और कलाजार में बिखरे हुये थे । इन्हें राम चरण ने एक वर्ष घूम फिर कर संकलित किया ।[5] माधव ने रामचरण

१- वही १५१८ - १५२७ पृ० ३४५ - ३४७

२- वही १५३२ - १५३७ पृ० ३४८

३- वही १५४७ पृ० ३५०

४- वही १५६० - १५६६ पृ० ३५३ - ३५४

५- वही १५७५ - पृ० ३५६

को देख प्रश्न किया कि एक समाचार मुझे प्राप्त हुआ है वह सत्य है या नहीं कि तुमने कीर्तन घोषा के समस्त कीर्तनों को एक पुस्तक में संगृहीत किया है[१]। उस समय राम चरण के पास वह पुस्तक न थी अत: प्रभात होते ही वह घर चले गये -- चार दिन पश्चात लौट माधव को वह संग्रह दिखाया[२]। मेरी भी स्वयं इच्छा थी कि मैं इस पुस्तक का संग्रह करूं - किन्तु इस राज्य में चले आने के फलस्वरुप मैं यह कार्य पूर्ण न कर सका-राम चरण ने इसे एक स्थान पर संग्रह कर मेरा ही कार्य किया है। माधव ने पुस्तक और उसके विभिन्न खंडों का अवलोकन किया, विचार कर देखा कि पुस्तक में कीर्तन घोषा का क्रम उचित है इस पुस्तक के चार भाग कर इसके लिखने का कार्य चार व्यक्तियों को सौंपा। केवल आठ दिन में ही चार जनों ने कीर्तन घोषा पुस्तक लिख लिया[३]।

माधव के ऊपर क्रोध वीरु कायस्थ ने अपने पिता के श्राद्ध के दिन समस्त कुटुंब और ज्ञाति जनों को आमंत्रित किया। माधव लस्कर और उनके पुत्र जिन्होंने शरण ले लिया था, वहां भात न खाया पुत्र ने नहीं खाया नहीं खाया किन्तु पिता को तो भोजन करना चाहिये था। यह सब माधव का प्रभाव है, हम उसका विचार करेंगे। वीरु कायस्थ ने कई ब्राह्मणों के साथ आलोचना की, कि माधव ने सम्पूर्ण राज्य को नष्ट कर दिया है अत: इसे इस राज्य से दूर करना होगा[४]।

माधव के मत का विचार यह निश्चय कर वीरुकायस्थ ने एक बंग देशी माधव को बुला लिया- वैष्णवों ने उसका सत्कार किया-- वह शास्त्र से पूर्ण तथा अनभिज्ञ था। माधवदेव अन्य ब्राह्मणों सहित सभा में बैठे। वीरु ने माधवदेव से कहा कि यह कहते हैं कि आप की माला में मेरु नहीं है[५]। इस प्रश्न का उत्तर इन्हें आप दें। माधव ने तीन शास्त्रों का उद्धरण देते कहा कि हम प्रत्येक क्षण कृष्ण की भक्ति में लगे रहते हैं, यद्यपि सहस्त्रनाम गीता, भागवत में केवल एक श्लोक ही मेरु देने का संकेत करता है, मैं निश्चित ही मेरु छू दूंगा। बंगदेशी माधव कुछ भी न जानता था, अत: वह चुपचाप बैठा रहा। ब्राह्मण यह सहन न कर सके, उन्होंने कहा कि माला में मेरु अवश्य होना चाहिए माधव ने उत्तर दिया कि आप लोग जो कुछ कह रहे हैं, यह ठीक है, मंत्र के लिये मेरु अवश्य

१- वही १५७९ पृ० ३५७
२- वही १५८४ पृ० ३५९
३- वही १५८५ - १५८६ पृ० ३६०
४- वही १५९१ - १५९४ पृ० ३६२
५- वही १५९५ - १५९८ पृ० ३६२ - ३६३

देना चाहिये । माधव ने कालिका पुराण का श्लोक पढ़ा[1] । मेरु के दोष प्रति संकेत करते हुए माधव ने पद्मपुराण की उस कथा की चर्चा की जहां भगवान महादेव ने पार्वती को समझाया है कि मेरु युक्त माला गुरु को न दिखानी चाहिए । यह सुन बीरु कायुर्थी ने प्रसंग बदल दिया[2] ।

बीरु कायुर्थी ने माधव से कहा 'बोलो महेश जड़ हैं अथवा चैतन्य । महेश गुण के अंश हैं,इससे आप समझ सकते हैं कि जड़ चैतन्य न होगा,प्रकृति का गुण है सृष्टि का आदि कारण है,इसके तीन गुण और तीन रूप हैं । यदि महेश चैतन्य होते तो हरि के स्त्री रूप पर क्यों मोहित होते-- वृकासुर स्वयं वरदान दे स्वयं तीनों लोकों में भ्रमते रहे -- चैतन्य को मोह नहीं होता,यह आप निश्चित समझ लें[3] । बीरु कायुर्थी ने क्रोधित हो कहा 'तुम लोगों ने सम्पूर्ण राज्य को नष्ट कर दिया,तुम्हें यहाँ से भगा देना होगा - तुम्हारे मतानुसार शंभु ईश्वर नहीं है ।'माधव ने उत्तर दिया महेश ईश्वर हैं किन्तु अस्तित्व स्वतंत्र नहीं है । पुन: बीरु ने माधव से पूछा 'क्या महेश मोक्ष दान कर सकते हैं ।'माधव ने उत्तर दिया 'मोक्ष देने का अधिकार केवल विष्णु को ही है, अन्य कोई मोक्ष नहीं दे सकता ।' इसी पर ब्राह्मणों को बुला बीरु ने कहा 'देखो यह महेश को नहीं मानता है[4] ।

पंडितों को संबोधित करते हुये माधव देव ने कहा कि आप लोग भागवत के दशम स्कंध को देखें,मुचुकुंद राजा से सब देवता कहते हैं कि राजन हम आप को मनोवांछित वर दे सकते हैं । राजा ने मोक्ष की याचना की इस पर देवताओं ने उत्तर दिया कि मोक्ष दान का अधिकार केवल विष्णु को है । बीरु कायुर्थी क्रोधाभिभूत हो सिर हिला हिला कर माधव से क्रोध युक्त वचन बोले कहा 'तुम लोगों ने ही पूर्ण राज्य को नष्ट भ्रष्ट कर दिया है ,जितने धर्म कर्म थे, सब का खंडन कर दिया,इसे द्विज गण सहन नहीं कर सकते हैं[5] ।

बीरुकायुर्थी के इस आचरण से रुष्ट हो माधव ने कहा कि हम इस स्थान में न रहेंगे तो भी राजा के रहते तुम हमें यहां से नहीं भगा सकते हो[6] ।

१- नवी १५९७ -- १६०३ पृ० ३६३- ३६४
२- नवी १६०८ पृ० ३६५
३- नवी १६०९ - १६११ पृ० ३६५
४- नवी १६१२ - १६१५ पृ० ३६६
५- नवी १६१७ - १६१९ पृ० ३६७
६- नवी १६२१ पृ० ३६७

माधव के विरुद्ध बीरु का अभियोग   बीरु ने जाकर राजा से माधव के विरुद्ध निंदा की कि माधव ने पूर्ण राज्य को नष्ट कर दिया है- लोगों ने देव धर्म-कर्म का परित्याग कर दिया है-पुत्र ने पिता को छोड़ दिया, पिता ने पुत्र को- समस्त राज्य को माधव ने ऐसा कर दिया है । राजा ने मन में समझ लिया कि बीरु माधव से अप्रसन्न होने के कारण ऐसा अभियोग लगा रहा है, नहीं तो यह सदैव माधव की प्रशंसा करता था । राजा ने बीरु को आश्वासन दिया कि वे स्वयं माधव का विचार करेंगे, यदि उसके विरुद्ध यह अभियोग प्रमाणित हो गया तो उसे राज्य में स्थान न मिलेगा ।[1]

राजा चार पश्चिमी पंडितों को साथ लेकर गया और माधव को उस स्थान पर बुलाया। इन ब्राह्मणों ने माधव से प्रश्न किया 'क्या तुम शरत काली की पूजा करते हो' माधव ने राजा को संबोधित करते हुए 'हम लोग शरत काली की पूजा नहीं करते, जिनकी भोग की इच्छा होती है वे ही उनकी उपासना करते हैं, इस उत्तर से पश्चिमी पंडित गण प्रसन्न हुये और माधव की प्रशंसा की ।[2]

इसके पश्चात राजा ने हरि भक्ति और उसके प्रचार के विषय में प्रश्न किया । कि तुम लोगों को कैसे उपदेश देते हो । माधव ने सारी बात स्पष्ट की । पश्चिमी पंडितों ने माधव के उत्तर की भूरि भूरि प्रशंसा की-- राजा को भी प्रसन्नता हुई । राजा ने बीरु को देख कहा 'कहो तुम क्या कहना चाहते हो ।[3] बीरु कायस्थ ने कहा 'राजा मैं क्या जानूं, हम लोग भेड़ हैं जहां कहीं जो कुछ सुनते हैं वही मैंने आपके सम्मुख कहा था, फिर मेरा क्या दोष है । राजा ने कहा कि यह राज्य मेरा है, मैं सब कुछ कर सकता हूं, आज से माधव मेरे राज्य में अपने मत का प्रचार करेंगे ।[4]

महापुरुषिया राज धर्म के रूप में स्वीकृत   माधव को गुवा ताम पान भेंट कर राजा ने विदा किया और कहा कि माधव का मत पूर्ण रूप से शुद्ध है अतः लोग परंपरागत मत का त्याग कर नवीन शुद्ध मत के अनुयायी हों । माधव की इस सफलता से भक्तों को अधिक हर्ष हुआ, उन्होंने हरि ध्वनि आरंभ की ।[5]

१- वही १६३५ - १६३७   पृ० ३७०
२- वही १६३८ - १६४३   पृ० ३७१
३- वही १६४६ -   पृ० ३७२
४- वही १६४६   पृ० ३७२
५- वही १६५०

राजा ने आहु घाहु से फूल,चंदन,वस्त्र,गुवा और पान लिया और कहा कि मेरे राज्य में जितने सत्र हैं सभी माधव के मत का प्रवर्तन करें भक्तों के राजा माधव हैं,उन पर मेरा किसी ढंग का अधिकार न होगा।[1] आहु यह सुन कर अत्यन्त आनंदित हुए, दूसरे दिन प्रात: ही माधव के यहां एक व्यक्ति भेजा। माधव ने यह समाचार पा मुस्कराये कि मैं भक्तों के ऊपर राजा हुआ।

राजा का फूल चंदन दान — भक्तों की सभा में माधव ने निवेदन किया कि राजा हमें गुवा,पान और वस्त्र देना चाहते हैं। अच्युत गुरु के साथ दस भक्तों को माधव ने रामचरण के यहां भेजा। रामचरण को अपने समीप रख अन्य सब भक्तों को माधव ने भेज दिया। आहु ने रामचरण और आता को न देख भक्तों से पूछा कि रामचरण तथा माधव मेरे यहां क्यों नहीं आये? माधव से आकर भक्तों ने आहु का संदेश सुनाया। माधव ने कहा 'मैं न जा सकूंगा।' जब आहु ने सुना कि माधव नहीं आ रहे हैं उन्होंने स्वयं एक डोल भेज दिया। माधव ने इसे देख हंसते हुए 'आप लोग मुझे भक्तों का राजा बनाना चाहते हैं। इसके पश्चात माधव शरीर पर वस्त्र डाल स्वयं रामचरण के साथ गये।[2]

माधवदेव का तिरोभाव — माधव राजा के प्रासाद के भीतर न गये,बाहर हाथ पैर धो पीढ़ा पर बैठे। दाहिने हाथ की नाड़ी की गति समझ कर राम चरण ने माधव को लिपट कर पकड़ लिया,माधव के छोड़ छोड़ कहने पर राम चरण ने उन्हें छोड़ दिया। माधव जोर जोर से राम राम बोलने लगे और उनकी बाईं नाड़ी की गति बंद होने लगी-- राम चरण ने उन्हें पुन: लिपट कर पकड़ा। भक्त गण अपने घर से बाहर माधव की इहलीला देखने आये,सब भक्तों ने राम नाम की,धुन की माधव ने स्वयं राम कृष्ण नाम का उच्चारण करते हुए महाप्रयाण किया।[3]

माधवदेव का संस्कार कार्य — लक्ष्मी नारायण को जब माधव देव के मृत्यु का समाचार प्राप्त हुआ,वे अत्यन्त दुखित हुए और बीरु को निर्देश दिया कि अगरु चंदन आदि के

१- वही १६५३ पृ० ३७

२- वही १६६८ पृ० ३७६

३- वही १६७२ - १६७८ पृ० ३७७- ३७८

काष्ठ द्वारा माधव का दाह संस्कार किया जाय । इसी समय वर्षा आरंभ हुई अतः बोरु ने मंडप छा कर चिता की उचित व्यवस्था की । राम चरण ने अग्नि संस्कार पिंड दान तथा जल दान किया ।[1]

माधव देव का लीला के क्रम और उनकी तिथियां एवं शक उनका जन्म ज्येष्ठ मास, रविवार, अमावस्या तिथि, भरणी नक्षत्र, १४२२ शक, दिन व्यतीत हो जाने पर आधी रात में हुआ । हरिसिंह बरा के घर चार वर्ष, बारी में चार वर्ष, लेटुकु पुखुरी पार में छः वर्ष, ३ मास तक भ्रमण करते रहे, बांडुका में पांच वर्ष रहे । जब शंकरदेव पचहत्तर वर्ष के हो गये थे, व उस समय माधव से उनकी भेंट धुवाहाट बेलगुरि में हुई, माधव की अवस्था ३२ वर्ष की थी । ग्यारह वर्ष तक माधव ने गुरु सेवा की-- कार्जी बरा कांड के पश्चात आहतगुरि में छः मास, तथा जपला में तीन मास रहे । कामरादि में तीन वर्ष धानकुचि में ३ मास, गनककुचि में अठारह वर्ष और पाटबाउसी में चार महीने सहित एक वर्ष रहे । सिरामल बारि सौंदरा में २ मास, सुंदरी में बारह वर्ष, गोमोरा में ३मास, बैरमद में ३ मास, बरपेटा में आठ वर्ष, बजार भंडार में छ मास, हरि गरलम, मधु मागुरि में भूषण गुरु के यहां ३ पक्ष, कोचुबरा बारि में ७ दिन, रामचरण ठाकुर के पाटबौसालि में ३ मास हाजो रामदेवा भारि में ३ मास, विष्णुपुर में नृसिंह यहां २० दिन ठहरे । बेहार में राम आता के निवास में ३ मास, अरिमा दलै के घर, मधुपुर में दो वर्ष रह वैकुंठ गामी हुये । मधुपुर में भाद्रपद कृष्णपंचमी, सत्ताइस दिन मान उपरांत, पूर्वभाद्र नक्षत्र, मंगलवार को शक सं० १५१८ में माधव ने इहलीला समाप्त की ।

१- वही १६८४ - १६८७ पृ० ३५६

२- उपेन्द्र लेखारु - कथा गुरु चरित पृ० ५६६

तृतीय अध्याय

असमिया और हिंदी वैष्णव साहित्य

शंकरदेव की रचनाएं

शंकरदेव की रचनाएं

भागवत :- शंकरदेव को प्रधानत: भागवत से प्रेरणा प्राप्त हुई जिसे उन्होंने पुराण के मध्य सूर्य कहा है जिसमें वेदांत का दर्शन युक्त था । अत: प्रारंभ में इस पुस्तक का असमिया अनुवाद किया गया । निसंदेह संस्कृत भाषा तथा दुरुह शैली में रचित इस पुस्तक का प्रांतीय भाषा में अनुवाद करना सहज न था । कोच राजा नरनारायण की राज्य सभा में ब्राह्मणों ने शंकरदेव के ऊपर यह अभियोग लगाया कि उन्होंने भागवत को पढ़ा,पढ़ाया और उसका अनुवाद किया । एक व्यक्ति के लिए संपूर्ण पुस्तक का अनुवाद करना संभव न था । अत: उन्होंने इसके विभिन्न भागों के अनुवाद का भार अपने अनेक शिष्यों को दिया और स्वयं इसके दीर्घ भाग को लिया । प्रथम,द्वितीय,तृतीय,षष्ठ अष्टम नवम,दशम और द्वादश स्कंध के रूपांतर का कार्य अपने हाथ में लिया ।

भागवत केरूपांतर से असमिया कविता के नव युग की नींव पड़ी :- साहित्यिक दृष्टि से इसका प्रभाव शंकरी साहित्य पर विविध रुपों में अत्यधिक पड़ा और संपूर्ण शंकरी साहित्य इसी ढांचे में ढला । केवल कृष्ण संबंधी कथाओं के लिए ही शंकरदेव भागवत के ऋणी नहीं हैं वरं उन्होंने इससे विविध साहित्यिक रुपक,अभिव्यंजना और परंपरा भी ग्रहण की । शंकर ने भागवत का अनुवाद असमिया शब्दों में न कर असमिया मुहावरों में किया। असमिया अनुवाद करने में कवि ने अन्य टीकाओं और पुराणों का भी उपयोग किया है । शंकरदेव ने कालीहृद के तट के कदंब वृक्ष को गरुड़ पक्षी से स्पर्श कराया है,जब वह अमृत लेकर आ रहा था,इस वृक्ष पर उसने विश्राम किया । संभवत: कवि ने इस घटना को किसी पृथक स्रोत से ग्रहण किया है क्योंकि इसका उल्लेख भागवत में नहीं है । इस प्रकार से इन्होंने मूल संस्कृत ग्रंथ की विविध घटनाओं तथा विचारों को इस ढंग से प्रस्तुत करने की चेष्टा की है जिससे सर्व साधारण असमिया उसे समझ सकें और

इसकी प्रशंसा कर सकें । अत: भागवत का असमिया रुपांतर ग्रंथ और टीका दोनों ही कहा जा सकता है ।

यद्यपि इस ग्रंथ की रचना सर्व साधारण लोगों के लिए की गई, किन्तु विद्वानों ने भी इसकी प्रशंसा की है । शंकरदेव के चरितकार भूषण द्विज ने इस संबंध में एक उल्लेखनीय घटना का विवरण दिया है जिससे इस ग्रंथ की लोकप्रियता तथा उपयोगिता का आभास मिलता है । ब्रह्मानंद सन्यासी के निकट कंठभूषण नाम का एक असमिया ब्राह्मण वेदांत दर्शन का अध्ययन काशी में कर रहा था-- एक दिन उन्होंने अपने छात्रों के सम्मुख भागवत पुराण के कुछ श्लोक पढ़े, जिसे उनके शिष्य न समझ सके और मौन रहे । कंठभूषण ने इन श्लोकों की व्याख्या की । ब्रह्मानंद को विस्मय हुआ कि इस असमिया शिष्य ने कैसे इन श्लोकों की व्याख्या की । प्रश्न किये जाने पर कंठभूषण ने कहा कि शंकरदेव ने असमिया में इस ग्रंथ को इतने सहज और स्पष्ट शैली में लिखा है कि स्त्री तथा शूद्र भी इसे सरलता से समझ सकते हैं । आदि दशम स्कंध भागवत के अन्य स्कंधों की अपेक्षा अधिक लोकप्रिय है । इस स्कंध में कृष्ण की बाल सुलभ क्रीड़ाओं, नाना राक्षसों के वध, वन में भोजन, गोचारण, माखन चोरी, गोपियों के साथ विवाह तथा माता-यशोदा के साथ अन्य शिशु सुलभ चंचलता और खेलों, का वर्णन हुआ है । दशम में बालक के मानवीय तथा यथार्थ चित्रों का चित्रण हुआ है--माता का अपने नन्हें शिशु के प्रति स्नेह और शोक प्रकृति और काव्य की अन्य स्थापनाएं मानव हृदय को शाश्वत आंदोलित करती रहेंगी । यह ध्यान देने योग्य है कि अन्य प्रांतीय वैष्णव साहित्य के विपरीत राधा इन दृश्यों में नहीं हैं-- और सौरी साहित्य में उनका चरित्र कहीं भी अंकित नहीं हुआ है ।

शंकरदेव ने अनेक बार अक्षयस्रोत भागवत से सामग्री ली है । इस रुपांतर के अतिरिक्त उन्होंने इस पुराण की सामग्री से अनेक विशाल ग्रंथों की रचना की । भागवत की एकादश स्कंध की कथा के द्वारा उन्होंने निमिनवसिद्ध संवाद की रचना की । इस ग्रंथ में नारद वासुदेव के सम्मुख राजा निमि तथा नव संत, कवि, हवि, अंतरिक्ष, प्रबुद्ध, पिप्पलायन, अविर्होत्र

द्राविड़,चमसा,करभाजन के मध्य हुए संवाद की कथा कहते हैं । राजा द्वारा प्रस्तुत विभिन्न समस्याओं का समाधान इन सिद्धों ने किया भागवत,धर्म,भक्ति,माया, माया से मुक्ति का मार्ग ब्रह्मयोग,कर्मयोग,अभक्त के लक्षण,अवतार का विवेचन इस ग्रंथ में हुआ है । इसमें तत्वज्ञान की कुछ गूढ़ समस्याओं का प्रतिपादन भी असमिया भाषा में हुआ है । इनकी 'भक्ति प्रदीप' में भक्ति के विभिन्न अंगों का विश्लेषण किया गया है । कहा जाता है कि गरुड़ पुराण के आधार पर इस ग्रंथ की रचना हुई किन्तु भागवत के एकादश स्कंध के साथ इसका अधिक सादृश्य दिखाई देता है । भक्ति के विविध नव विधियों में से रचनाकार ने श्रवण तथा कीर्तन पर अधिक बल दिया है । शंकरदेव ने एक शरण का प्रचार किया है,अन्य देवी देवताओं की उपासना वर्जित है । भक्ति प्रदीप में कृष्ण ने इसे स्पष्ट किया है ।

एक चित्ते तुमि मोक मात्र करा सेवा
परिहार दूरते यते आन देवा ।
क्योक शरणापन्न एक मोते मात्र
मोके भज छाडबा लेके मुकतिर पात्र
नाम तुछुनिबा तुमि आन देवतार
येन मते नुहिबे भक्ति व्यभिचार ।।

अनादि पतन :- भागवत के तृतीय स्कंध का रूपांतर है यद्यपि वामन पुराण की कतिपय घटनाओं का सम्मिश्रण इसमें हुआ है । इसमें सृष्टि रचना,ग्रह,नक्षत्र,ब्रह्म,अवतार आदि की कथा है ।

गुणमाला :- कूच बिहार के राजा नरनारायण के प्रार्थना करने पर उन्होंने गुणमाला की रचना की,यह यह उनकी अंतिम कृति है । वस्तुत: गुण माला भागवत के दशम और

१- भजे माधवक नाम

२- येन पितृ शिशुक लाहू लोभ दियय ।

एकादश का सार मात्र है । यह स्तोत्र ढंग की कविता है, जिसमें विष्णु अथवा कृष्ण की प्रशंसा की गई है । एक छंद में कवि कृष्ण के जीवन की अनेक घटनाओं का वर्णन करता है । कोई ऐसा वैष्णव भक्त नहीं है जो गुणमाला का मौखिक पाठ न कर सके ।

कीर्तन :- दूसरी महत्वपूर्ण रचना कीर्तन है जिसका प्रभाव आज भी असमिया लोगों के मन और विचार पर सबसे अधिक है । असम में इस पुस्तक को उसी दृष्टि से देखा व जाता है जिस दृष्टि से उत्तर भारत में रामचरितमानस देखा जाता है । एक भी हिन्दू असमिया का घर ऐसा न होगा जिसमें यह पुस्तक पांडुलिपि के रूप में, या मुद्रित रूप में न हो, इसके कुछ पद धार्मिक अवसरों और रुग्णावस्था में पढ़े जाते हैं ।

कीर्तन की रचनातिथि अज्ञात है । शंकरदेव के कुछ चरितकारों का मत है कि उन्होंने संपूर्ण ग्रंथ को एक समय में न लिखा और यह रचना अस्त व्यस्त अनेक वर्षों तक पड़ी रही । जिस क्रम से ग्रंथ का वर्तमान रूप मिलता है, इससे सहज में यह अनुमान लगाया जा सकता है कि यद्यपि ग्रंथ की रचना विभिन्न समय पर हुई, किन्तु यह पूर्व योजनानुसार लिखा गया और यह उनके प्रारंभिक काल की कृति नहीं थी । कीर्तन केवल एक काव्य नहीं, इसमें २२६६ पदों की २६ चयनित कविताएं हैं । अधि अधिकांश कविताएं भागवत पुराण की रुपांतर मात्र हैं । 'सहस्यनाम वृतांत' तथा 'धुनधा' अन्य लेखक की देन हैं व इनके लेखक शंकरदेव के शिष्य अनंत कंदलि और श्रीधर कंदलि हैं, शंकरदेव की इच्छा से इन्हें मूल रचना में मिला लिया गया कीर्तन के प्रत्येक काव्य स्वतंत्र काव्य कहे जा सकते हैं । धार्मिक सभाओं और सेवा- उपासना के अवसर पर कीर्तन के पद गाए जाते थे-- प्रत्येक पद में एक घोष है, जिसे हम ध्रुव कह सकते हैं । एक पद पढ़ने के पश्चात नायक घोष को दुहराता है और दल के लोग ताली बजाते हुए उसका साथ देते हैं ।

कीर्तन की प्रथम कविता 'चतुर्विंशति अवतार' में संक्षेप में ईश्वर के चौबीस अवतारों का वर्णन है, कृष्णावतार के व्यक्तित्व और उन्हें प्राणी मात्र का उद्धारक कहा गया है । 'नामापराध' की विषय वस्तु पद्मपुराण के स्वर्ग खंड से ली गई है । इसमें : :

नारद और ब्रह्मा के पुत्र चार सिद्धों के मध्य हुए संवाद का रूप है, जिसके अंत में कलियुग में मुक्ति लाभ करने के विविध साधन बताए गए हैं । `पाषंड मर्दन` पाषंड मति का दमन मात्र अंकित हुआहै, इसकी विषयवस्तु भागवत, विष्णुधर्मोत्तर, वृहत नारदीय पुराण तथा शुत-संहिता से ली गई है । इसमें भगवान का नाम उच्चारण ही भव भय से मुक्त होने का एक मात्र साधन कहा गया है । शंकरदेव ने यह अनुभव किया कि ब्रह्मणों के कर्मकांड ने ईश्वर और मनुष्य के मध्य दीवार खड़ी कर दी है-- अत: उन्होंने लेखनी और मंच द्वारा जाति, वंश पद की रूढ़ियों को छिन्न भिन्न कर दिया अनेक अवतरणों में शंकरदेव ने स्पष्ट कर दिया कि संसार से पूर्ण मुक्ति के लिए देव द्विज होने की आवश्यकता नहीं - न शास्त्रों के ज्ञान की अपेक्षा है । शंकरदेव ने जिस वैष्णव मत दीक्षा दी वह वह स्वभाव से सिद्धांत तथा संगठन की दृष्टि से पूर्णतया गणतांत्रिक था और प्रत्येक व्यक्ति इसे ग्रहण कर सकता था । यही एक कारण था जिससे अनेक मुसलमान और आदिम जाति के लोगों ने इस मत को स्वीकार किया ।

ध्यान वर्णन :- यह २८ लघु पदों का काव्य है, इसमें वैकुंठ का अत्यन्त सुन्दर वर्णन है- जहां प्रत्येक भक्त मृत्यु के पश्चात जाना चाहता है । `अजामिलोपाख्यान` की कथा भागवत के षष्ठ अध्याय से ली गई है । उस ब्राह्मण ने पतित नीच कुल की शूद्रा को अपनी पत्नी बनाया और उससे दस पुत्रों का जन्म हुआ मृत्यु के समय उसने अपने छोटे पुत्र नारायण को पुकारा-- नारायण ईश्वर का नाम है अत: उसे दूत यमपुर न ले जाकर विष्णु लोक ले गए । इस काव्य में ईश्वर के नाम उच्चारण का महत्त्व दिखाया गया है, यहां तक कि यदि कोई अज्ञानवश भी ईश्वर का नाम लेता है तो उस महापतिक का उद्धार हो जाता है, जैसे अचेतावस्था में पान की गई औषधि से उदर शूल दूर हो जाता है ।

प्रह्लाद चरित्र की विषय वस्तु भागवत के सप्तम स्कंध से ली गई है । इसमें प्रहलाद की प्रसिद्ध कथा द्वारा भक्ति प्रतिपादित की गई है । इसे ही ३० चरणों:छंदों:

के गजेन्द्रोपाख्यान में अधिक स्पष्ट किया गया है । गजेन्द्र ग्राह द्वारा पराजित हुआ और वह मृत्यु के क्षण गिन रहा था । अकस्मात उसके मन में आया कि हरि भक्ति उसकी रक्षा कर सकती है, उसने सूंड में कमल लेकर विष्णु का चिंतन किया । विष्णु ने आकर उसकी रक्षा की

हरमोहन :- हरमोहन की विषय वस्तु भागवत के अष्टम अध्याय से ली गई है । इसमें दिव्य कन्या के प्रति आकर्षण का वर्णन है विष्णु ने मोहिनी का रूप धारण कर शिव के मति में ऐसी शिथिलता प्रकट की कि वे अपना गौरव, मर्यादा तथा आत्म नियंत्रण को छोड़ उस कन्या के पीछे सामान्य व्यक्ति की भांति दौड़े । कवि ने मोहिनी के अंगों का ऐसा सुंदर वर्णन किया है जिसमें शृंगारिकता अधिक है । निम्नलिखित पद में दिव्य कन्या का चित्रमय वर्णन किया गया है :-

तप्त स्वर्ण सम ज्वले देह निरुपम
ललित वलित हात पाव
चन्दु कमलर पाशि मुखे मनोहर हसि
सघने दरशाइ काम भाव ।।

उन मनुष्यों के लिए जो नारी के प्रति आसक्त है एक चेतावनी भी है, नारी का आकर्षण इन पंक्तियों में अंकित हुआ है

घोर नारी सर्व मायाति कुत्सित
महा सिद्ध मुनिरो करादो हरे चित्त
दरशने करे तपस्या योग भंग
ज्ञानी ज्ञानीरो कामिनिर करे संग ।

द्रष्टव्य है कि नारी जाति के प्रति शंकरदेव का यह दृष्टिकोण न था, अन्य स्थलों पर उन्होंने नारी कोमल तथा प्रशंसनीय प्रवृत्तियों का चित्रण किया है[1]। शिशुलीला काव्य में बाल कृष्ण की बाल क्रीड़ा तथा उनकी ईश्वरीय शक्ति का चित्रण अत्यन्त मधुर तथा प्रांजल भाषा में हुआ है। इस प्रकार नटखट कृष्ण का अत्यन्त मनोहर चित्रण यहां प्रस्तुत किया गया है।

ठियडांग किया पाछे तुमि दामोदर
अनर्थ करिछा फुरा गोवालीर घर ।
आनंदते समस्त गोवालीगण आसि
कृष्णर आकृति यशोदार देत हंसी
कि भैला तोमार हतो तनय दुर्जन
कृष्णर निमित्ते आर न रहे जीवन ।।
गाइ नतु दोहंते छामुरी बिलाइ ।
गृह पशि चुरि करि खांत दुग्ध दइ ।।
बानर को खवाइ गोविंद किनो चंड
बानर न खाइ जबे कोवाइ भगे भंड ।।
दुखी येवे नपावे ननंत नाइ तुष्टि
सिकियार पात्र भने बूलत उठी ।।

रास क्रीड़ा मुक्तक काव्य की कथा भागवत के दशम स्कंध से ली गई है, इसमें कृष्ण गोपियों सहित शरद पूर्णिमा की रात्रि में यमुना पुलिन पर रास मंडल बना नृत्य करते हैं। प्रकृति के वर्णन के पद इस काव्य में अधिक हैं जिनका मानव जीवन से अटूट संबंध है। रास नृत्य के मध्य से कृष्ण अदृश्य हो गए और गोपियां यमुना तट[1] के प्रत्येक तरु-लता से अपने प्रियतम कृष्ण के संबंध में प्रश्न करती हैं कि वे कहां गए।

१- कर्म समयत तोफ मंत्री हैना देखि
रंगर बेलात येन तइ प्राण सखि
स्नेहर प्रस्तावे तइ मातृ हेन थान
शयन बेलात तइ दासिर समान । :हरिश्चंद्र उपाख्यान:

१- उच्च वृक्ष देखि सोधो सादरि
शुनियो अश्वथ वत पाकड़ी ------

कृष्ण की मुरलीमाधुरी का प्रभाव गोपियों पर कैसा पड़ा उसका चित्रमय वर्णन किया गया है ।[1]

स्यामंतक हरण में एक मणि की कथा है जो प्रति दिन आठ स्वर्ण खंड,प्रदान करती थी और अकाल,मृत्यु से व्याधि,व्याघ्र और सर्प की बाधा को दूर करती थी राजा जंबुवाण ने शिकार के समय सर्पराजक की सूर्य प्रदत्त मणि को चुरा लिया । जंबुवान से युद्ध कर कृष्ण ने इस मणि को प्राप्त किया । इस मुक्तक काव्य में कवि ने समर के उत्साहात्मक चित्रों का वर्णन नाटकीय कल्पना से संक्षिप्त और शक्तिशाली ढंग से प्रस्तुत किया है ।[2] कुछ पंक्तियां जम्बुवान और कृष्ण के मध्य हुए युद्ध का आभास देंगी ।

कंसबध दो सौ तेरह पदों का काव्य है इसमें कृष्ण के वीरतापूर्ण द्वंद्व का चित्रण है जिसके अंत में कंस की हत्या की गई । गोपी उद्धव संवाद तैंतीस पदों की लघु रचना है,इसमें उद्धव ने कृष्ण का संदेश ब्रज की गोपियों तक पहुंचाया है इस काव्य में गोपियों के शोकाकुल हृदय की वेदना और रुदन का चित्रण हुआ है । 'कुब्जिरा वांछा पुराण' तथा 'अक्रूर वांछा पुरण' में यह प्रकट किया गया है ,कि भगवान भक्तों के मनोरथ कैसे पूर्ण करते हैं । जरासंध युद्ध और कालयवन वध में जरासंध और बलराम के संघर्ष का वर्णन है,कृष्ण के संकेत पर मुचुकुंद ने जरासंध की हत्या की । 'नारद कृष्ण दर्शन' की कथा भागवत के दशम स्कंध से ली गई है यहां कवि इन्हें सर्वव्यापी रूप में अंकित किया है । एक दिन नारद कृष्ण के रनिवास में गए और देखा कि कृष्ण अपनी मुख्य पत्नी रुक्मिणी के साथ एक कक्ष में आनंद कर रहे थे,वहां से वे दूसरे कक्ष में गए वहां कृष्ण लक्ष्मी के साथ थे मुनि ने सोलह सौ हजार आठ कक्षों का परिदर्शन किया और

१- सुस्वर मधुर करि हरि गाइला गीत
सुनि कामे उतरावल हुआ गोपी गणे
दिलेक लवण गीत ध्वनि निरीक्षणे
चित्त धरिले कृष्णे चले अलक्षिते ।।

२- हेन शुनि जाम्बवंत धाइला महाबलवंत
निविनि स्वामीको पादे धरिलंत युद्ध काछे
सामान्य मनुष्य बुलि महाक्रोधे गैला ज्वलि
ना जान प्रभाव अति लाइलेक हातशाती ।

देखा कि कृष्ण अपनी १६००८ रानियों के साथ पृथक पृथक कक्षों में आनंद कर रहे हैं ।
`विप्रपुत्र आनयन` :- कृष्ण जब द्वारका के शासक थे एक दिन उनके प्रासाद में एक विप्र अपने मृतक पुत्र को भुजाओं में लपेटे आया । ब्राह्मण ने रोते हुए कहा कि जिस राज्य में ब्राह्मण को रोना पड़े वहां का राजा क्षत्रिय नहीं मृतक होगा । ब्राह्मण के नौ पुत्र थे, वे बाल्यावस्था में कालग्रसित हुए । कृष्ण के निकट अर्जुन बैठे हुए थे, उन्होंने विप्र के निकट जाकर सान्त्वना दी कि वे उसके आगामी पुत्र की रक्षा करेंगे, यदि वे असफल हुए तो अग्नि में जलकर प्राण त्याग करेंगे । ब्राह्मण का दसवां पुत्र भी जन्म होते ही मर गया । इस पर ब्राह्मण ने अर्जुन की भर्त्सना की और कहा कि जिस कार्य को तुम नहीं कर सके उसकी प्रतिज्ञा क्यों की ? अर्जुन ने यमपुरी देखा पर वहां भी ब्राह्मण का पुत्र दिखाई न दिया । विविध भुवनों में अन्वेषण करने पर भी उसका कोई चिन्ह न मिला । वे निराश हो कर द्वारका वापस आए और जलने के लिए चिता का प्रबंध किया कृष्ण ने अर्जुन को रथ पर बैठा, सात द्वीप, सात सागर पार कराया, वहां देखा कि विष्णु क्षीर सागर में अनंत नाग पर ब्राह्मण के दस बालकों सहित विश्राम कर रहे हैं । `इस काव्य का सार यह है कि मनुष्य बिना ईश्वर की कृपा के अपनी चेष्टा में सफल नहीं हो सकता है । `देवकी पुत्र आनयन` चौंतीस पदों की छोटी सी रचना है । कंस द्वारा मारे गए छः पुत्रों `को ~~वापस-लाए~~ कृष्ण सुतलपुरी के राजा बलि के यहां से वापस लाए। माता के दर्शन के पश्चात कृष्ण ~~की~~ कृपा द्वारा सब पुत्र वैकुंठपुरी चले गए । दूसरा काव्य वेद स्तुति (भागवत दशम स्कंध) चिंतनशील विचार धारा और दार्शनिकता से परिपूर्ण रचना है ।

`दामोदर विप्रोपाख्यान` की विषय वस्तु भागवत के दशम स्कंध से ली गई है । दामोदर अत्यन्त रंक ब्राह्मण था किसी प्रकार वह अपना और पत्नी का भरण पोषण कर पाता था । एक दिन उसकी पत्नी ने अनुरोध किया वह पाठशाला के बंधु कृष्ण के दर्शन करें. सर्वप्रथम दामोदर ने अपने वैभव संपन्न मित्र से मिलने के लिए संकोच किया, किन्तु

अंत में उसने पत्नी की बात मान ली । भुने हुए चावल की छोटी सी पोटली ले मित्र के पास गया । कृष्ण अपने विद्यालय के संगी को देख अत्यन्त प्रसन्न हुए और उपहार का उपभोग किया । कवि ने यहां यह दिखाने की चेष्टा की है कि प्रभु भक्ति द्वारा दी गई छोटी सी वस्तु पर भी अधिक संतुष्ट होते हैं । इस काव्य में ब्राह्मण की दरिद्रता तथा मित्र के प्रति स्नेह तथा कर्तव्य की झांकी मिलती है । `लीलामाला` में कृष्ण के बाल्य काल की घटनाएं १०७ पद में चित्रित की गई हैं, वैकुंठ प्रयाण में कृष्ण के अंतिम प्रयाण का वर्णन है, दोनों की कथा भागवत के दशम स्कंध से ली गई है । `वैकुंठ प्रयाण` कीर्तन का सबसे दीर्घकाय काव्य है जिसके २५४ पद १६ भागों में विभक्त हैं इसमें, यदुवंशियों के द्वारका से प्रभास जाने का और उनके मद्यपान, भोग, कलह और विनाश की कथा है, कृष्ण की मृत्यु जरा नामक व्याध के शर से हुई और उन्होंने अर्जुन को अंतिम संदेश दिया, अर्जुन यादवों को इन्द्रप्रस्थ लाए । काव्य का आरंभ कृष्ण और उद्धव के वार्तालाप से आरंभ होता है, जिन्हें यादवों के विनाश की बात पहले प्रकट हो चुकी थी । कृष्ण ने उद्धव को भक्ति की शिक्षा दी और तीर्थयात्रा करने के लिए आदेश दिया । इस काव्य के अंतिम दृश्य में उद्धव ने विदुर को यदुकुल विनाश और कृष्ण के तिरोभाव का समाचार दिया । संपूर्ण काव्य शोक से प्रभावित है । स्वभावत: प्रत्येक व्यक्ति की इच्छा होगी कीर्तन का अंत वैकुंठ प्रयाण के साथ होना चाहिए किन्तु शंकरदेव ने `उरेषावर्णन` नामक काव्य का योग इसमें किया है जिसमें जगन्नाथ मंदिर का वर्णन है, इसकी विषय वस्तु ब्रह्मपुराण से ली गई है और इसमें जगन्नाथ `क्षेत्र की स्थापना का वर्णन है । राजा इन्द्रद्युम्न ने उड़ीसा में अनेक मंदिरों का निर्माण कराया ।

कीर्तन शंकरदेव की प्रौढ़ रचना है, जैसा हमने देखा है कि भागवत के अनेक आख्यान को इस दृष्टि से इसमें संयुक्त किया गया है, जिससे भक्ति के सामान्य सिद्धांत और भक्त के आचरण तथा नियम का ज्ञान हो सके । इसमें संवेदनात्मक भाषा शिक्षाप्रद वंदना विनय से पूर्ण आकर्षक शैली में लिखी गई हैं । किन्तु आधुनिक पाठक के लिए कीर्तन का महत्व इसके सैद्धांतिक व्याख्या, प्रवचन तथा धार्मिकता की दृष्टि से नहीं कर विशाल वर्णनात्मक पद्योजना, विशद व्याख्या तथा मूलत: तुक की योजना जो काव्य में सर्वत्र प्रभावित हो रही है के लिए है जगन्नाथ बरुवा ने इसकी लोकप्रियता के संबंध में ठीक ही कहा है `सुख-दुख प्रेम-वियोग, क्रोध क्षमा आदि सब भाव समान रूप से कीर्तन में समाविष्ट किये गए हैं । प्रत्येक श्रेणी के पाठकों को यह आनंद प्रदान करती है । इसमें बालकों के लिए कौतूहल पूर्ण कथाएं और गीत हैं, युवकों को काव्य सौंदर्य आनंद देता है, और वृद्ध जनों को इसमें धार्मिक शिक्षा तथा ज्ञान मिलता है । धार्मिक दृष्टिकोण से ही कीर्तन काव्य की

महत्वपूर्ण कृति नहीं, वरं इसमें प्रत्येक धर्म के उदार विचार सन्निहित हैं ।

हरिश्चंद्र उपाख्यान की रचना शंकरदेव ने महेन्द्र कंदलि की पाठशाला में किया था । इस ग्रंथ की विषय वस्तु मार्कण्डेय पुराण से संकलित की गई है काव्य के आरंभ से अंत तक कवि ने भक्ति का महत्व प्रकाशित किया है । उनकी युवा काल की दूसरी रचना रुक्मिणी हरण काव्य है ।

`रुक्मिणी हरण` अत्यन्त मनोहर काव्य है । इसकी विषय वस्तु हरिवंश तथा भागवत से ली गई है । काव्य के प्रारंभिक पदों में कवि ने स्वयं कहा कि मैंने इन ग्रंथों की सामग्री का मिलण इस दृष्टि से किया जिससे वह अधिक सरस और मधुर हो जिस प्रकार से लोग दूध में मधु डाल कर उसे अधिक स्वादिष्ट पेय बनाते हैं । कवि ने इसे अधिक यथार्थवादी रुप देने के लिए मूल कथा के दृश्यों में सर्वसाधारण घरेलू अनुभवों का भी योग किया है जिससे पौराणिक आख्यान साधारण लोकप्रिय कहानी में परिवर्तित हो गया है । विदर्भ के राजा भीष्मक की पुत्री रुक्मिणी ने कृष्ण को अपना पति चुना । माता पिता की इच्छा के विरुद्ध रुक्मिणी के भाई रुक्म ने शिशुपाल के साथ उसके विवाह की व्यवस्था की । रुक्मिणी ने वेदनिधि भाट ब्राह्मण द्वारा अपना संदेश कृष्ण को भेजा कि वे उसकी शिशुपाल से रक्षा करें । इस काव्य में वेदनिधि ने विश्वासी मित्र का कार्य किया है । कृष्ण कोबुलाने के लिए वेदनिधि द्वारका पहुंचे कृष्ण ने ब्राह्मण के साथ तत्काल रथ से प्रस्थान किया, रथ की गति वायु और `नारद` की गति से अधिक थी, विध्वंसक की भांति वह शब्द करता चला रहा था । अचेत हो जाने के भय से ब्राह्मण ने अपनी आँखें हाथ से ढंक लीं । उसका सिर बार बार घूमने लगा, चकराकर वह रथ के निचले भाग में अचेत हो कर गिर गया । कृष्ण ने ब्राह्मण की सेवा की और पुनः चेतना लाभ कर सका । विवाह के दिन कृष्ण कुंडिन नगर पहुंचे-- भवानी मंदिर की ओर जाती हुई रुक्मिणी का हरण किया । रुक्म आदि अन्य राजकुमारों ने कृष्ण का पीछा किया पर वे असफल रहे । द्वारका में रुक्मिणी कृष्ण का विवाह हुआ । इस काव्य में कवि ने अनेक यथार्थवादी चित्र प्रस्तुत किए हैं रुक्मिणी की विवाह संबंधी पारिवारिक वार्ता, कृष्ण आगमन और अन्य राजकुमारों के साथ युद्ध, वैवाहिक रीति का विशद चित्रण कवि ने किया है । मध्ययुगीन असमिया अलंकार तथा अनेक वर्ण के आभूषण आलंकारिक ढंग से उपस्थित किये गए हैं । शंकरदेव ने जिस विवाह का वर्णन यहां प्रस्तुत किया है वह प्रचलित वैवाहिक रुप से सर्वथा भिन्न, अन्य लोकप्रिय चित्रों से भरपूर है । विवाह के दृश्य में व्यंग विनोद तथा दुख से दोनों की दिखाई देते हैं । इस विवाह में समस्त देव गंधर्व तीनों लोक से अपनी मर्यादा और पद की दृष्टि से योग्य क्रम

उपहार लेकर आए । शिव की स्थिति सर्वथा अद्भुत थी क्योंकि उनके पास भेंट के लिए कुछ भी न था-- यहां तक कि उनका वेश बाघ का चर्म था और उनके हाथ में त्रिशूल और डमरु तथा एक वृष ही संपत्ति थी, उनके मस्तक पर चंद्र विराजित था, सांप उनके शरीर में आभूषण की भांति लटक रहा था, मुंडमाल गले में था और गात्र में विभूति मात्र थी ।

युद्ध दृश्य के बिना कोई कार्य पूर्ण नहीं होता है । हमारे कवि ने इसकी भी पूर्ति, कृष्ण और अन्य राजाओं के मध्य हुए युद्ध का वर्णन दे पूरा किया है, युद्ध के दृश्य में वीर रस का प्राधान्य है ।

बालिछलन -- पाटबाउसी प्रवास काल में शंकर ने इस कृति का सृजन किया । भागवत अष्टम स्कंध के बलि का आख्यान इसमें रूपांतरित किया गया है । भक्ति के विविध सूत्रों की व्याख्या और विशेषत: दास्य भक्ति का प्रतिपादन इस ग्रंथ भर में हुआ है इसके अतिरिक्त इस ग्रंथ में यह भी स्पष्ट किया गया है कि धन-धान्य, वैभव मनुष्य की आध्यात्मिक उन्नति में बाधक हैं ; श्री पालि पाले जाक परम आपदे: यह सब अनर्थ की मूल हैं और उनके नियंत्रण द्वारा ही शांति तथा संतोष की प्राप्ति संभव है ।[१]

शंकरदेव केवल कृष्ण संबंधी विषय वस्तु तक ही सीमित न रहे किन्तु उन्होंने रामायण के आधार को ग्रहण कर भी ग्रंथों की रचना की उन्होंने रामायण केउत्तर काण्ड का अनुवाद किया उस समय माधव कंदलि के असमिया रामायण के पांच काण्ड प्राप्त थे किन्तु आदि तथा उत्तर कांड न थे । हम उत्तरकांड को एक स्वतंत्र रचना मान सकते हैं । क्योंकि इस आख्यान की नाना घटनाओं का वर्णन राम की सभा में लव कुश ने गान गा कर किया है । भागवत जैसे पवित्र ग्रंथ के अनुवाद में कवि ने मूल पाठ का यथाशक्य: अनुसरण किया है किन्तु इसके विपरीत रामायण के उत्तर कांड में :अनुवादक ने आदर्श, चरित्र तथा घटनाओं का अनुवाद उनका मूल ध्येय न था । वाल्मिकि के नायक राम इसमें काव्य के नायक नहीं, वे केवल कृष्ण के अवतार मात्र हैं ।

१- तिनिको लोकत मत आछे धान्य धन
यत दिव्य नारी आछे सुंदरी प्रधान
यत दिव्य घर बारी वस्त्र अलंकार
सबेउ नुपुरे मन एक तुष्टियार
पृथु गया आदि करि राजा अपर्यन्त
अधीर तृष्णा केहो नपाइलेक अन्त

भक्ति संप्रदाय के प्रचारार्थ ही शंकरदेव ने इसका रुपांतर किया । इसे अधिकांश वैष्णवी रुप देने के लिए ही कवि ने धार्मिक भावों से युक्त भणिताओं का संयोग प्रत्येक खंड में किया है । एक खंड इस प्रकार की शिक्षा सहित समाप्त होता है । :-

शुना सभासद रामायण पद
पा कर भूम्रकेतु
अपार संसार तुमि होवे पार
राम नाम बांधि सेतु
दुष्ट काल सर्प सब को डंशिले
मैरा मुति खा बुद्धि
रामनाम रतो अमृत पिवइ
नाइ नाइ महाऔषधि ।।

रामायण काव्य है शास्त्र नहीं, शंकरदेव ने इस काव्य में स्वतंत्रापूर्वक अनेक नवीन उद्भावनाओं का सम्मिश्रण किया है और काव्य में ऐसे वर्णन के योग्य जितने भी अवसर मिले हैं उनका लाभ उन्होंने उठाया है लौकिक तत्वों के अतिरंजित प्रयोग से कहीं कहीं पाठकों को हास्य रस का आस्वादन कराया गया है । राम द्वारा क्रुद्ध दुर्वासा और उनके शिष्यों के भोजन का दृश्य यद्यपि पारिवारिक वातावरण से परिपूर्ण है तथापि अतिरंजित वर्णन के फलस्वरुप इसमें हास्य अधिक है ।

ऋषिर क्रोध देखि शंकित राघवे
अन्नपान आपुनि सजिला सबांयवे ।
आगल योगाइला आनि अनेक मने ।।
देखि दुर्वासा महातुष्ट भैला मने ।।
करि परिपाटि पाछे शिष्ये सभे ऋषि
भुजिबे लागिला अन्न परम हरिषि ।
कन धरिर धरिर ला रवैलंत लागे मने
नभरथ पेट पीपाण परमाणे ।।

नायकों ने यहां अपने उदात्त चरित्र को छोड़ दिया और वे सामान्य कोटि के स्त्री पुरुष के सदृश हो गए हैं । पृथक होने के दृश्य में सीता वाचाल स्त्री की भांति प्रस्तुत की गई है । उन्होंने राम की भर्त्सना जिन शब्दों द्वारा की है उसकी भाषा गंवारपन की सीमा तक पहुंच गई है । शंकरदेव की :विशद: विस्तार प्रियता के कारण सीता के अंतिम बनवास के करुण दृश्य में भी उन्होंने अनावश्यक ढंग से कथा का विस्तार किया है । सीता विलाप करने लगती हैं,अपने पुत्र लव-कुश को शिक्षा देकर उन्हें गले से लगाती हैं तथा अपने पति राम के लिए अत्यन्त विस्तृत संदेश देती हैं । ज्योंही सीता स्वर्ण पालकी पर ले जाई जाती हैं, राम मूर्छित हो सिंहासन के नीचे गिर पड़ते हैं । समस्त उपस्थित जन शोकाकुल हो अश्रुधारा बहाते हैं । इस दृश्य में स्थानीय तत्व हैं :-

देव ऋषि सबे संतापे कांदन्त
धरिते चित्त नपारि
भालुक वानर कांदे निरंतर
भाटिता मरि लोटारि
भरत लक्ष्मण वीर शत्रुघ्न
भूमित पातरता कांदि
कौशल्या प्रमुख्ये मुठि लगाय थिये
सीता कुलि रथ बांधि
सैनकिनी सब सीतार शोकत
कांदि परि लोटप्पुरि
पाइला स्वर्ग कोला क्रंदनर किनो
हुम्हुल रोकला उठि ।

इस प्रकार गृहस्थिक दुःख,शोक और करुणा के दृश्यों का प्रभाव सामान्य जनों के मस्तिष्क पर अधिक पड़ा है । मूल महाकाव्य में जो घनीभूत भावनाएं और शांत स्वर है वह इन वर्णनों में नहीं है ।

गीत

बरगीत तथा अंकीय नाट की रचना कर शंकरदेव ने अपना अमिट चिन्ह असमिया साहित्य पर छोड़ दिया है । असमिया के लिये ये दोनों रूप नवीन थे । कीर्तन अथवा अथवा अन्य काव्यों की भांति इनकी रचना असमिया भाषा में न हुई । मैथिली असमिया मिश्रित ब्रजबुलि भाषा में ये लिखे गए । बंगाल,बिहार,उड़िसा के वैष्णवों के कवियों मध्य यही माध्यम प्रचलित था । यह अनुमान लगाना कठिन है कि शंकरदेव ने अपने काव्यों की भाषा को छोड़कर अपने भक्तिमूलक गीतों तथा नाटकों केलिए ब्रजबुलि को क्यों चुना ? यह दृष्टव्य है कि शंकरदेव ने प्रथम बरगीत की रचना असम से बाहर बद्रिकाश्रम में प्रथम तीर्थ भ्रमण काल :१४८८: में की थी । नीचे यहां हम ऐतिहासिक महत्त्व के दृष्टि से नहीं-- गंभीर अभिव्यक्ति तथा कला सौष्ठव की दृष्टि से एक गीत उद्धृत करते हैं :-

मन मेरि राम चरणहि लागु
तइ देखना अन्तक आगु
मन आयु आयु क्षणे क्षणे टूटे
देखा प्राण कौन दिना छूटे
मन काल अजगरे गिले
जान तिलेके मरण मिले

यह ध्यान देने योग्य है कि ब्रजबुलि में संयुक्त व्यंजन स्वरों की अधिकता और श्लेष आदि कम थे,यही कारण है कि गीतों की रचना के लिए यह माध्यम ध्वनि की दृष्टि से भी अधिक उपयुक्त सिद्ध हुआ । इसकी प्रासादिकता से परिचित इस कृत्रिम बोली में पवित्रता की मात्रा अधिक समझी जाती थी,क्योंकि इसे वृंदावन :ब्रज: की परंपरागत भाषा समझा जाता था जिसमें कृष्ण तथा गोपियों ने वार्तालाप किया था । इस मूल भाषा में ध्वन्यात्मक अभिव्यंजना मूलक स्वर थे,:इसका व्यवहार ३ सामान्य वार्तालाप में जिसकी आवश्यकता नहीं होती,की पूर्ति के लिए इसका उपयोग किया गया है ; वैष्णव वातावरण की दृष्टि में यह अधिक सफल हुई । इस कृत्रिम भाषा का प्रयोग सर्व प्रथम शंकरदेव ने किया,उनके बरगीत तथा अंकीय नाट में इसका अप्रतिम प्रयोग हुआ है । संभव है कि बौद्ध चर्यापदों के आदर्श रूप ने बरगीत रचना का

मार्ग दिखाया हो । बरगीत काव्यों की अपेक्षा अधिक कवित्वमय और कीर्तन के आख्यानों से भावपूर्ण हैं । संगीत की बढ़ती हुई लोकप्रियता और देव-वंदना की आवश्यकता ने शंकरदेव से अधिक संख्या में बरगीतों की सृष्टि कराया । यह भजन आज भी हमारे साहित्य की सुन्दर निधि हैं ।

धार्मिक जीवनकी अनुभूति, दार्शनिक विचार, जगत तथा ब्रह्मवाद, आत्मचिंतन, आत्म शिक्षा, और आत्मसमर्पण आदि बरगीत के विषय हैं । कुछ गीतों में ईश्वर के स्वरूप, उसका मानव के साथ संबंध उसकी करुणा, मनुष्य जन्म में उसके भोग और उससे मुक्ति के साधन का विवरण है । अन्त में मनुष्य कोउद्बोधन किया गया है कि वे हरि का स्मरण करें, गोविंद का चिंतन करें, उनके चरणों में ध्यान कर संसार की माया प्रपंच से विमुख हों संसार के भव भय से पीड़ित शंकरदेव अत्यन्त दुखित हैं, किन्हीं किन्हीं भजनों में अस्थिर और शोकपूर्ण संसार से कवि अत्यन्त दुखित हैं । इस प्रकार वह गाते हैं :-

श्री राम मई अति पापी, पामर तेरि मायात माझ
जनम चिन्तामणि कहे गयो फेरि नायक लाज ।।
दिवसे विषय विआकुल निशि शयने गवांइ ।
मने धन लुबि विमोहित तेरि आरति नाइ
हृदय कमले हरि बैठल चिन्तो चरण ना तेरि ।।

राम अथवा कृष्ण की भक्ति, पूजा तथा उपासना ही इस भव संसार के प्राणियों की मृत्यु, विनाश और संहार से रक्षा कर सकती है । निम्नलिखित भजन में शंकर की भक्ति प्रणाली, आत्म ग्लानि और आत्म निवेदन का वर्णन है

रथनि दिवस दुर

पामर मन राम चरणे चित देहु
अथिर जीवन राम माधव केरि नाम मरणक संबल लेहु
रथनि दिवस दुर भावि भावत, आयल अंतक गराजि
कथि तनुपात मिलब भाति भणि राम भजहु तब परजि
आशा नाश परशि मनसापशु पड़लि बंदि बेरि बेरि
भव कारागर तारक नाहि पार विने भकति रति तेरि

अवनिशि सेवहु राम परम पहु रहु हृदि पंकजि मेरा
कृष्ण किंकर भण   राम परम धन मरणाहिं संग न छोरा

कतिपय बरगीतों में हम बाल कृष्ण की लीला का वर्णन देखते हैं,वे गोप बालकों सहित गो चारण के लिए जाते हैं,वन में सखाओं से पृथक हो जाते हैं,और संध्या समय अत्यन्त आकुल व्याकुल हो आ घर पर सो जाते हैं इन गीतों में असम के गांवों के मनोहर दृश्य अंकित हुए हैं । यशोदा अपने पुत्र कृष्ण के कुशल क्षेम के लिए सदैव सदैव व्याकुल हैं ।

कृष्ण के मथुरा गमन के पश्चात गोपियां अत्यन्त शोकाकुल तथा विह्वल हुई,उनका चित्र निम्नलिखित गीत में अंकित किया गया है ।

उद्धव बंधुश्रो ! मधुपुरी रहल मुरारु
काहे रहब नाहेरि अब जीवन
    धन भयो मदन कुमारु ।।

याहे वियोग लागि अंग अवश,तिलु एकु रहब न पारि
सोहि ब्रज सूर दुर गयो गोविंद दिश दश दिवसे अंधारि
भयो मरण बोहि गेहि हरि बदनक बिछुरि रहब ना पारि पाव
देखत कालिंदी गिरि वृंदावन तनु मन दहय सदाय ।
ब्रजजन जीवन बहुरि नाहि आवत हमाकु करल अनाथ
गोपिणि प्रेम पराके गीर कृष्ण,शंकर कह गुण गाथ

3 दार्शनिक विचारों को उन्होंने गीतिमालाओं में पिरोया । इस गीति काव्य में उन्होंने उच्चतम भावों का समाहार कलापूर्ण तथा तुकांत शैली में किया । उपमा,रूपक, उत्प्रेक्षा,श्लेष आदि अलंकारों ने इसे अधिक रोचक और ग्राह्य बनाया है । बरगीत

पावे हरि हरि नर को कातरि प्राण रामबि मोरा
विषय विषधर विश जराजर जीवन ना रहे थोरा ।।
अथिर धन जन जीवन यौवन,अथिर रहु संसार ।
पुत्र परिवार सबहि असार कर को कोहरि सार ।।
कमल-दल-जल चित चंचल थिर नहे तिल एक ।
नाहि भयो भव भोगे हरि हरि परमानंद प्रत्येक ।।

की लोकप्रियता शीघ्र ही व्याप्त हो गई और परानुवर्ती कवियों ने भी इस ढंग के गीतिकाव्य का सृजन किया । संगीत विशारद माधवदेव की रचनाएं सर्वोत्तम हैं ।

चौतिशा शंकरदेव के काव्य का एक पृथक रूप है । शंकरदेव काशी में कबीर के कुछ शिष्यों से मिले और वे कबीर के चौतिशा पद पर लुब्ध हुए । इसमें वर्णों को क्रम से रखा जाता है ।

नाटक

सामान्य मनुष्य के लोचनों के लावण्य तथा बुद्धिमधुर भाव का ध्यान रख अंकीय नाट की रचना हुई । इन नाटकों का हमारे राष्ट्रीय तथा सांस्कृतिक जीवन पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा, इनके द्वारा रंगमंच का उत्थान और नृत्य, संगीत की प्रगति हुई । आरंभ में इनका उद्देश्य वैष्णव मत का प्रचार मात्र था, किन्तु आज भी इनका अटूट संबंध हमारे लौकिक जीवन से है । इससे हमारे काव्य को गति प्राप्त हुई और इस प्रकार वर्णनात्मक छंद पटिमा की रचना आरंभ हुई । अंकीय नाट में हमें सर्वप्रथम ब्रजावली गद्य का दर्शन होता है -- यह गद्य सम्पूर्ण संगीतात्मक तथा ध्वन्यात्मक है ।

कालियदमन नाट की रचना लगभग १५१८ ई० में बरदौवा में, पत्नीप्रसाद १५२१, धुवाहाट में केलिगोपाल १५४० में, रुक्मिणी हरण, पारिजात हरण, रामविजय की रचना लगभग १५६८ ई० में हुई । राजा नरनारायण के अनुरोध पर इस अंतिम नाटक की रचना हुई थी । प्रथम तीन नाटकों की विषय वस्तु भागवत से ली गई । रुक्मिणी हरण तथा पारिजात हरण क्रमशः हरिवंश और विष्णु पुराण के रूपांतर मात्र हैं, राम विजय की कथा रामायण से ग्रहण की गई है । इन नाटकों की कथा सुखांत है । विषय वस्तु, रचना विधान तथा नाटकों के उद्देश्य की दृष्टि से शंकरदेव को अधिक सीमित रहना पड़ा । प्रत्येक नाटक की कथा पूर्वनियोजित तथा स्थिर थी-- अभिनय के समय प्रचार पक्ष की ओर कला की अभिव्यक्ति की अपेक्षा अधिक ध्यान दिया गया है।

लेखक यहां पहले उपदेशक है और पीछे कलाकार है अतः उन्होंने उन घटनाओं को चुना जिससे उनके अभीष्ट की सिद्धि होती थी । रुक्मिणी हरण, पारिजात हरण तथा राम विजय आदि नाटकों की लघु परिधि में भी पात्रों का चरित्र विकास स्पष्ट है । रामविजय नाटक में, राम मिथिला से दशरथ, सीता तथा लक्ष्मण के साथ लौट

रहे थे,मार्ग में उन्हें परशुराम मिले । परशुराम के गुरु शंभु के धनुष तोड़ने के कारण राम पर क्रुद्ध थे । परशुराम ने क्रोध में अपना कंधा हिलाया और राम को शक्ति परीक्षा का आवाहन किया । सूत्रधार के शब्दों द्वारा इस उत्तेजनात्मक स्थिति की सृष्टि संभव हुई ।

पारिजात हरण के पात्रों में मानवीय संवेदना का आधिक्य है । नारद ने एक दिन एक पारिजात पुष्प कृष्ण को समर्पित किया और कृष्ण ने उस पुष्प को रुक्मिणी को भेंट किया,जो उस समय उनकी सेवा कर रही थीं । यह समाचार नारद ने सत्यभामा को सुनाया । सत्यभामा ने अन्न जल का त्याग किया और वे ईर्ष्या से पीड़ित हो अचेत हो गई । नारद पुन: कृष्ण के समीप गए और उन्हें स्थिति से अवगत कराया । कृष्ण शीघ्र ही भीतर के कक्ष में प्रविष्ट हुए । सत्यभामा कृष्ण को तब तक अपशब्द कहती रही जब तक उन्होंने यह वचन दिया कि वे इन्द्र के उद्यान से पारिजात को समूल उखाड़ उनके मंदिर में लगा देंगे । अमरावती अभियान में सत्यभामा ने कृष्ण का साथ दिया ।

जिस समय कृष्ण पारिजात को समूल उखाड़ने की चेष्टा में थे,माली ने उन्हें रोका-- इस समय सत्यभामा और इन्द्र की पत्नी शची के मध्य वाक्युद्ध हुआ । यहीं हम उसके एक अंश को उद्धृत करते हैं ।

शची अवे,सत्यभामा ,तोहारि स्वामी माधवक कथा हामु सब जानि । ओहि गोपी विठाल गोपाल । उनिकर आगु गोकुलक स्त्री नाहि रहल । देखु कंसक दासी कुबुजी ताहाक हात एड़ाक्य नाहि । ताहेक आरा कि कहब । ऐचन अनाचारी कृष्णाक गर्व कवैथहो हामाक पारिजात निया जाय । आ: वज्रपाते सवंशे नाश भेलि । जानब ।

सत्यभामा - अवे इन्द्राणी जगतक परम गुरु हामार स्वामी माहेर नाम सुमिरते महा महा पापी सब संसार निस्तरे । ताहेक अतये निन्दा करह । अवेनिलाजिनी मारिते न जान। तोहारि स्वामी इन्द्रक कथा कहिते घृणसे उपजे । देखो अमरावतीक मत वेश्या तोहाक स्वामीक से नाहि आंटल । तोहारि स्वामी क्यलि कि १ गौतम ऋषिक भार्य्या अहल्या ताहेक मायाकरिकहु जाति भ्रष्ट क्यल । तानिमित्ते सब शरीर टाकि योनिदक भेल । अवे पामरी ऐचन इंद्रक हामाथ आगु बाखानह ।

यद्यपि ये पात्र पौराणिक है तथापि इनमें मार्यादा और गांभीर्य का अभाव है । वस्तुत: लेखक के समय की कुलटा नारी का प्रतिनिधित्व ये दोनों करती हैं । शंकरदेव ने `रुक्मिणी हरण`तथा `राम विजय`में अशिक्षित दर्शकों के लिए कतिपय प्रेम दृश्यों को प्रस्तुत किया है ।

इन नाटकों की उल्लेखनीय विशेषता यह है कि इनमें पदों की अधिकता है,और कवि ने कथा को आगे बढ़ाने के लिए इनका प्रयोग किया है । पात्रों के द्वारा परिस्थिति,घटना और स्थान को प्रस्तुत न कर इसे सूत्रधार के मुख से लंबे वर्णनात्मक पदों द्वारा प्रस्तुत किया गया है । मुख्य पात्र की अनेक छोटी मोटी घटनाएं,भाव तथा अनुभूति का प्रकाशन गीतों द्वारा हुआ है । राम विजय में राक्षसी ताड़का के साथ राम की मुठभेड़ :   : तथा सुबाहु तथा मारीच का कौशिक की यज्ञशाला के निकट वध आदि रंगमंच पर अभिनय द्वारा नहीं दिखाए गये,केवल गीतों का पाठ कर इन घटनाओं को दर्शकों को सुना दिया गया । इसी प्रकार रुक्मिणी हरण में --- बंधु के रक्षार्थ रुक्मिणी की कृष्ण से प्रार्थना,कृष्ण और रुक्मिणी की द्वारका की बरयात्रा और विवाह का चित्ताकर्षक दृश्य केवल गीतों द्वारा प्रस्तुत किया गया है । नृत्य दूसरा साधन था,जिससे कथा को दर्शकों के सम्मुख रखा गया । पत्नी प्रसाद,रास क्रीड़ा,कालि दमन के संबाद और चरित्र चित्रण अत्यन्त दुर्बल और शिथिल हैं । इनकी कथा का वर्णन सूत्रधार गद्य अथवा पद द्वारा करता है । संस्कृत नाटकों के विपरीत सूत्रधार अंकीय नाट का अभिन्न अंग है और वह आरंभ से अंत तक रंगमंच पर रहता है । वह नाटक का आरंभ,पात्रों का परिचय,उन्हें निर्देश दे, उनके प्रवेश और निगमन की सूचना देता है--- और नाटक के रिक्त समय में गीत गा,खाली स्थान को पूर्ण करता है,कथानक में जहां कहीं भी नैतिक अथवा आध्यात्मिक प्रसंग आते हैं वह व्याख्यान देता है ।

नाटकों की भटिमाओं का प्रयोग विशेषत: नंदीपाठ अथवा मंगलाचरण तथा अंतिम स्तुति के लिए किया गया है । सीता के अलौकिक सौंदर्य का प्रकाशन `रामविजय`में सूत्रधार ने इस प्रकार किया है :-

कि कहब रूप कुमारिक राम
कनक पुतली तुल तनु अनुपाम
रतन तिलक लोल अलक कपोल
हेरिये भ्रुभंगे त्रिभुवन मोल
देखिया बदन चांद भेलि लाज
नयन निरिखे कमल जल माझ
हेरिये मुख्युग मिलल उचंक

ललित मृणाल माफज जल पंक
आरक्त कारताल मुनि मन मोह
कनक शलाक अंगुलि करु सोह
बंदुलि निंदि अधर करु कांति
दाड़िम निविड़ विजा दंति पांति
हसत हासित मदन मोह जाइ
नाशा तिलफूल कमलिनी माइ
नवयौवन तन बदरी प्रमाण
उरु करिकर कटि डम्बरुक थान
पद पंकज नव पल्लव पांति
चंपक पाकरि अंगुलि करु कांति
नखवय चारु चंद परकाश
लहु लहु मजगमन विलास
कस लवनु विहि निरमल जानि
कोकिल नाद अमिय भुरे वाणि ।।

शंकरदेव शिल्प विधान की दृष्टि से संस्कृत नाटक के ऋणी हैं । उन्होंने `अंकीय` नाटकों में नंदी, आशीर्वचन, प्रस्तावना, मंगला चरण और मुक्तिमंगल भटिमा का व्यवहार किया है । मंगला चरण और मुक्तिमंगल असमिया में हैं किन्तु नंदी पाठ संस्कृत में है ।

ख

माधवदेव की रचनाएं

माधव देव की रचनाएं

माधवदेव ने असम में वैष्णव धर्म के विकास के लिये सम्प्रदाय के योग्य अनेक ग्रंथ लिखे । अपने गुरु के समान वे भी योग्य एवं कुशल लेखक थे । उन्होंने छ: अंक लिखे, भक्ति रत्नावली और आदि कांड का रूपांतर असमिया छंद में किया, और `नामघोषा` के अतिरिक्त अन्य काव्य ग्रंथों की रचना की । सम्प्रदाय के लिये लगभग २०० भजन लिखा, वे स्वयं भी उच्चकोटि के संगीतज्ञ थे । उनका व्यवहार आज भी `नित्य प्रसंग तथा` नैमित्तिक प्रसंग में व्यक्तिगत और सामूहिक रूप से होता है । `अमूल्य रत्न` और `भूषण हेरोवा` आदि कुछ कृतियां ऐसी हैं जो उनकी मानी जाती हैं किन्तु यह विश्वसनीय नहीं हैं । इनमें से प्रथम तीन माधवदेव की नहीं है क्योंकि इनमें बाद के १८ वीं शती तक के व्यक्तियों और घटनाओं का उल्लेख मिलता है । माधवदेव के नाम से अनेक गीत प्रचलित है किन्तु परीक्षण करने पर वे उनके नहीं जान पड़ते[१] ।

माधवदेव के साहित्यिक जीवन का आरंभ सोलहवीं शताब्दी के मध्य में हुआ । उनकी प्रथम रचना `जन्म रहस्य` है, यह ३०० पदों की लघु रचना है । इसमें सृष्टि की रचना तथा प्रलय का वर्णन है और इस प्रकार ईश्वर की सर्वव्यापकता प्रतिष्ठित की गई है । चिलाराय की पत्नी रानी भुवनेश्वरी की इच्छानुसार इसकी रचना की गई । वे सामान्य नारी भक्तों के लिये इस विषय पर साधारण पुस्तक चाहती थीं[२] । विष्णुपुरी की `भक्ति रत्नावली` के मात्रिक रूपांतर का दूसरा स्थान है । वैष्णव परिपाटी और असम के साहित्य में विष्णुपुरी का प्रमुख स्थान है । `भक्ति रत्नावली` का मात्रिक अनुवाद असमिया वैष्णव सम्प्रदाय में चार प्रमुख पुस्तकों में से एक है । कांतिमाला के आशीर्वचन से

नामघोषा का आरंभ हुआ है,यह लेखक की टीका है । शंकरदेव ने इस ग्रंथ की प्रति कैसे प्राप्त की,कि कथा अत्यन्त रोचक है । कंठभूषण नाम के किसी ब्राह्मण ने इसे काशी से ला शंकरदेव को दिया । कंठभूषण को यह रचना कैसे प्राप्त हुई,इस संबंध में चरित कर्तों में मत भेद है । दैत्यारि के अनुसार कंठभूषण ने इसे काशी में खरीदा।[1] सोलहवीं शती के उतरार्द्ध में यह रचना इतनी प्रसिद्ध नहीं थी कि कामरूप का विद्वान अन्य कृतियों को छोड़,इसे खरीदता रामानंद के अनुसार विष्णुपुरी के शिष्य रामभट्ट ने इस पुस्तक को कामरूप में भागवत धर्म प्रचारार्थ भेंट की ।[2] भूषण द्विज के वक्तव्य में अधिक अंतर नहीं । रामचरण ने इसमें अधिक जोड़ा है -- कंठभूषण ने इसे काशी से लाकर शंकरदेव को भेंट किया और विष्णु पुरी के एक शिष्य ने भी उत्सर्ग किया जब उन्होंने अंत में `एक शरण`अध्याय को देखा तो वे अत्यन्त आनंदित हुये । तदुपरांत इसके असमिया अनुवाद का कार्य माधवदेव को सौंप दिया । भक्ति रत्नावली की टीका की मूल शिक्षा इस प्रकार है :-

:१: एक शरण - स्वयं को एक को समर्पित कर देना,केवल एक देव विष्णु के अतिरिक्त अन्य देवता की उपासना न करना ।

:२: दास्य भक्ति ही भक्ति का सुंदर रूप है ।

:३: श्रवण और कीर्तन दो प्रधान साधन भक्ति की प्राप्ति के लिये हैं

:४: सत्संग भक्ति का महत्वपूर्ण अंग है ।

पुस्तक में एक शरण पर अधिक बल दिया गया है । रामानंद ने ठीक ही कहा है कि इस पुस्तक के अंत में `एक शरण`की चर्चा कर वैष्णव साधना का इसे महत्वपूर्ण अंग समझा गया है ।[3]

`भक्ति रत्नावली`असमिया में रत्नावली के नाम से प्रसिद्ध है । किसी समय इसे अधिक दुरुह पुस्तक माना जाता था क्योंकि अन्य वर्णनात्मक काव्य की अपेक्षा इसमें अगोचर तत्व की अधिकता थी । आज भी असम में मूर्खता पूर्ण कार्य की आलोचना करते

१- दैत्यारि - गुरुचरित ३६ :

२- रामानंद - १४२४ - १४५६

३- रामानंद - १४४६ - ५०

सवाते करिया श्रेष्ठ एकांत शरण ।
गरिष्ठ कारणे सेसे करिछा वंधन ।।

समय कहा जाता है कि बुलिबा ना जाने रत्नावलि पढ़े अर्थात जो व्यक्ति प्रथम अक्षर का पाठ नहीं कर सकता वह रत्नावली पढ़ना चाहता है ।

विष्णुपुरी की कांतिमाला टीका का उपयोग माधव देव ने अनुवाद में किया है विष्णुपुरी ने श्रीधर स्वामी का अनुकरण कुछ साधारण भेदों सहित किया है और उसके लिये भी रचना के अंत में क्षमा याचना की है ।[१]

आदिकांड :- रामायण का असमिया में मात्रिक रुपांतर इनकी दूसरी रचना है । शंकरदेव से पूर्व माधव कंदलि ने संपूर्ण रामायण का असमिया में मात्रिक अनुवाद किया था । घर में रामायण और महाभारत का संकलन कांड तथा पर्व के अनुसार रखा गया है । कहा जाता है कि कछारी आक्रमण के समय माधव कंदलि के प्रथम और अंतिम कांड खो गए । शंकरदेव ने स्वयं उत्तरकांड का छंदोबद्ध रुपांतर किया और माधवदेव को आदि कांड के रुपांतर का भार दिया । माधव ने अपना कार्य सफलतापूर्वक संपन्न किया । आदि कांड का सौंदर्य इसके आकर्षक पदों और उपमाओं में है । यह रचना कहीं भी अनुवाद नहीं जान पड़ती है । असमिया लोकोक्तियों के कतिपय हास्य पूर्ण सटीक प्रयोगों ने इस कृति को अत्यन्त मौलिक बना दिया है ।

आदिकांड के कुछ ऐसे अंश सम्प्रति मिलते हैं जो सम्पूर्ण कांड की संदिग्धता प्रकट क करते हैं और ऐसा लगता है कि कदाचित माधव इनके रचयिता न हों उदाहरणत: अहिल्या की कथा मूल रचना से सर्वथा भिन्न है । इन्द्र का कामपूर्ण विवरण, उनके संभोग का वर्णन कवि की हीन रुचि का परिचायक है और यह मूल रचना से भी नहीं लिया गया है । मूल रचना में यह कथा कुछ श्लोकों में ही समाप्त हो गई है । यह कल्पना करना कठिन है कि माधव देव जैसे साधु वृति के कवि ने इस प्रकार का प्रयोग साहित्य में किया हो । संभव है कि बाद के दो एक साधारण कवियों ने इसे उस रचना में प्रक्षिप्त कर दिया हो ।

राजसूय यज्ञ :- इसकी रचना १५६५ और १५६८ के मध्य में हुई । शंकरदेव के कूचबिहार जाने के पूर्व माधव ने इस कार्य का आरंभ किया और बाद में इसे पूर्ण किया। पुस्तक का उद्देश्य कृष्ण को सर्वोच्च देवत्व पद प्रदान करना है । इसके लिये माधव ने पांडवों के राजसूय यज्ञ का आधार लिया है । अतिथियों में कृष्ण का अधिक सम्मान किया गया जिसका विरोध केवल शिशुपाल ने अकेले किया । काव्य का आरंभ

द्वारका के सुंदर वर्णन से आरंभ हुआ है,कृष्ण के दैनिक जीवन का चित्ताकर्षक वर्णन भी उनकी सांसारिकता को प्रकट करने के लिये लिखा गया है,जो ईश्वर मनुष्य रुप में माया के द्वारा करता है । काव्य में नाटकीय घटनाएं और जरासंध के राज्य दरबार के अनेक दृश्य हैं,जहां भीम तथा जरासंध में द्वंद होता है और अनेक बंदी राजा युधिष्ठर के राजसूय यज्ञ को सफल करते हैं ।

काव्यशैली में लिखी गई इस पुस्तक को वैष्णव युग की सर्वश्रेष्ठ रचना कहा जा सकता है । अलंकारों के प्रयोग से इसका सौंदर्य नष्ट नहीं हुआ है,क्योंकि माधव यदा कदा ही दुरुह अलंकारों और शब्द चमत्कारों में उलझते थे । द्वारका तथा इंद्रप्रस्थ का वर्णन,श्रीकृष्ण का इन्द्रप्रस्थ प्रस्थान,जरासंध और भीम के द्वंद युद्ध वर्णन में गौरव, सम्मान और गाम्भीर्य है जो इस कृति को अधिक महत्वपूर्ण बनाने में सहायक है । राजसूय के साथ उनके साहित्यिक जीवन का प्रथम भाग समाप्त हुआ और दूसरे भाग में अंकों और बरगीत की रचना हुई ।

माधवदेव ने कई एकांकी नाटक लिखे हैं । उनमें से कुछ जाली जान पड़ते हैं । अभिलेखों के आधार पर `रास झूमर``भूषण हेरोवा`,ब्रह्म मोहन और `कोटोरा खेलना`के रचयिता माधवदेव नहीं ज्ञात होते । शेष प्रामाणिक आंकीय नाटकों की संख्या पांच है -- `अर्जुन भंजन`,`चोरधरा``पिम्परा गुचुवा`भोजन विहार और भूमि-लोटोवा । चरित पोथियों में अन्य दो का और उल्लेख मिलता है पर वे प्राप्त नहीं है। प्रामाणिकों में से अंतिम चार को झूमर और प्रथम को यात्रा या अंक कहते हैं ।

झूमुर शब्द का झूमुर अर्थविस्तार की दृष्टि से प्रयुक्त हुआ है जो लघु ताल पर समवेत गान की भांति गाया जाता है। छोटा नागपुर और उड़िसा की महिलाएं सामूहिक नृत्य : : में इसका व्यवहार करती हैं । आरंभ में झूमुर स्त्रियों का सामूहिक नृत्य था,बाद में इसका प्रयोग महिलाओं के लघु प्रदर्शन के अर्थ में होने लगा जिसमें मुख्यतया महिलाएं भाग लेती थी । माधव देव के झूमुरों के परीक्षण करने पर ज्ञात होगा कि इन सब में बाल कृष्ण की लीला और खेल हैं । सूत्रधार के अतिरिक्त इनमें अन्य पुरुष पात्र नहीं हैं । यही कारण है कि यह शब्द `अर्जुन भंजन` के लिये लागू नहीं होता,क्योंकि यह नारी पात्रों तक सीमित नहीं है । संभवत: आरंभ में यह नारी समाज के उत्सव प्रदर्शन थे जिन्हें महिलाओं के सामने दिखाया जाता था ।

आज भी असम में `पाचति`नामक अर्द्धनाटकीय प्रदर्शन प्रचलित है । यह पूर्णतया सधवा महिलाओं का उत्सव है जो जन्माष्टमी के बाद होता है । कृष्ण के बाल्य काल की घटनाएं कथोपकथन और गीतों द्वारा प्रकट की जाती हैं किसी भी स्रोत द्वारा यह ज्ञात नहीं होता कि माधवदेव इस व्यवस्था के संस्थापक थे, किन्तु उनके फूमूर इसके विकास और प्रसार में सहायक अवश्य हुए । इसका अनुकरण कर बाद के नाटककारों ने नाटक लिखे और उन्हें शुद्ध सिक्के के रूप में चला दिया । उन्होंने छोटे छोटे नाटक लिखे, पुष्पिका और गान की `भनिता` पंक्तियों में माधव का नाम पिष्ट-पेषित कर दिया गया और माधव देव के नाम से उसका प्रचलन हुआ, मानों प्रत्येक अंक माधव के फूमूर ही होंगे । इस प्रकार से शब्द का प्रारंभिक महत्व समाप्त हो गया । दैत्यारि भी इस भ्रांति के शिकार हैं जब वे `दधि मंथन` को फूमूर कहते हैं ।

अनेक नव कवियों को - भागवत में वर्णित बाल कृष्ण की चमत्कारिक लीलाओं ने आकर्षित किया । बाल कृष्ण की आनंद पूर्ण लीलाओं का वर्णन सुन्दर पदों में हुआ । उस समय के प्रवाह में काव्य होने के कारण इन्हें थोड़े समय में अधिक लोकप्रियता प्राप्त हुई । रूप गोस्वामी की पद्यावली इसी प्रकार का संग्रह : : है । लीला शुक का `कृष्ण कर्णामृत` भी इस प्रकार के भजनों का संग्रह है[1] । माधवदेव ने जिन पदों का प्रयोग अपने अंक नाटकों में किया है, वे कृष्ण कर्णामृत में मिलते हैं । माधव[2] के नाटकों में जिन पदों का समावेश है, वे वृहत्त पाठ : : में मिलते हैं। इस प्रकार के कुछ और संग्रह हैं -- `सु मंगला स्तोत्र`, `विल्वमंगल स्तोत्र`, `कृष्ण स्तोत्र` इत्यादि । माधव देव द्वारा गृहीत पद विल्वामंगल स्तोत्र तथा लीलाशुक विल्वमंगल में दिखाई देते हैं, ऐसा विश्वास किया जाता है कि ये एक ही व्यक्ति के दो नाम हैं अस्तु, किसी प्रकार यह पद अपने रचयिताओं से अधिक महत्वपूर्ण हो गए। इसीलिये माधवदेव ने इन पदों के स्रोत का उल्लेख नहीं किया है और नाटक में ऐसा करना संभव भी नहीं है यह चरण :पद: प्रारंभिक पदों :भटिमा: अथवा श्लोकों के भाग में दिखाई देते हैं[3] ।

---

१ -

२ -

३ - कालिराम मेधी -- अंकावली पृ० ३८६

जहां तक कथा वस्तु और अभिनय का संबंध है माधवदेव के नाटक आजकल के एकांकी नाटकों की भांति हैं। इन झुमुरों में कथा को संपूर्ण करने के लिये संधियों का प्रयोग नहीं किया गया है। नाटक चरम विकास :   : से आरंभ होता है, विभिन्न घटनाओं का समाधान न कर नाटक त्याग :   : में समाप्त हो जाता है। दर्शकों को वात्सल्य रस में निमग्न कर उन्हें भक्ति का सौंदर्य दिखाने में माधवदेव अत्यन्त सिद्धहस्त थे। मनुष्य में वात्सल्य प्रेम उत्पन्न हो उच्च ईश्वर स्तरीय प्रेम में परिणित हो जाता है। माधव बाल कृष्ण के ईश्वरत्व की ओर संकेत करना कभी भी नहीं भूलते थे, जिनकी विभिन्न लीलाओं का चित्रण उन्होंने किया था। माधव ब्रह्मचारी थे और वे गृहस्थी के वातावरण से अधिक दिन दूर रहे और तो भी उनकी रचना प्राचीन तथा अर्वाचीन असमिया साहित्य में, बाल स्वभाव और उसकी चेष्टाओं और वात्सल्य भाव के सौंदर्य चित्रण की दृष्टि से अनुपम है। 'क्या शाश्वत आनंद दायक साहित्यिक ऊपज पुत्रविहीन ब्रह्मचारी के अचेतन मन की उत्पत्ति है? यह वस्तुत: उन लोगों का विषय है जो साहित्य में मनोविज्ञान का अध्ययन करते हैं।

<u>भाषा</u> - गुरु की भांति इन्होंने भी कृत्रिम भाषा ब्रजावली का व्यवहार किया है। ऐसा दिखाई देता है कि यह नव मिश्रित भाषा अपने पूर्व रूप को खो चुकी है। गीत और संवाद ब्रजावली में हैं किन्तु वर्णनात्मक या विवरणात्मक अंशों का पाठ असमिया में होता है। माधवदेव ने यह नवीन परिवर्तन किया और इसलिये यह शंकरदेव के नाटकों में नहीं मिलता। माधवदेव ने संस्कृत श्लोकों और गीतों की संख्या न्यून कर दी, इस प्रकार से उन घटनाओं को छोड़ दिया, जिनका वर्णन नाटक में नहीं आता था सूत्रधार नाटक में आरंभ से अंत तक रहता है किन्तु उसका अभिनय कार्य शंकरदेव के सूत्रधार की अपेक्षा कम है, इस प्रकार संवाद के लिये अधिक अवसर छोड़ दिया गया। फलस्वरुप माधव के अंक नाटकों में एक रूपता और सूत्रधार की अवर्णनीय उपस्थिति का अभाव है, इस दोष के कारण शंकरदेव के रास क्रीड़ा और कालियमन का नाटकीय प्रभाव कुछ कम हो गया है।

शंकरदेव की मृत्यु के पश्चात माधव ने अपने साहित्यिक जीवन के उत्तरार्द्ध में बरगीत और नाटकों की रचना आरंभ की और १५९३ ई० तक समाप्त की। बरगीत भक्ति-परक गान हैं, यह सभी एक न एक राग से संबद्ध हैं। इन गीतों को 'बर' इसलिये कहा जाता है क्योंकि इनका संबंध उच्च संगीत :मार्ग संगीत: से है और अन्य गान जिनका व्यवहार नाम प्रसंग में होता है, वे सामान्य, अपरिपक्व और श्रुति मधुर :देशी

संगीत: हैं । वस्तुत: गीत और नाम का असमिया में पृथक अर्थ है । पहले का अभिप्राय: है कि वे गीत जो रागबद्ध हैं,और दूसरे का अर्थ है,साधारण लय में पाठ करने के लिये रचना । रागों का संगीतात्मक ढांचा वर्तमान हिंदुस्तानी संगीत से मिलता जुलता है । संभवत: इसका कारण है कि ये राग असम में हिंदुस्तानी संगीत के पुनरुद्धार जो मुगलों के समय में हुआ के पहले आए जान पड़ते हैं । अत: बरगीतों के राग पूर्व मुगलकालीन हिंदुस्तानी संगीत के रुप हैं । यह अत्यन्त शोचनीय है कि गायकों के उचित शिक्षण न पाने के फलस्वरुप बरगीत का अधिक ह्रास हुआ ।

बरगीतों का वर्गीकरण परंपरागत योजना के अनुसार किया जा सकता है । इस प्रकार का प्रथम वर्ग `जागरण गीतों का है जिसमें यशोदा कृष्ण को प्रात: काल जगाती हैं । `चलार गीत `में कृष्ण की गोचारण लीला है । `डौलर गीत `में कृष्ण के दोल क्रीड़ा का वर्णन है । विभिन्न वर्गों के गीत गाने के लिये कुछ विशिष्ट परंपरागत नियम हैं । मध्यान्ह सेवा के अवसर पर `जागरण गीत`नहीं गाए जा सकते हैं । इन भक्तिभाव पूर्ण गीतों में भक्त कवि का ईश्वरोन्मुख उन्माद दिखाई देता है । इस प्रकार दो प्रकार के बरगीत हैं यदि इन्हें इस दृष्टिकोण से देखा जाय तो इनकी दो कोटि होगी माधव देव की दो आध्यात्मिक दशा की सूचना इनमें है । एक `में भक्त कवि के लिये कृष्ण केवल गौ चराने वाले बालक मात्र नहीं है उनका व्यक्तित्व अत्यन्त मनोहर और आकर्षक है वे इस बालक की आनंददायक उपस्थिति से प्रसन्न होते हैं उसका स्पर्श पा हर्षित होते हैं और उसके व्यक्तिगत रुप और सौंदर्य के प्रति उनका प्रगाढ़ आकर्षण हैं । अन्य स्थल पर मुरली मनोहर के दूर जाने पर वे आनंदकंद के दर्शन के लिये अत्यन्त व्याकुल हैं । निम्नलिखित बरगीत इसी कोटि की है ।

`आलो मत्रि कि कहबो दुख ।
पराण निगरे निदेखिया चान्दमुख ।।
कत पुण्ये लभिलों गुणेर निधि श्याम ।
वंचिया निलेक निकरुण विधि बाम ।।
श्याम कानु बिने मोर न रहे जीवन ।
हा श्याम बुलिते आकुल करे मन ।।
दिवस नयाय सुखे नयाय रयनी ।
चांद चंदन मन्द पवन वैरणी ।।:१२५:

दूसरी कोटि के बरगीत में आत्मा का प्रशांत स्वभाव अंकित है इन गीतों में हम झंझा-वत रात का अंत तथा सागर की गंभीरता देखते हैं । चंचल नदी सागर से मिलने पहुंच गई है,और इसमें वह अपना अस्तित्व खो विलीन हो जाना चाहती है । इनमें अभिमानी विद्वान दीन और मूर्ख बन अपने को प्रभु के चरणों में समर्पित कर रहा है । इस प्रकार के लगभग पचास गीत हैं,निम्नलिखित भी उनमें से एक है ---

दयार ठाकुर हरि यदुमणि श्री राम ।
अधमे तोम्हार नाम डाके। कृपा करा नारायण
आह्मार चंचल मन,तोह्मार चरणे येन धाके ।
एक विप्र अजामिल मंदमति पाप शील
पुत्र भावे सुमरि तुम्हारे ।
कर्म बंध करि नाश बैकुंठ पाइलेक वास
हटो आति विदित संसारे ।। ५१

माधवदेव के बरगीतों का सौंदर्य,कोमलता और उनके काव्यरूप संगीत की तुलना किसी भी श्रेष्ठ संगीतज्ञ की कृति से की जा सकती है ।

नाम घोषा में शरण तथा शांत का प्राधान्य है,यही स्वर इन गीतों में सुनाई देता है । माधवदेव की वात्सल्य साधना ने यात्रा के अंत में उन्हें सत और दास्य में उतार दिया । नाम घोषा उनके साहित्यिक जीवन,और कदाचित उस काल के समग्र धार्मिक साहित्य का महत्वपूर्ण ग्रंथ है ।

माधवदेव ने कूचबिहार :१५६३- १५६६: में एक और रचना की । यह संस्कृत की धार्मिक रचना `नाममल्लिका`का छंद बद्ध असमिया रुपांतर है । जैसा नाम से प्रकट है यह नाम की माला है,इसमें पवित्र नाम की महिमा का गुणगान किया गया है । कूच बिहार के एक वृद्ध मंत्री वीर काजी को यह पुस्तक उड़िसा में प्राप्त हुई । उन्होंने माधव से अनुरोध किया कि वे इसका छंदबद्ध अनुवाद करें । माधव ने संरक्षक की आज्ञा शिरोधार्य की,किन्तु यह पुस्तक उन्हें अच्छी न लगी । इस ग्रंथ में न तो शृंखला थी न ग्रंथ ही सार्थक था और इसका पद करने में क्या कौतुक मिलेगा[१] । इसका एक अन्य कारण

---

१ - नाहिके शृंखला ग्रंथ अति निरर्थक ।
आर पद करि कोने मिलिबे कौतुक ।। नाम० मल्लिका ४-१०

था जिससे यह पुस्तक उन्हें रुचिकर प्रतीत न हुई । हरि का पावन नाम स्मरण करने से जिन पुण्य फलों की सिद्धि होती है,उनकी लंबी सूची इस ग्रंथ में दी गई है । इसकी प्रशंसा माधवदेव ने कर सके । पुस्तक के अंत वे अपना दृष्टिकोण स्पष्ट करते हुए कहते हैं । `हरि का नाम आनंद से लो,यही केवल मात्र ऐसा धन है जिसकी भक्त को वांछा करनी चाहिए ।[1]

नामघोषा :- पवित्र आत्मा की प्रामाणिक अनुभवों की लिपिबद्ध रचना है,इसे तत्कालीन समाज की आध्यात्मिक पीड़ा,विविध विचार प्रवाहों का दर्पण कहा जा सकता है । इसमें उनके गुरु की शिक्षा,नाना शास्त्रों का सार तथा इसके अतिरिक्त उस सत्य की राशि है जिसे उन्होंने अनुभव किया था । उनका अंतिम संदेश,भवानी आता को इस प्रकार दिया गया है :-

प्रत्येक दिन नाम घोषा का पाठ करो,जो कुछ मुझे शंकरदेव से प्राप्त हुआ है तथा शास्त्रों के अध्ययन से जो मैंने पाया है,इससे बढ़कर मैंने अपनी सत्य अनुभूति को इसमें सन्निहित किया है । अत: इस पुस्तक को अपने निकट रखना न भूलना,इसका स्वध्याय तुम्हें ज्ञान प्राप्त करने में सहायक होगा ।[2]

शंकरदेव के कूच बिहार प्रस्थान करने के पश्चात माधवदेव ने नाम घोषा की रचना आरंभ की यह कथा प्रचलित है कि शंकरदेव ने प्रस्थान से पूर्व माधवदेव को आदेश दिया थ कि तुम एक ऐसी पुस्तक की रचना करो जो बाहर से बेर के सदृश कोमल हो पर भीतर से कठोर हो,अर्थात `नामधर्म`की शिक्षा सरस,सुन्दर प्रवाहमयी भाषा तथा पद में प्रकाशित की जाय । गुरु की आज्ञा पालन कर माधव ने कार्य आरंभ किया,किन्तु जब तक वे बरपेटा में थे अधिक कार्य न कर सके । कूच बिहार में उनका जीवन विरक्त : : का जीवन था,यहीं इस ग्रंथ का अधिक भाग पूर्ण हुआ:१५६३-१५६६: मृत्यु के कुछ ही दिन पूर्व वे इस कार्य को समाप्त कर सके । उपरोक्त उद्धरित संदेश ने गोपाल आता को चकित कर दिया,क्यों कि तब तक वे नामघोषा`नामक रचना से अपरिचित थे ।[3]

---

१ - करियो आनंदे हरि नामर कीर्तन ।
रचि मने मात्र भकतर महाधन ।। २२४

गीत का प्रथम पद जो समवेत गान में बार बार दुहराया जाता है उसे घोषा कहते हैं । यह पद उस लय का भी संकेत करता है, जिसमें वह पद गाया जायगा । इस दृष्टि[१] से यह संस्कृत ध्रुव के समकक्ष है । घोषा शब्द घुष से निकला है अर्थात जोर से पढ़ना आरंभ में घोषा उन गीतों को कहते थे, जो ऊंचे सुर से गाये जाते थे । बनघोषा के लिये आज भी यह सिद्धांत लागू होता है, बनघोषा के उन प्रेम गीतों को कहते हैं जिनका गान चरवाहे गांव गरांव में उच्च सुर से करते हैं । वैष्णव काल में इसके अर्थ में कुछ अंतर आ गया । याने उच्च स्वर में गाए जाने वाले भजन को घोषा कहा गया है । शंकरदेव कृत कीर्तन के प्रत्येक अध्याय के आरंभ में ऐसे घोषा दिये गए हैं । कीर्तन के बोझिल पदों की अनुकृति कर यह युगपद : : `नाम घोषा` में लिखे गए । इस रचना में इस प्रकार के एक सहस्त्र पद हैं इसीलिए इस कृति को हाजारी घोषा भी कहा जाता है । सामूहिक अथवा व्यक्तिगत सेवा की दृष्टि से गाने के लिए पुस्तक के अंतिम भाग में विष्णु के अनेक नाम और महात्म्य दिये गए हैं । पुस्तक के इस भाग को नाम छंद कहते हैं नाम धर्म के उत्सव की दृष्टि से व इसका अधिक महत्व है । अत: पुस्तक का यह भाग हजार घोषा का संग्रह नाम घोषा नाम दिलाने के लिये अधिक उत्तरदायी है ।[२]

नामघोषा के तीन वर्ग हैं । प्रथम वर्ग में नाम धर्म का सैद्धांतिक विवेचन है । दूसरा वर्ग शरण छंद कहा जाता है इसमें भक्तिपरक गीतों का संग्रह है । तृतीय वर्ग में विष्णु के अनेक नाम तथा महात्म्य का वर्णन है, जिनका गान मतावलंबी सम्प्रदाय की प्रार्थना के समय करते हैं ।

प्रथम वर्ग को मुख्य घोषा[३] कहा जाता है इसमें नाम धर्म को विश्वधर्म के रूप में अंकित किया गया है । यह अभ्यास में सहज, दृष्टिकोण से पुरातन और अत्यन्त सनातन तथा पवित्र है नामघोषा की दीक्षा-शिक्षा इस प्रकार की होगी ।

---

१ - हरि भान काम, बोला राम राम
घुष्णियोक घने घन ।
सवाय डाकिया घुष्णियो हरि

:१: एक महापुरुष के एक देव का सिद्धांत दुहराया गया है लेखक ने इस पर अधिक बल दिया है । कृष्ण केवल[1] मात्र एक देव हैं उनका वाक्यामृत भागवत ही एक मात्र प्रामाणिक शास्त्र है । वही एक मात्र ही विपत्ति से जीवों की रक्षा कर सकता है, क्योंकि वह काल और माया का स्वामी है ।

:२: नाम तथा नामी :कृष्ण: एक रुप के हैं अत: नाम जीवित पदार्थ : : है । यह आनंद के रस से ओत प्रोत है :नाम आनंद नाम रस: नाम मात्र ही भक्त को परमानंद की ओर अग्रसर करता है ।

:३: भक्ति जीवन का परम लक्ष्य है,यह परम पुरुषार्थ है । धर्म,अर्थ,काम तथा मोक्ष भक्ति के प्रोत हैं ।[2] उस भक्त को `नामघोषा`के आरंभ में श्रद्धांजलि अर्पित की गई जो मुक्ति के प्रति उदासीन है,और प्रथम भाग में एकांत भक्त की व्याख्या ही है,जो चार पदार्थों के मोह का त्याग कर अपने को अद्भुत नाम में विलीन कर देता है ।[3] माधव ने इस सिद्धांत को पुस्तक में बार बार दुहराया है।[4] कृष्ण के चरणों में अपने को समर्पित कर देना ही मानव जीवन का लक्ष्य है

:४: नाम धर्म की उन्नति के लिये हृदय की पवित्रता अत्यन्त आवश्यक है । नाम की सहायता द्वारा ही पवित्रता प्राप्त की जा सकती है ।

:५: नाम ७ धर्म का द्वार सबके लिये खुला है । पूर्व युग में हरि का नाम गुप्त रखा जाता था किन्तु शंकरदेव ने मनुष्य जाति पर दया कर इसे सबके लिये सुलभ किया ।[5]

१- एक खनि मात्र शास्त्र निष्ठा
देवकी नंदने फेला याक
देवो एक मात्र देवकी देविरा सुत । ना० घो० ६६५

२- कृष्ण एक दुख हारी
काल मायादिरो अधिकारी
कृष्ण विने श्रेष्ठ देव नाहि नाहि आर ५८६

३- चार पुरुषार्थ ताहार निजरा
हरि नाम मूलाधार ३७२

४- एकांत भक्त जार ध्येय
महा अद्भुत हरि गुण नाम मय ६८४

५- १,७७ ,१२४ ,२५१ ,२८८ ,३२८ ,५३२ ,६५० ,६८४

जो
कोई भी व्यक्ति कृष्ण की निरंतर प्रशंसा :स्तुति: कर अपने व्यक्तित्व को अधिक से अधिक ऊंचा :नरोत्तम: उठा सकता है[1]।

कवि माधव के चामत्कारिक स्पर्श से नामघोषा में धर्मशास्त्र सुन्दर काव्य में परिणित हो गया है। पुस्तक के अंत में ह धर्मशास्त्री का कवि रुप नहीं रह पाता, वह केवल पार्श्व में संकुचित दिखाई देता है और केवल रहस्य प्रज्वलित होता है। माधव देव विद्वान धर्मशास्त्री के रूप में आकर, कवि बन गए और अंत में रहस्यवादी रुप में बदल गए। उनका साहित्य उनके प्रामाणिक उत्थान का साक्षी है। जन्म रहस्य, भक्तिरत्नावली तथा आदि कांड में उन्हें हम धर्म शास्त्री के रुप में पाते हैं, जो केवल वैष्णव कथाओं और सिद्धांतों के रूपांतर और ह व्याख्या में व्यस्त हैं। यह धर्मोपदेशक की विकास अवस्था की राजसूय में धर्मशास्त्री कवि हो गया है और अपने नाटकों में भी पहले वह कवि है। बरगीत में उसके आत्मा के गहन रात्रि के अंधकार का विवाद : : अंकित है। नाम घोषा में जब हम 'शरण' वर्ग तक पहुंचते हैं वहां हमें शांत, स्थिर प्रथम प्रकाश मिलता है अहं भाव पूर्ण रुप से नष्ट हो जाता है और वह शरण आनंद दशा में लीन हो जाता है और भविष्य में भी इसी अवस्था की कामना करता है।

दयाशील स्वामी के प्रति पूर्ण आत्मसमर्पण में उनका रहस्यवाद निहित है। उनका कृष्ण के साथ प्रिय और प्रिया का संबंध नहीं किन्तु स्वामी तथा सर्वत्यागी दास का संबंध है। उनका परम लक्ष्य ईश्वर से मिलन अथवा आत्म मुक्ति नहीं, वे सदैव ही कृष्ण के चरणारविंद की शरण में सुरक्षित और आनंदित रहना चाहते हैं[2]।

१- परम अमूल्य रत्न हरिर नामर पैरा
अति गुप्त स्वरुपे आछिल
लोकक कृपाये हरि शंकर स्वरुपे आछि
मुद भंगे समस्तके दिल ।।

२ - केवले कृष्णार कीर्तने करिया
समस्त कैनरोत्तम ३४६

मुक्ति के पश्चात भी वे भक्ति रस का रसास्वादन करना चाहते हैं । नाम घोषा का[1] आरंभ रसमयी भक्ति से आरंभ होता है और अंत में कवि अपने को मूर्ख मुरुख: कहता है ।[2] इस शब्द का प्रयोग माधव ने बार बार अपनी अज्ञानता प्रकट करने के लिये किया है । इतना ही नहीं इसका अर्थ गहन है । उच्च कोटि के भक्त को के ज्ञान प्राप्त करना अत्यन्त अनिवार्य है । यह सच्चे भक्त के लिये आनंद का विषय है कि उसके लिये आवश्यक नहीं कि वह ज्ञानी हो माधवदेव ने मनोविज्ञान के जिस रुप को ग्रहण किया है,उसमें किसी भी प्रकार की जटिलता नहीं और उनका साधन सहज है । विशेष रुप से `नामघोषा`में संकेतों का प्रयोग नहीं हुआ है । उनका मार्ग साधना का था जिसे कुछ ही ईश्वर के अन्वेषी दास्य भक्ति `को इतने रहस्य के उच्च स्तर पर उठा सके ।

---

१ - १२६ ,३१२ ,३१३

२ - ३१० ,३३३ ,३३७

३ - एहु रस माधव मुरुख मति गावे । १००१

ग

राम सरस्वती की रचनाएं

असमिया वैष्णव काव्य

राम सरस्वती :- सोलहवीं शती के असमिया कवियों में इनका प्रमुख स्थान है और इनका संबंध नव-वैष्णव आंदोलन से है। इन्होंने संस्कृत महाभारत का रुपांतर असमिया काव्य में किया है जिसमें मूल ग्रंथ की कथा वस्तु के अतिरिक्त अन्य कथाओं का मिश्रण हैं जो असम प्रदेश में प्रचलित थीं। `मणिचंद्र`, `अश्वकर्ण` `सिंधुयात्रा` की कथा असम प्रदेश की सामग्री कही जा सकती हैं क्योंकि मूलग्रंथ में इनका उल्लेख नहीं है। शंकरदेव के शिष्य अनंत कंदलि और महाभारत काव्य के रचयिता राम सरस्वती को अनेक आलोचकों ने एक व्यक्ति माना है। यह विवाद अनेक वर्षों तक चलता रहा। सर्व श्री दीनानाथ बेज बरुआ, गुणभिराम बरुआ, कालिराम शर्मा बरुआ तथा[1] लक्ष्मीनाथ बेजबरुआ और अन्य समालोचकों का मत है कि दोनों वैष्णव कवि एक ही हैं। इनकी रचनाओं की संक्षिप्त व्याख्या यहां दी जाती है।

आदिपर्व :- कोच राजसभा में प्रवेश करने के पूर्व कवि ने इसकी रचना पूर्ण की है क्योंकि इसमें उनके आश्रमदाता का उल्लेख नहीं हुआ है।[2] यह उनके युवावस्था की रचना है। राम सरस्वती के वनपर्व के अंतर्गत अनेक खंड ग्रंथों की रचना हुई है। जधासुलवध में नरनारायण की मृत्यु का स्पष्ट उल्लेख है।[3]

घोषयात्रा तथा [illegible] सिंधु यात्रा जो वनपर्व ग्रंथ के खंड हैं की रचना धर्मनारायण के राजत्व काल में हुई। विराट पर्व, उद्योगपर्व और भीष्म पर्व की रचना इनके जीवन काल में समाप्त हो गई थी। इन रचनाओं के पश्चात जयदेव काव्य की रचना हुई शांतिपर्व में सावित्री की कथा है, [illegible] रचना इनकी अंतिम कृति है।

१- A. E. A. L. पृ० - ४६, ४७

२- वनपर्व -- ११८६ पद०

३- तेंते वैकुंठक पाइला धर्मायिश थाकि गइला बरवनंत महंत सकले

कर्णपर्व, सिंधूरपर्व, व्यासाश्रम, और भीमचरित के रचनाकाल के समय का संकेत नहीं मिलता है। यह कल्पना करना कठिन है कि राम सरस्वती ने सम्पूर्ण महाभारत का असमिया रुपांतर किया। कामसारी ने भी इस ग्रंथ के कतिपय अंशों का रुपांतर काव्य में किया, जिनका मिश्रण विराटपर्व उद्योगपर्व और भीष्मपर्व में हुआ है।[१]

एक मात्र वनपर्व रचना द्वारा कवि ने लोकप्रियता तथा ख्याति प्राप्त की। महाभारत के वनपर्व के अंतर्गत पांडव साधुओं जैसा जीवन व्यतीत करते हैं और किसी विशेष घटना का चित्रणा नहीं हुआ। किन्तु राम सरस्वती कृत वनपर्व में पांडव अनेक प्रकार की विपत्ति और बाधा का दमन करते हुए अभिमान करते हैं। पुष्पहरण, विजयपर्व, मणिचंद्र घोष कालकुंज वध, भोजकूटवध, जंघासुर वध, सिंधुयात्रा, कमलपर्व, पातालपर्व, और घोषयात्रा इस ग्रंथ के खंड हैं कालकिाल वध, वृहद्दवध, हिमसवैवध अभी तक प्राप्त नहीं हो सके। राम सरस्वती ने तीस हज़ार से अधिक पदों की रचना की है। वनपर्व की विषय व्याख्या:- पुष्पहरण:- वनवास में एक बार पांडव सरसों के खेत से चल रहे थे और भीम ने अज्ञानवश इन सरसों के पुष्पों को नष्ट कर दिया। युधिष्ठर ने उन्हें परामर्श दिया कि वे इस खेत के स्वामी की सेवा करके उसके हानि पूर्ति करें इस खेत के स्वामी कालू ब्राह्मण ने इन्हें धान की खेती में लगाया।

<u>मणिचंद्र घोष</u> :- एक दूसरे दिन पांचों पांडव द्रोपदी सहित मवरावि वन से होकर जा रहे थे, उन्हें एक सरोवर के निकट शरण लेनी पड़ी। पुंडरीक सर्प ने भीम को छोड़कर अन्य पांडवों को काटा और वे अचेत हो गए। भीम को यह सूचना प्राप्त हुई कि उनके सब भाई एक मणि के स्पर्श से पुर्नजीवित हो सकते हैं। सर्पराज के राज्य में भीम का अभिमान अत्यन्त उत्तेजक है। भीम को एक पत्नी और मणि प्राप्त होती है, जिसके स्पर्श से द्रोपदी और चार भाई जीवित हो जाते हैं। इस कथा का कुछ अंश मनसा कथा से लिया गया प्रतीत होता है।

१-

विजयपर्व :- इसमें राम सरस्वती ने धृतराष्ट्र की विजयलिप्सा की पूर्ति का वर्णन किया है। विष्णु के भक्त विदुर ने त्रिसिरा दैत्य का संहार किया

कालकुंजवध :- म्लेच्छों के शासक कालकुंज ने पांचों पांडवों की हत्या की, द्रोपदी ने उसके सैनिकों के साथ युद्ध किया। इन्द्र की कृपा से पांडव जीवित हो गए और म्लेच्छ पराजित हुए।

बघासुर वध :- द्रोपदी ने गौरी की उपासना की और देवी ने अचल सौभाग्य वरदान दिया। अगस्ति ऋषि ने पांडवों वे को आदेश दिया कि बघासुर का वध करें पांडवों ने असुरों से युद्ध करना स्वीकार किया और द्रोपदी को एक ऐसा हार दिया गया जो मृतकों को प्राणदान दे सकता था। बघासुर का मस्तक व्याघ्र का था, उसे महादेव तथा चंडी से आशीर्वाद प्राप्त किया था। भीषण संग्राम में युधिष्ठर के अतिरिक्त सभी पांडव मारे गए, द्रोपदी के हार के स्पर्श से सभी पांडव जीवित हुए- भीम ने बघासुर का वध किया।

महिषदानव वध :- महिषदानव के पिता ब्राह्मण और माता भैंस थी। अर्जुन ने तीन दिन के युद्ध के पश्चात वध किया और उसके पेट से भीम को निकाला।

विहंगम-मोक्ष :- देवताओं ने एक गंधर्व को अभद्र व्यवहार के कारण शाप दिया कि वह पक्षी हो जाय और वनवास में जब पांडव उसका वध करेंगे उसकी शाप मुक्ति होगी। इस पक्षी ने अपने पंख फैला कर द्रोपदी को पकड़ लिया अर्जुन ने इसे मार डाला।

खटासुर वध :- द्रोपदी को अकेले कुटी में देख कर इस राक्षस ने उससे विवाह प्रस्ताव किया कि वह दरिद्र पतियों का परित्याग कर उसकी पत्नी होना स्वीकार करे।

द्रोपदी की दृढ़ता देख कर राक्षस ने कुटी को गिरा दिया और द्रोपदी को खींचने लगा। पांचों पांडव पराजित हुए- द्रोपदी ने कृष्ण से प्रार्थना की। इनको आदेशानुसार द्रोपदी ने कंकण द्वारा दानव का स्पर्श किया, वह मर गया ।

अश्वकर्णवध :- एक दिन भीम और अर्जुन एक कुएं में जल में देख रहे थे, नीचे एक सुंदरी दिखाई पड़ी। उसने बाहर निकालने की प्रार्थना की। भीम को कुछ संदेह था पर अन्त में दोनों ने उसकी रक्षा का निर्णय किया। भीम ने धनुष का एक भाग नीचे कर के उसको उठाना चाहा पर वे नीचे खींच लिए गए, अर्जुन ने भाई की रक्षा करना चाहा किन्तु दोनों भाई पाताल ले जाए गए। राजा उषिनार की पुत्री शिव तथा के वरदान से अत्यन्त सुन्दर रुपवती थी। अश्वकर्ण राक्षस ने उसके पिता का अंत किया। अर्जुन ने हेमा के पिता के शत्रु अश्वकर्ण की हत्या कर उसके साथ विवाह किया ।

जंघासुरवध :- शिव के अनन्य उपासक जंघासुर दैत्य ने भीम को एक बार बंदी बनाया भीम की प्रार्थना पर कृष्ण ने भीम की रक्षा के लिए गरुण भेजा । अंत में असुर पराजित हुआ ।

कुलाचलवध :- पांडव अज्ञात वास कर रहे थे, एक दिन घूमते हुए वे एक महात्मा के कुटी के समीप पहुंचे। साधु इनका स्वागत कर आदर सत्कार किया और यह प्रार्थना की कि आप लोग इस वन में प्रवेश न करें क्योंकि धूमराक्षस अथवा कुलाचल दैत्य इस राज्य का अधिपति है जो साधु-संतों को सदैव दारुण दुख देता है। धूमराक्षस के पिता परम वैष्णव थे किन्तु वह वैष्णवों का दमन करता था । ऋषि के शाप से धूमराक्षस का सिर बकरी का सिर हो गया और उसके पिता और सैनिकगण पाषाण की शिला हो गए। एक दिन कुलाचल के सैनिकों और पांडवों से भीषण युद्ध हुआ युधिष्ठिर के अतिरिक्त

चारों पांडव युद्ध में मारे गए कृष्ण स्वयं युधिष्ठिर की सहायता के लिए आए। मोक्ष के लिए कुलाचल कृष्ण के चरणों पर गिर गया । कृष्ण के पद-रज स्पर्श होते ही वह अपने समस्त सैनिकों समेत वैकुंठ गामी हुआ ।

सिंधु यात्रा :- धर्मक्षेत्र के समीप पांडव एक कुटी में निवास कर रहे थे, सिंधूरा यज्ञ कर रहा था । नवग्रह और विष्णु की पूजा हो रही थी अनेक दरिद्रों ने पांडवों की कुटी के निकट के कुछ वृक्ष तोड़ दिये । इस पर दोनों पक्षों में संघर्ष हुई। जिस समय अर्जुन कुछ दूर युद्ध कर रहे थे, राजा के महारथियों ने चारों पांडवों की हत्या की । अर्जुन ने कालकेतु सहित अनेक योद्धाओं को पराजित किया । अर्जुन और सिंधूरा में ग्यारह दिन तक युद्ध चलता रहा । अंत में देवताओं के हस्तक्षेप द्वारा द्वंद्व युद्ध समाप्त हुआ । चंद्र और कुमारी कुंती के गर्भ से सिंधूरा का जन्म हुआ था--- माता ने भय के कारण नवजात शिशु को सागर में बहा दिया, सुरविंद राजा ने यस शिशु का पालन पोषण कर उसे अपने राज्य का उत्तराधिकारी नियुक्त किया ।

रामसरस्वती के समस्त काव्य की नायक-नायिकाएं परम वैष्णव है । भागवत पुराण की कथा का वर्णन अनेक काव्यों में हुआ है। भागवत के कुछ श्लोकों का अन्वय कवि ने असमिया में किया है। यथा:-

हेनतो ईश्वर कृष्णदेव सनातन
शत्रुभावे मुक्त होवे करिया श्रवण
प्रेमभाव स्मरण कि कहबो महत्त्व

- कुलाचलवध पृ० ४०४

देखा केन हरि भकतिर महत्त्वक
येमने तेमने मात्र स्मरोक कृष्णक
वैरभावे भायमाने येमने तेमने
प्रेम भजनीर सीमा कहिबेका कोने

- कुलाचल वध पृ० ३६२

रामसरस्वती ने अपनी रचनाओं में कृष्ण और अर्जुन को नारायण और नर के रूप में चित्रित किया है :-

देवकीर गर्भे नारायण अवतार
कुंतिर गर्भत भरि नरर विहार
--- वनपर्व- प्रथम भाग

हिन्दी वैष्णव काव्य

सूरदास की रचनाएं :सं० १५३५-१६३९: डा० ब्रजेश्वर वर्मा केवल सूरसागर को प्रामाणिक रचना मानते हैं डा० मुंशीराम शर्मा, डा० दीनदयाल गुप्त तथा प्रभुदयाल मीतल सूरसारावली और साहित्य लहरी को सूर की कृति मानते हैं। हिन्दी के बहुत से विद्वान साहित्य लहरी तथा सूरसारावली को सूरदास की रचना मानते हैं। जब तक इन रचनाओं को अप्रामाणिक सिद्ध नहीं कर दिया जाता है, इन पर विचार करना समीचीन होगा।

सूरसागर :- विद्वानों के मतानुसार सूरसागर सूरदास की प्रामाणिक रचना है, इसके विभिन्न खंडों के पदों द्वारा कई स्वतंत्र रचनाओं की सृष्टि हुई जो आज भी विवादास्पद हैं। भागवत पुराण की समस्त कृष्णलीला का वर्णन इस ग्रंथ में हुआ है कहीं कहीं

भागवत पुराण- सप्तम - १,२९
वही - दशम - २९-१५

एक कथा का वर्णन एक से अधिक बार हुआ है। अन्य पुराणों की कथाओं का समावेश भी इस ग्रंथ में हुआ है। डा० दीनदयालु गुप्त सूरसागर के अंतर्गत निम्नलिखित सोलह रचनाओं को प्रामाणिक मानते हैं :---

१- भागवत भाषा	९- दशम स्कंध भाषा
२- सूरदास के पद	१०- नागलीला
३- गोवर्धन लीला	११- सूरपचीसी
४- व्याहलो	१२- भंवरगीत
५- सूर रामायण	१३- दानलीला
६- सूर साठी	१४- मानलीला
७- राधारस केलि कौतुहल	१५- सेवाफल
८- सूरसागरसार	१६- सूरशतक

सूरसागर का प्रथम और दशम का पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध आकार की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। संप्रति उपलब्ध सूरसागर में द्वादश स्कंध हैं और सम्पूर्ण पद संख्या ४५७८ है। वेंकटेश्वर प्रेस बंबई, नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ, और नागरीप्रचारिणी सभा काशी से सूरसागर का प्रकाशन हुआ । प्रथम दो प्रेसों के संस्करण में अष्टछापी सूरदास के पदों के अतिरिक्त अन्य कवियों के पद भी सूरसागर में प्रकाशित हुए हैं।

सूरसारावली :- इसमें सूरसागर तथा भागवत की कथा का मिश्रण हुआ है, और यह स्वतंत्र रचना है। पर ब्रह्म की सृष्टि विस्तार आदि का चित्रण मनोहर रूपकों द्वारा प्रकाशित किया गया है। नवीन कल्पनाओं के संयोग से कृष्ण की मधुरालीला का आकर्षक वर्णन किया गया है। यह ११०७ द्विपद छंदों में पूर्ण हुई है।

साहित्यलहरी :- यह ११८ पदों का संग्रह है जिसमें राधा कृष्ण नायिका और नायक के रुप में अंकित किये गए हैं। यह खड्गविलास प्रेस,बांकीपुर से प्रकाशित से प्रकाशित हो चुकी है।

नंददास की रचनाएं :- :सं०१५७०-१६४०: उनकी रचनाओं के संबंध में पर्याप्त खोज की जा चुकी है। डा० दीनदयालु गुप्त के अनुसार निम्नलिखित १४ रचनाएं प्रामाणिक हैं :-

१- रस मंजरी
२- अनेकार्थ मंजरी
३- मान मंजरी
४- दशम स्कंध
५- श्याम सगाई
६- गोवर्धन लीला
७- सुदामा चरित्र
८- विरह मंजरी
९- रुप मंजरी
१० - रुक्मिणी मंगल
११- रासपंचाध्यायी
१२- भंवरगीत
१३- सिद्धान्त पंचाध्यायी
१४- पदावली

पं० उमाशंकर शुक्ल गोवर्धन लीला को स्वतंत्र रचना नहीं मानते और सुदामा चरित भी अप्रामाणिक रचना जान पड़ती है। गोवर्धन लीला और दशम स्कंध में अधिक साम्य होते हुए भी इसे स्वतंत्र रचना माना जा सकता है। पदावली के आकार और पदसंख्या के संबंध में विद्वानों में मतभेद है। प्रभुदयाल मीतल के मतानुसार पदावली में ४०० पद प्राप्त होते हैं। पं० उमाशंकर शुक्ल ने पदावली के पदों की संख्या २८३ ही दी है।

दशम स्कंध :- यह ग्रंथ श्रीमदभागवत का अक्षरश: अनुवाद नहीं है।[1] कवि ने श्रीमदभागवत की टीकाओं का भाव लेकर ग्रंथ को रचा है। यह ग्रंथ काव्य की दृष्टि से उतना उत्कृष्ट नहीं है जितना कवि की रास पंचाध्यायी है। फिर भी इसमें अनेक स्थानों पर वर्णन बहुत सजीव हुए हैं। रास पंचाध्यायी की भांति इस ग्रंथ में भी कवि ने अपने भावों को तीव्र और स्पष्ट करने के लिए अलंकारों का प्रयोग किया है,काव्य की दृष्टि से नंददास का यह ग्रंथ महत्वशाली नहीं है,एक साधारण कोटि की रचना है।[2]

श्याम सगाई :- काव्य की दृष्टि से यह उत्कृष्ट रचना नहीं कही जा सकती है। इसमें राधा अपनी सखियों से कहलाती है कि मुझे काले सर्प ने काट लिया है। यशोदा ने

१-

२- स०व० सं० -- पृ० ७८०

कृष्ण को विष उतारने के लिये बुलवाया, अंत में कृष्ण राधा के घर गए। वहाँ जाकर राधा का विष उतार कर उन्हें स्वस्थ किया। कीर्ति ने राधा की सगाई कृष्ण के साथ कर दी। डा० दीनदयालु गुप्त के अनुसार यह कवि की कोई स्वतंत्र रचना नहीं है। इसमें कवि ने आरंभ में न कोई वंदना दी है और न अंत में लीला माहात्म्य ही है जैसा कि कवि ने अन्य स्वतंत्र ग्रंथों में किया है।[1]

गोवर्धन लीला :- नंददास ने श्रीमदभागवत में वर्णित कृष्ण लीलाओं में से इस प्रसंग को लेकर एक छोटी सी रचना की है। ग्रंथ के आरंभ में गुरु की वंदना की गई है और अंत में कृष्णलीला रति की इच्छा कवि ने व्यक्त की है। यह संक्षिप्त वर्णनात्मक रचना है।[2]

सुदामाचरित :- नंददास की इस रचना का उद्देश्य कृष्ण की भक्तवत्सलता, दीन प्रतिपालकता और मैत्री निर्वाह भावादि का दिखाना है। नंददास कृत सुदामा चरित बहुत साधारण रचना है। डा० दीनदयालु गुप्त का मत है कि संभव है यह रचना नंददास की आरंभिक रचना हो।[3]

विरहमंजरी :- इस ग्रंथ में नंददास ने चार प्रकार के विरह की व्याख्या की है-- :१: प्रत्यक्ष, :२: पलकांतर :३: वनांतर :४: देशांतर। बारहमासे में कवि ने विरह की दयनीय दशा का चित्रण किया है। नंददास ने प्रकृति के व्यापार और वस्तुओं को विरहिणी ब्रजबाला की विरह विकलता का उद्दीपन बताया है।

रूपमंजरी :- सुंदरी रूपमंजरी निर्भयपुर के नरेश की पुत्री थी। माता-पिता ने एक ब्राह्मण को उसके अनुरुप वर खोजने का कार्य सौंपा किन्तु उसने लोभ वश अयोग्य वर से उसका विवाह करा दिया। रूपमंजरी ने गोवर्धन पर्वत और स्वप्न में कृष्ण का दर्शन किया। कृष्ण प्रेम में उन्मक्त इंदुमती तथा रूपमंजरी ब्रज-कानन में जा पहुंची, यहीं उन्हें कृष्ण के रास का आनन्द प्राप्त हुआ ।

१- वही - पृ० ७८२

२- [illegible]

३- अ०व० सं० -- पृ० ७८६

रुक्मिणी मंगल : इस रचना की कथा श्रीमदभागवत के दशम स्कंध के उत्तरार्द्ध के ५२,५३ और ५४ वें अध्यायों में रुक्मिणी हरण और उसके साथ कृष्ण के विवाह की कथा से ली गई है। राजा भीष्मक की पुत्री रुक्मिणी कृष्ण को पति रुप में वरण करना चाहती थी किन्तु उसका भाई रुक्म शिशुपाल के साथ रुक्मिणी का विवाह करना चाहता था रुक्मिणी ने कृष्ण को एक पत्रिका ब्राह्मण के हाथ भेजी,इसमें हरण विधि का भी उल्लेख था कृष्ण विप्र के साथ कुंडिनपुर पहुंचे। गौरी पूजन के पश्चात कृष्ण ने रुक्मिणी को अपने रथ पर बैठा लिया। इस समय उपस्थित नरेशों ने कृष्ण पर आक्रमण किया,अंत में वे पराजित हुए। नंददास ने युद्ध का वर्णन तीन रोला[१] छंदों में समाप्त कर दिया है और कृष्ण के विवाह का वर्णन किया ही नहीं है।

रासपंचाध्यायी :- इस रचना में गोपी-कृष्ण की रासलीला का वर्णन पांच अध्याय में चित्रित किया गया है। ३०९ रोला छंदों में रास का विशद चित्रण प्रस्तुत किया नंददास के काव्य का आधार भागवत किन्तु यह उसका अनुवाद नहीं है। यह नंददास की प्रसिद्ध कृति है।

भंवरगीत :- नंददास की यह रचना भागवत के ४७ वें अध्याय के तीसरे श्लोक से आरंभ होती है। गोपियों ने उद्धव का समुचित आदर सत्कार किया और उनके आने का कारणों का अनुमान किया। श्रीमदभागवत में गोपी- उद्धव के कुशल क्षेम के पश्चात भ्रमर का आगमन होता है। नंददास ने नवीन प्रसंग का योग कर कुछ प्रसंगों[२] में परिवर्तन किया है,जिससे उनकी व्यंजना में मौलिकता का सा आनन्द आता है। इस रचना के आरंभ में न वंदना है न भूमिका जिससे यह प्रकट होता है कि कदाचित यह किसी वृहत रचना का अंश हो । ७५ छंदों में गोपी- उद्धव संवाद समाप्त हुआ है।

सिद्धांत पंचाध्यायी :- इसका विषय कृष्ण की रास लीला ही है। इस ग्रंथ में नंददास ने कृष्ण,वेणु,गोपी और रास की आध्यात्मिक व्याख्या की है रास का सैद्धांतिक विवेचन १३८ रोला छंदों में हुआ है। जो लोग रासलीला पर अश्लीलता का दोषारोपण करते हैं,नंददास ने इस ग्रंथ की रचना कर रास की दिव्यता प्रकट की है।

१- अ० व० सं० ---- पृ० ८९६

२- अ० व० सं० ---- पृ० ८४०

नंददास कहते हैं जो लोग इसमें दिव्यता शृंगार-कथा का आरोप करते हैं, वे वास्तव में कृष्ण के स्वरुप को तथा कृष्ण भक्ति में माधुर्य भाव के रहस्य को नहीं जानते हैं।[१]

पदावली :- इस रचना के अंतर्गत कृष्ण जन्म बधाई, हिंडोला, खंडिताभाव, रुप वर्णन मल्हार तथा वसंत होली का सुन्दर वर्णन हुआ है। होली वसंत के वर्णन में कवि ने राधा और कृष्ण की होली तथा उनकी संयोग लीला के चित्रण बहुत तल्लीनता के साथ किया है। नंददास ने जन्म लीला संबंधी कोई स्वतंत्र रचना नहीं की है किंतु राधा और कृष्ण जन्म की कवि द्वारा लिखित अनेक बधाइयां वर्षोत्सव कीर्तन संग्रहों में उपलब्ध हैं।[२]

कुंभनदास की रचनाएं :सं०१५२५-१६३६: केवल दान लीला जो ३१ विस्तृत छंदों की रचना है का प्रकाशन हुआ है। इनका सम्पूर्ण काव्य स्फुट पदों में प्राप्त होता है। डा० दीनदयालु गुप्त को विद्याविभाग कांकरौली में इनके १८६ पदों का संग्रह प्राप्त हुआ है और नाथद्वार के निज पुस्तकालय में ३६७ पदों का संग्रह मिला है।[३] कुंभनदास ने दानलीला, युगलस्वरुप, मिलन, विरह, मान खंडिता तथा रास आदि विषयों पर पदों की रचना की है।

कृष्णदास की रचनाएं :१५५२-१६३८: इनके स्फुट पद ही इनकी प्रामाणिक रचना स्वीकार किये जाते हैं। इनकी ६७६ पदों के हस्तलिखित संग्रह की दो प्रतियां एक कांकरौली तथा एक नाथ द्वार में प्राप्त हुई है। कुछ अन्य संग्रहों में इनके पद दिखाई देते हैं।[४] भ्रमरगीत, प्रेमतत्व निरुपिता तथा वैष्णव वंदना को डा० दीनदयालु गुप्त ने संदिग्ध रचना माना है। प्रेमरसरास में ३१ छंदों में रास का वर्णन है। प्रभुदयाल मीतल

१- जे पंडित शृंगार ग्रंथ मत यामें साने ।
ते कछु भेद न जाने हरि को विषई माने ।
---सिद्धान्त पंचाध्यायी--शुक्ल पृ० १८६-१८७

२- अ०व० सं०२ -- पृ० ८७०

ने भ्रमरगीत प्रेम तत्व निरुपण, भक्तमाल की टीका, वैष्णव वंदना, बानी, प्रेम, रत्नराशि, हिंडोरा लीला आदि को इनकी रचना स्वीकार किया है।

गोविंद स्वामी की रचनाएं :सं०१५६२-१६४२: इनके पदों की कई हस्तलिखित प्रतियां कांकरौली तथा नाथद्वार के निजी पुस्तकालय में उपलब्ध हैं, इनमें संग्रहीत पदों की संख्या लगभग २५२ है। गोविंदस्वामी के पदों का संग्रह अनेक हस्तलिखित प्रतियों के आधार पर कांकरौली में किया गया है, उसकी पद संख्या ७५० है, इनमें से कुछ पद प्रक्षिप्त कहे जा सकते हैं। कुंजलीला तथा किशोर लीला संबंधी पदों की संख्या इन संग्रहों में अधिक हैं।

छीतस्वमी की रचनाएं :सं०१५६७-१६४२: इनकी रचना के रुप में कुछ स्फुट पद प्राप्त होते हैं। डा० दीनदयालु गुप्त ने वल्लभ संप्रदायी मुद्रित कीर्तन संग्रहों के आधार पर इनके पदों की संख्या ६४ स्वीकार की है। प्रभुदयाल मीतल इनके रचित पदों की संख्या २०० मानते हैं जिनका प्रकाशन कीर्तन संग्रहों में हुआ है। विभिन्न हस्तलिखित प्रतियों के आधार पर हजारीलाल शर्मा ने इनके पदों का संग्रह किया है जिनकी संख्या २३२ है। कृष्ण की नाना लीलाओं का चित्रण इन पदों में हुआ है। दान, मान, संयोग, बाललीला आदि विषयों के अधिक पद मिलते हैं।

परमानंददास की रचनाएं :सं०१५५०-१६४०: परमानंदसागर ही परमानंद की प्रामाणिक रचना है, ध्रुव चरित्र और दानलीला भी इनकी रचनाएं कही जाती हैं किन्तु अभी तक इनकी प्रामाणिकता सिद्ध नहीं हुई है। प्रभुदयाल मीतल ने इनके दो और ग्रंथ उद्धव लीला तथा संस्कृत रत्नमाला का उल्लेख किया है किन्तु उन्होंने इन ग्रंथों की प्रामाणिकता सिद्ध नहीं की है। नाथ द्वार तथा कांकरौली में प्राप्त परमानंदसागर के पदों की संख्या २००० तक है। दशम स्कंध भागवत के प्रसंगों का आकर्षक वर्णन परमानंदसागर में हुआ है। परमानंद ने अपने काव्य का विषय कृष्ण की प्रेमपूर्ण रसवती व्रजलीलाओं को ही बनाया है, कृष्ण चरित्र के राक्षस वध को छोड़ दिया

है। बाललीला,गोचारण,वनक्रीड़ा,पनघट लीला,रास निकुंज लीला,राधा कृष्ण की युगल लीला के श्रृंगारिक चित्र,खंडिता गोपी विरह आदि विषयों पर अधिक पद प्राप्त होते हैं।

चतुर्भुज दास की रचनाएं :- :सं०१५९७-१६४२: विद्याविभाग कांकरौली के अंतर्गत हजारी लाल शर्मा ने चतुर्भुजदास के पदों का संग्रह किया है,इन पदों की संख्या ४३६ है। डा० दीनदयालु गुप्त ने इनके कई हस्तलिखित पदसंग्रहों का उल्लेख किया है,जिनके पदों की संख्या लगभग ३०० है। डा० गुप्त ने इनकी कृति दानलीला को प्रामाणिक रचना स्वीकार किया है,वस्तुत: यह एक लंबा पद मात्र है। मधुमालती,भक्तिप्रताप 'द्वादश-यश',तथा 'हितूज को मंगल'भी इनकी रचनाएं कही जाती हैं किन्तु इनके रचयिता राधावल्लभ संप्रदाय के चतुर्भुजदास हैं।

हितहरिवंश की वाणी :- इनकी दो रचनाएं श्रीहित चौरासी तथा श्रीहित स्फुटवाणी जी का प्रकाशन हो चुका है। हितचौरासी जैसा नाम से प्रकट है ८४ पदों का संग्रह है, राधा कृष्ण के अनुराग,संभोग,कुंजक्रीड़ा रास,मान,नखशिख आदि का वर्णन इन पदों में हुआ है। आसामिया महापुरुषिया संप्रदाय में जिस प्रकार कीर्तन की उपासना की जाती है उसी प्रकार इस रचना का पूजन राधावल्लभीय संप्रदाय में होता है। स्फुटवाणी कवि की प्रारंभिक रचना ज्ञात होती है,इसमें १५ पद ,३ सवैये,२ कुंडलियां,२ छप्पय १ अरिल,कुल २३ मुक्तक पद संग्रहीत हैं।

सेवक जी की वाणी :- सेवक जी के वाणी का विषय मुख्य रूप से अपने गुरु हितहरिवंश की प्रशस्ति है,'हित रसरीति प्रकरण'तथा 'श्रीहितभक्तभजन प्रकरण'में राधाकृष्ण की निकुंज लीला का वर्णन मिलता है। मिश्रबंधुओं ने इनकी रचना 'भक्ति पदावली मंगल'का उल्लेख किया है किन्तु यह रचना अभी तक प्राप्त न हुई। इनके मुक्तक पदों की संख्या लगभग २०० है।

व्यास जी की वाणी :जन्म से १५६७: हरिराम व्यास हितहरिवंश के प्रमुख शिष्य थे तथा ओड़छा नरेश मधुकर शाह के गुरु भी थे । इनकी तीन हस्तप्रतियों के आधार पर इनकी समस्त रचना का प्रकाशन दो भागों में हुआ है जिनके पदों की संख्या ७५६ है इसके अतिरिक्त १४६ साखियां और दोहे भी हैं।

सिद्धांत रस के पद :- व्यास जी ने प्रारंभ में वृंदावन, मथुरा, यमुना, नामरूप की स्तुति तथा गुरुमहिमा का वर्णन किया है, इसके अंतर्गत सभी पद सिद्धांत परक नहीं है। कवि ने `साधुन की स्तुति`` में प्रख्यात भक्तों का यशगान मात्र किया है। वंदना, विरह, भक्ति ज्ञान आदि के पदों द्वारा युगल रुप की उपासना की पुष्टि होती है।

रसविहार के पद :- राधा कृष्ण की युगललीला कुंजविहार, शय्याविहार, जलक्रीड़ा, षटऋतुरास, षोडशश्रृंगार, नखसिखमान भोजन विलास, हिंडोला आदि का वर्णन इन पदों में हुआ है। इनकी रास पंचाध्यायी में राधा रास का वर्णन है जो भागवत में नहीं मिलताहै। कुछ पदों में खंडिता का भाव भी प्रकट हुआ है।

गदाधर भट्ट की वाणी :- रामचंद्र शुक्ल के मतानुसार इनका कविताकाल सं० १५८०-१६ के बाद है। गदाधर की `मोहिनी वाणी` में कुछ संस्कृत के पद और वृंदावन की प्रशंसा में लिखे ५४ रोला छंद हैं जिसका प्रकाशन हो चुका है। इस संग्रह के कुल पदों की संख्या ८० के लगभग है। अष्टछाप के कवियों की भांति भट्ट जी ने भी कृष्ण की बाल लीला के विविध प्रसंगों पर पद लिखा है। राधा कृष्ण के रास, विलास, संयोग मान आदि का व वर्णन अनेक पदों में मिलता है। कतिपय पदों में उन्होंने दैन्य भाव भी प्रकट किया है।

सूरदास मदनमोहन की वाणी :- इनकी एक मात्र रचना `सुहृतगी` का प्रकाशन हो चुका है जिसमें १०५ स्फुट पद संग्रहीत हैं। कृष्ण की बाललीला, मुरली वादन, रास, खंडिता, होली, श्रृंगार हिंडोला आदि ही इनके काव्य के विषय हैं। राधा-कृष्ण के नखशिख, कुंजविलास का मनोरम चित्रण इनके पदों में हुआ है।

श्रीभट्ट की रचना :- राधा कृष्ण के युगलरूप का चित्रण `जुगलसत` में हुआ, कुल पदों की संख्या १०० है यह रचना के नाम से ही प्रकट है। प्रत्येक पद के साथ एक दोहा भी

युक्त है,जो इन पदों का संक्षेप रूप मात्र कहा जा सकता है। श्रीभट्ट एक सहस्त्र पदों के निर्माता कहे जाते हैं किन्तु `युगलशत`के अतिरिक्त अन्य रचना प्राप्त नहीं होती है।

<u>हरिव्यास की रचना :-</u> इनकी एक मात्र रचना महावाणी ही उपलब्ध है जो `युगलशत`की टीका कही जाती है। सेवा,उत्साह,सुरत,सहज सिद्धांत- ये पांच महा सुख हैं। अष्टयाम सेवा का वर्णन सेवा सुख में है। सिद्धांत सुख में सखीनामावली तथा महावाणी के गूढ़ विषयों का परिचय है। उत्साह सुख और सहज सुख में संभोग शृंगार का उदय विकास एवं पर्यवसान अंकित हुआ है। इनकी महावाणी का विस्तार सीमित है।

<u>परशुराम देव की रचना :-</u> इनकी कृति `परशुरामसागर`अभी तक प्रकाशित नहीं हुई है निम्बार्कमाधुरी`में इस काव्य का कुछ अंश प्रकाशित हुआ है,जिससे यह प्रकट होता है कि इसमें बाइस सौ दोहा छप्पै,छंद और सहस्त्रों पद हैं,ये सभी ज्ञान,वैराग्य गुरुनिष्ठा,प्रेमसंबंधी तथा उपदेशात्मक हैं। निम्बार्कमाधुरी में प्रकाशित पदों में शृंगार विषयक पदों का अभाव है।

<u>स्वामी हरिदास की रचना :-</u> इनका कविता काल सं० १६००-१६१७ के लगभग माना जाता है। पं० रामचंद्र शुक्ल ने इनकी तीन रचनाओं `हरिदास जी को ग्रंथ`,`स्वामी-हरिदास जी के पद` `हरिदास जी की बानी`का उल्लेख किया है। <u>डा० रामकुमार वर्मा के अनुसार अनेक संग्रह</u> प्राप्त हैं हरिदास जी की बानी और `हरिदास जी के पद`इनकी प्रमुख रचनाएं हैं। पदावली के रूप में इनकी दो रचनाएं उपलब्ध हैं,प्रथम रचना में सिद्धांत के १८ पद हैं और द्वितीय केलिमाल में राधाकृष्ण के नित्यविहार,नखशिख, मान,दान,होरी तथा रास आदि विषयों पर १०८ पद हैं।

<u>विट्ठलविपुलदेव की रचनाएं :-</u> इनके फुटकर केवल चालीस पद प्राप्त होते हैं,इन पदों का विषय राधाकृष्ण का नित्यविहार है। निम्बार्क माधुरी में ३६ पद प्रकाशित हो चुके हैं।

विहारिनदेव की रचनाएं :- इनके द्वारा विरचित ७०० दोहे और लगभग ३०० पद उपलब्ध हैं। भक्ति,ज्ञान,वैराग्य,नीति,उपदेश आचार्य निष्ठा,,शृंगार आदि विविध विषयों पर काव्य रचना हुई है। इनके ६० पद निम्बार्क माधुरी में प्रकाशित हुए हैं।

मीरा की रचनाएं :- इनके स्फुट पदों के कई प्रामाणिक संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं जिनमें परशुराम चतुर्वेदी का मीराबाई की पदावली,महावीर सिंह गहलौत का 'मीरा जीवनी और काव्य' विशेष महत्व के हैं। मीरा के पदों का विषय उनका कृष्ण के प्रति प्रेम,विरह,मिलन,आत्मनिवेदन आदि हैं,इनमें निर्गुण तथा सगुण भक्तिपरक काव्य भी व्यंजित हुए हैं।

चतुर्थ अध्याय

प्रस्तुत अध्याय में विनय, वंदना, तथा श्रीकृष्ण की अनेक लीलाओं का तुलनात्मक अध्ययन अंकित किया गया है। प्रभु का नाम स्मरण भक्त की दीनता, इष्टदेव की महत्ता, उद्धार की प्रार्थना, वंदना आदि समस्त विषयों पर प्राप्त असमिया तथा हिंदी वैष्णव काव्य की समानता पर विचार किया गया है। श्रीकृष्ण की लीलाओं के तीन भाग व्रजलीला, मथुरा लीला तथा द्वारका लीला किए गए हैं, दोनों भाषाओं में प्राप्त विविध लीलाओं की तुलना इस अध्याय में की गयी है।

विनय- वंदना- लीला गान

विनय - वंदना -- लीला गान

१ नाम स्मरण :- नाम स्मरण कर भक्त मोक्ष की कामना करता है । शंकरदेव कहते हैं -- राम नाम का उच्चारण करो,इसी से भव वैतरणी सुख से पार कर सकते हो,नाम के समान अन्य कुछ भी नहीं है- नाम उच्चारण सिंह के शब्द से अधिक भयंकर है,इससे पाप रूपी हाथी भयभीत हो जाता है । बोलने में एक बार बोलते हैं पर सुनने में यह सैकड़ों सुनाई देता है,यह नाम का विपरीत है,मुख से राम नाम बोलो- धर्म,अर्थ,काम तथा मोक्ष सुख से प्राप्त कर सकोगे सबसे अधिक परम सुहृद राम नाम है, इसका स्मरण मात्र करने से यम का भय नहीं लगता है । नारद,शुकमुनि ने नाम के अतिरि अतिरिक्त किसी और गति को नहीं कहा है । अत: सारतत्व राम नाम को ग्रहण कर मायायुक्त विधियों का त्याग करो[१] । मेरे मन परमानंद के पद मकरंद की सेवा करो उसके अतिरिक्त अन्य कोई भाव ताप मुक्त नहीं कर सकता है--- तीर्थ,व्रत,तप,जप,योग तथा मंत्र इत्यादि धर्म कर्म से मुक्ति की प्राप्ति नहीं होती । मेरे अंधे मन माता-पिता पत्नी-पुत्र के मायापाश का त्याग कर हरि चरणों को पकड़,और गोविंद के नाम का जप कर[२] । कमल नयन का चित्त से चिंतन करो राम नाम न बोल कहां मर रहे हो । राम नाम के अमिय को छोड़ तुम शूकर की भांति विष्ठा अर्थात भोगों में लगे हो। धन, जीवन,यौवन तथा पुत्र परिवार सभी क्षण भंगुर हैं और यह सब भक्ति विरोधी[३] माया के विषय हैं । शंकर कहते हैं कि हरि भक्ति बिना उद्धार पाना असंभव है । मेरे मन तुम राम को विषयों के मोह में पड़ भूल गया है । राम चरण का चित्त से चिंतन करो- यही एक मात्र साधन मोक्ष प्राप्त करने का है । उसी का जीवन सफल है जो नित्य राम नाम का जप करता है और जो कीट की भांति विषयों में लिप्त हैं,उसका जीवन किस काम का है । पापियों ने भी प्रभु की[४] सेवा कर शुभ गति लाभ की । शंकर कहते हैं कि उस हरि की मर्मनि भक्ति क्यों न करें । राम नाम में ही निखिल पुण्य है,ऐसा निगम का मत

१- शंकरदेव -- बरगीत ८ पृष्ठा ६

२- वही -- वही ९ पृष्ठ १०

३- वही --- ११ पृ० ११

४- वही १२ पृ० १२

है । वेदों,शास्त्रों में यह पढ़कर भी इसका मर्म न जाना कि कलियुग का परम धर्म हरि नाम है । कृष्ण किंकर कहते हैं कि यह देह क्षण भंगुर है,तुम नर तन पुन: न पाओगे अत: कर्म के सब गर्व को छोड़ हरि के युगल चरणों का चित्त से चिंतन करो[1] । पामर मन राम-चरणों में अपना मन लगाओ-- जीवन अस्थिर है,माधव के नाम राम का संबल ले संसार पार करो । रात दिन आयु क्षीण होती जा रही है और अंत निकट आ रहा है कब मृत्यु होगी यह कोई नहीं जानता-- मानस पशु आशा के पाश में बार बार बंदी होता है । हरि भक्ति के बिना कोई अन्य भव कारागार से मुक्ति नहीं दिला सकता है, अत: रात दिन परम प्रभु राम की सेवा करो । कृष्ण किंकर कहतेहैं राम नाम परम धर्म मरने के उपरांत भी संग नहीं छोड़ता[2] ।

माधव देव कहते हैं "रे मन अपनी मृत्यु निकट जान कर हरि के चरणों की सेवा करो-- देखो हरि के चरण के अतिरिक्त अन्य कोई भव से पार नहीं कर सकता है । चार वेद,पुराण,भागवत गीता आदि सभी कहते हैं कि हरि के बिना और कोई तारक नहीं है । सनक सनातन,मुनि शुक,नारद,ब्रह्मा तथा महेश हरि के गुण का गान करते हैं । कृष्ण का नाम अमिय रस के सदृश है,इसका गान करने से मुक्ति मिलती है परम मंदमति,मूर्ख माधव दीन शंकर गुरु का उपदेश कह रहा है[3] । भाई ! राम नाम का जप करो इस कलिकाल में और गति नहीं है । जिसके मुख से राम नाम का शब्द निकलता है मैं उसके पैरों की धूलि अपने माथे पर लगाता हूं । राम चरणों की जो उपासना करता है,मैं उसके दास का दास हूं । माधव दास कहते हैं कि मन भक्तों की चरण रज स्पर्श कर[4] । मेरे बंधु मन गोविंद का चिंतन कर --हृदय पंकज में राम गोसाइ निवास करें -- कोटि कल्पतरु के तुल्य काम पूर्ण करने वाले प्रभु मेरे हृदय में वास करो-- माधव दीन कहते हैं कि राम बिना और मेरा कोई बंधु नहीं है[5] । मैं राम के पदों की सेवा करता हूं अन्य

१- वही १३ पृ० १३

२- वही १६ पृ० १८

३- माधवदेव -बर गीत १

४- वही ४ पृ० ३

५- वही ५

की पूजा क्यों करूं -- राम घट घट व्यापी है -- राम के अतिरिक्त आत्मा नहीं है -- चैतन्य को छोड़ कर जड़ की सेवा क्यों करूं -- राम बिना और देव नहीं है। सब लोग सुन लो राम के बिना मुक्ति न होगी।[१] मेरे मन हृदय से परम धन हरि पद पंकज का चिंतन कर -- दुख भंजन भव की नाव, परम चिंतामणि हरि के चरण हैं, हरि चरणों की शरण ही मतिहीन की एक मात्र गति है। जिसकी सेवा देवता और महेश करते रहते हैं -- देखो वह देवताओं का स्वामी है।[२] हमारे मन राम चरणों में लग-- यह संपूर्ण संसार मायामय है जिस प्रकार बादलों से उत्पन्न बिजली थोड़े समय चमक फिर लुप्त हो जाती है, इसी प्रकार धन, जन, जीवन, जाया आदि विषय के धंधे हैं। हरि पद पंकज भव भंजक हैं -- इनका स्मरण चित्त से करो।[३] मेरे पामर मन हरि पद मेरा परम धन है, उसे कैसे भूल गया -- हरि पद भक्त जनों का मनोरंजन करने वाला निज का धन है और भव भंजक है। गोप नंदन के उभय पदों की वंदना देवतागण करते है। धन, जीवन, संसार असार है केवल नारायण ही सत्य है।[४] मेरे मन भक्तों के संग हरि गुण का गान कर, हरि का नाम पतित पावन है, उसे रात दिन अविराम लेता रह-- हरि गुण का अमिय पान कर भक्तों का मनोरथ पूर्ण करता है सकल निगमों ने विचार कर कहा कि हरि के बिना अन्य सिद्धि नहीं है।[५] भाई हरि चरण सार धन का व्यवसाय करना। जो चतुर नर मुख में राम नाम को रखते हैं वे मूल को रख, भव नदी पार कर जाते हैं राम नाम ले अन्य आशा को दूर करो -- राम नाम रत्न से अपनी नाव को परिपूरित कर दो-- भक्तों का महाधन राम नाम ही है। माधव

---

१ - माधवदेव बर गीत ६

२ - वही ६

३ - वही १०

४ - वही १५

५ - वही १८ पृ० १३

दास दीन मति हीन कहते हैं कि राम धन के बिना अन्य धन्य किसी काम के नहीं नारायण तुम्हारे चरणों की सेवा करता हूं,तुम्हारे अतिरिक्त मेरा कोई सुहृद नहीं है,मुझ पर दया करो । निगम निगूढ़ सार तेरा नाम मेरे मुंह में रहे -- भक्ति विंदु आनंद का दान करो -- मैंने आशा का परित्याग कर दिया है -- तुम्हारे पैरों का स्पर्श कर केवल तुम्हारी शरण मांगता हूं।[2] रे मन राम चरण धन की सेवा कर-- वेदों का वचन है,राम नाम के बिना भव पार नहीं हो सकता-- यह मानवी शरीर नष्ट हो जायगी,हरि के चरण पकड़ उनकी शरण में जाओ । माधव दास मुरुख मति कहते हैं गोविंद के दो चरण ही गति हैं।[3]

सूरदास जी कहते हैं -- अनेक जप-तप करने और करोड़ों तीर्थों में स्नान करने से वह सुख नहीं प्राप्त होता है जो गोपाल का स्मरण करने से मिलता है । जिसके हृदय में नंद-नंदन का वास हो जाता है वह देने पर भी चतुं - पदार्थ नहीं लेता ।[4] प्रभु अत्यन्त कृपालु हैं,वे शरणागत की रक्षा करते हैं -- हरि की सभा में छोटे बड़े का भेद नहीं है-- वहां सभी बैठ सकते हैं --।

सूरदास कहते हैं किजैसे पारस के स्पर्श से लोहे का खोटा पन चला जाता है,वैसे राम नाम लेने से विकार दूर होते हैं।[5] प्रभु तुम्हारी वाणी पर और विश्वास करना ही सच्चा है । तुम विश्वम्भर हो,जो चिंता करता है वह कच्चा भक्त है । जब गजराज को ग्राह ने पकड़ा,उसे अधिक दुख हुआ,नाम लेते ही हरि गरुड़ छोड़ कर उसकी सहायता के लिए दौड़े और उसे छुड़ाया ।[6] जब दु:शासन ने द्रौपदी की चीर पकड़ी,तब तुमने उसके वस्त्र को बढ़ा दिया । सब लोग हरि का स्मरण करोहरि का स्मरण करने से ही समस्त सुख प्राप्त होते हैं । श्रुति-स्मृति को देख कर कह रहा हूं कि हरि के समान दूसरा कोई नहीं है । जो कुछ होना है हरि के स्मरण से ही होगा,हरि चरणों को चित्त में छिपा

---

१ - माधवदेव बर गीत २० पृ० १४-१५

२ - वही २६ पृ० २४

३ - वही ४७ पृ० ३७

४ - सू०सा० - पद- १६ पृ० २०

५ - वही - पद- १५ // //

६ - सू०वि० प० पद ३३ पृ० ४४

कर रखो । यदि कोई करोड़ों उपाय भी करे तो भी हरि के स्मरण के बिनामुक्ति नहीं होती । हरि शत्रु-मित्र का विचार नहीं करते,जो उनका स्मरण करताहै,उसी की गति होती है । सब लोग हरि का स्मरण करो । सूरदास जी कहते हैं[१] -- `सौ बात की एक बात यही है कि दिन-रात हरि का स्मरण करो । रे मन हरि का बार बार स्मरण कर । यह विश्वास कर लो कि प्रभु नाम के समान कोई सात्त्विक यज्ञ नहीं है । हिरण्यकश्यिपु ने हरि नाम को भुला दिया,वह शीघ्र ही भक्त हो गया । जिस प्रभु ने प्रह्लाद के लिए असुर को मारा,उससे वह सदा डरता रहा । गजराज,गीधराज, गणिका और व्याध वे सब गल गए ।[२] रे मन राम नाम के स्मरण बिना तूने जन्म व्यर्थ खो दिया । तूने अल्प सांसारिक सुख के लिये अपना अन्त क्यों बिगाड़ा ? साधु संग,और भक्ति के बिना जीवन नष्ट हो रहा है । जुआड़ी की भांति तुम्हें भी हाथ झटक कर चल देना है । स्त्री,पुत्र,शरीर और भवन जो तुम्हें सुख देते हैं,काल की अवधि आ गई,इनमें तेरा कुछ भी नहीं है । सब धंधों को छोड़ राम नाम भज लो ।[३]

तुलसीदास कहते हैं `अरे पगले ! राम जप,राम जप,राम जप । देख,इस भयानक संसार रूपी समुद्र से पार जाने के लिए,जन्म मरण से छूटने के लिए,एक राम नाम ही नौका है,इसी के सहारे पर तू मोक्ष पा सकता है अन्यथा नहीं । इसी एक साधन के बल भरोसे पर ऋद्धि-सिद्धियों को साध ले,क्योंकि फिर दूसरा साधन नहीं है ।

१- सू० वि० प०-- पद- १४७ पृ० १४७
२ - वही - पद- १०८ पृ० ११०
३ - वही - पद- १३० पृ० १३२

देखता नहीं कि कलिकाल-रूपी :दु:साध्य: रोग ने यम नियम, योगाभ्यास और समाधि को ग्रस लिया है अर्थात् ये सब पंगु हो गये हैं, मुक्ति दिलाने में असमर्थ हैं । अंत समय एक राम-नाम ही से सब को काम पड़ेगा, चाहे वह भला हो या बुरा, सीधा हो या उल्टा ।[१] हे मूर्ख मन ! सर्वदा बार बार श्रीराम-नाम का स्मरण किया कर वह सर्व सौभाग्य और सुखों की खानि है, ऐसा जी में समझ कर और वेदों का सार है ऐसा मानकर सदा राम राम कहा कर । यह नाम धर्मरूपी कल्पवृक्ष का उद्यान, साकेतधाम जाने वाले पथिकों के लिए मार्ग व्यय के समान शांति देने वाला तथा कलियुग में किये गए पापों का नाश करने वाला उपमा रहित उनका नाम है । हे तुलसीदास ! तू अब सारी आशाएं और भय छोड़कर ही संसार रुपी जाल काट देने के लिए पैनी तलवार के समान राम नाम का ही स्मरण किया कर ।[२] हे जीव ! सदा प्रेम से राम-नाम जपा कर । इस कलिकाल में राम नाम के अतिरिक्त वैराग्य, योग, यज्ञ, तप और दान कोई भी साधन सफल नहीं हो सकते और न सध सकते हैं । मेरी समझ में राम-नाम का स्मरण करना ही सारे विधि कर्मों में श्रेष्ठ है और उसे भुला देना ही निषेध कर्मों में सबसे बढ़कर है । राम-नाम भक्ति और मुक्ति दोनों का ही सार है और तुलसीदास के लिए तो यह प्राणों का आधार है बिना राम-नाम के वह क्षण भर भी जीवित नहीं रह सकता है ।[३]

हे जीभ ! तू सदा राम-नाम रटा कर और राम-राम जपा कर । हे मन तू भी राम नाम में नित्य नवीन प्रेम रुपी मेघ के लिए जैसे बने-वैसे पपीहा बन जा ।[४] हे मन ! यदि तुम मेरे कहने पर स्वभाव से ही श्रीराम नाम से प्रेम करेगा तो तेरा सब प्रकार से

---

१ - वि० प० पद - ६६ पृ० १४५

२ - वही० पद- ४६ पृ० १०२

३ - वही० पद- ६७ पृ० १४६

४ - वही० पद- ६५ पृ० १४३

मला होगा । राम-नाम के प्रभाव से कलिकाल अपनी सेना समेत डरकर ऐसे भाग जायगा जैसे आग के आगे से जूड़ी बुखार । राम नाम के प्रभाव से वैराग्य,योग,जप,तप आदि आप ही जाग्रत हो उठेंगे । राम-नाम कल्प वृक्ष है,इससे हे तुलसीदास ! उससे तू जो जो मांगेगा,वह वह पायेगा[1] । राम-नाम भूखे कंगालों का माता पिता है और जिनका कहीं ठौर ठिकाना नहीं,उनका सहारा है । राम-नाम के समान पतितों का उद्धार करने वाला और दूसरा नहीं है,तुलसी के समान ऊसर उसे स्मरण करने से उपजाऊ भूमि हो गया[2] ।

दीनता वर्णन : श्री राम मैं पापी,पामर हूं,मुझे तुम्हारा ध्यान नहीं आता है, मैंने चिंतामणि को कांच समझ लिया है । दिन भर विषयों में लिप्त रहता हूं रात सोकर व्यतीत करता हूं--मन निरंतर धन से विमोहित है ऐसा लगता है हमने गरल को अमृत समझ पी लिया है । माधव हम परम मूर्ख हैं,भक्ति को नहीं जानते[3] । विषय वासना के लोभ में मैं सब कुछ भूल गया धन,जीवन,यौवन तथा सुहृद अस्थिर हैं। कामिनी के मुख के अरुण अधरों पर मेरा मन आसक्त है उससे मैं विरक्त न हो सका और मनोरथ बढ़ गया । केशव हमारे मोह पाश को तोड़ दो[4] । गोविंद क्या गति की, गोविंद कैसी मत दी,नाथ सारी आयु व्यथित होकर व्यतीत किया । यह संसार गहन बन के समान है,इसमें मोह का जाल है उसमें हम मृग की भांति फंस गये हैं,मायापाश में हम उलझ गये हैं और काल रूपी व्याध दौड़ रहा है,काम,क्रोध रूपी कुत्ते ब दौड़ कर खा रहे हैं मैं अचेत हो गया हूं,सोचते सोचते जीव दग्ध हो गया,लोभ और मोह रूपी बाघ हमें कभी नहीं छोड़ते -- सदाशिव रक्षा करो[5] । मेरा शरीर भव भय के ताप से तप्त है,हम तुम्हारे चरणों की आशा में हैं -- मेरी पामर लुब्धमति कामिनी और कनक के आकर्षण में भूली हुई है । रूप,रस,स्पर्श,शब्द,गंध से मेरा मन आकुल है,तुम्हारी भक्ति कभी न की -- यौवन,धन तथा जीवन क्षणिक हैं तथापि विरक्ति नहीं होती । काम,क्रोध मद मत्सर से मति सनी हुई है[6] ।

दुख सागर में डूबा हुआ किस प्रकार हरि के चरणों को पाऊंगा । इस संसार के गहन वन में जीव मृग के समान है और काल व्याध केसमान है,हम पशु माया जाल में वंदी हो चुके हैं,भागने का कोई मार्ग नहीं दिखाई देता है -- काम क्रोध रूपी कुत्ता हमें काट रहा है,विषयों के विष से यह जीव आकुल है । रूप रस के पंच वाण से हमारा हृदय फट चुका है[1] । मेरा चंचल मन स्थिर नहीं होता,गोविंद तुम्हारी सेवा कैसे करूं ? मेरा जिन विषयों पर लुब्ध है वे कमल के पत्तों के ऊपर के जल के समान अस्थिर हैं । यह पामर मति तुम्हारे चरणों के प्रति अनुराग न कर रूप,रस,स्पर्श,शब्द की ओर दौड़ती है[2] । इस भव संसार में निमज्जित हो मैंने क्या किया ? अभय चरण की सेवा मुझ पापी ने न की - शव से सदृश शरीर को अपना समझा -- हरि तुम आत्मा हो यह मैंने न जाना । मैं बड़ा अज्ञानी हूं ,तुम्हें तज धन का ध्यान किया - मैं बड़ा पापी हूं मुझ अधम की गति मरने पर क्या होगी ? मैंने अपना विनाश किया[3] ।

सूरदास कहते हैं -- त्रिभुवनपति,मेरे स्वामी यदि आप मेरी अधमता को देखें,तब तो कुछ नहीं कहा जा सकता । हरि,जब से जन्म हुआ और मृत्यु काल के पूर्व तक पाप करने से संतोष न हुआ,आज तक मन कामनाओं में मग्न है,उससे विरक्ति नहीं उत्पन्न हुई । परम कुबुद्धि ज्ञान से अनभिज्ञ हूं-- हृदय में जड़ता का निवास है[4] । गोपाल मैं अब बहुत नाच चुका । काम,क्रोध का चोला पहन कर विषय की माला गले में डाल कर,महामोह रूपी नूपुर बजाता हुआ जिनसे निंदा का रस मय शब्द निकलता है । भ्रम से भ्रमित मन पखावज बना है और वह असंगत चाल चलता है । अनेक प्रकार के ताल दे तृष्णा हृदय के भीतर नाद कर रही है । माया का फेटा बांध कर भाल पर लोभ का तिलक लगा लिया है[5] । इसी प्रकार मैं अनेक जन्मों में पागल बनारहा हूं । हरि के चरण कमलों का त्याग करके विमुख रहा मन में संतोष नहीं आया,जब जब जल या पृथ्वी पर मेरा जन्म हुआ तब तब

---

१ - माधवदेव - बरगीत २४

२ - वही ३१

३ - वही ५०

४ - सू०वि०प० - पद- २३० पृ० २२२

५ - सू० वि० प० - पद - २०० पृ० १९४

मुझे शरीर धारण करना पड़ा । काम,क्रोध,मद,लोभ तथा मोह के वश हो मैंने अनेक महापाप किए[1] । अनेक दिन हरि स्मरण के बिना खो दिया मेरी जीभ का रस परनिंदा ही था इसी में कितने जन्म नष्ट हो गए । शरीर को तेल से मर्दन किया और मल मल कर स्वच्छ किया । तिलक लगा कर स्वामी बन कर चले किन्तु विषयी लोगों की पीछे पड़े रहे। बली काल से समस्त जग कांपता है,ब्रह्मा भी रोते हैं । सूरदास कहते हैं --मेरे जैसे अधम व्यक्ति की कौन गति होगी जो सदैव उदर भरकर सो रहता है[2] । संसार की उलझनों में पड़े पड़े ही जीवन समाप्त हो गया । विवेक हीन होने के कारण राज-काज सुत और धन के बंधन में फंसा रहा माया की कठिन गांठ तोड़ने से भी नहीं टूटती न तो हरि की भक्ति की न सज्जनों का संग किया -- बीच में अटका रह गया[3] । मिथ्या सुखों के लिए मैंने जीवन गंवा दिया । हरि से प्रीति न कर के स्वप्नवत सुख में भूला रहा । कभी आनंद पूर्वक पुत्र को गोद में लेकर खेलाता रहा,कभी सभा में बैठकर मूंछों पर ताव दिया सिर पर टेढ़ी पगड़ी लगा कर कुमार्ग की ओर दौड़ता रहा[4] । माधव जी ! मैं पतित शिरोमणि हूं हूं । मैं किसी योग्य नहीं,हूं,मेरे रोम रोम में सैकड़ों पाप हैं[5] । हे स्वामी मेरे समान और कोई पतित नहीं है । मैंने बहुत प्रयास किया किन्तु अवगुण मुझसे नहीं छूटते । जैसे बंदर घुंघुचियों को एकत्र करके रखता है किन्तु उनसे उसे कोई लाभ नहीं मिलताहै वैसे मैं अनेक जन्मों से भटकता आ रहा हूं । कनक और कामिनी के रस से मोहित उसी के प्रति अधिक आसक्त हो रहा हूं है । जैसे मछली चारे के लोभ से उलझती है[6] वैसे मैं जीभ के स्वाद के लिए उलझ रहा,मृत्यु का फंदा नहीं दिखाई दिया । हरि मेरे समान कोई पतित नहीं दिखाई देता है । मैंने मन,वाणी और कर्म से जो पाप किए हैं उनका कोई परिमाण नहीं है । यमराज के चित्रगुप्त भी मेरे पापों को न लिख सके,

---

१ - सू०वि० प० - पद- २८ पृ० ४०
२ - वही पद - ६० पृ० ६६
३ - वही पद - ६४ पृ० १००
४ - वही० पद - १०२ पृ० १०६
५ - वही पद - २०७ पृ० २००
६ - वही - पद - १६४ पृ० १८८

हार मान कर कागज़ फेंक दिया । मेरे अपराध और अधमता को सुनकर कोई मेरे निकट नहीं आता [1] । जन्म तो ऐसे ही बीत गया । जैसे कंगाल को कोई वस्तु मिल जाय, उसी प्रकार लोभ ने खरीद लिया है । बहुत जन्मों तक मल के पीछे लगे रहने वाला शूकर और श्वान होता रहा । मेरी मेरी करके इस बार भी वही बीज बोता रहा [2] । अब मैं माया के हाथ बिक गया हूं, रस्सी में बंधे पशु के समान परवश हो गया हूं, श्रीपति का भजन नहीं किया । हिंसा, गर्व ममता के रस में भूला हुआ आशा से लिपटा हुआ हूं । अपने अज्ञान के तिमिर में अपना परम निवास भूल गया [3] ।

अरे मन ! तूने कभी विश्राम न माना । आत्मानंद में भूलकर दिन-रात चक्कर लगाया करता है और इन्द्रियों की ही खींच तान में लगा रहता है । यद्यपि विषयों के साथ तूने बड़े बड़े दुःख भोगे हैं, कठिन जाल में फंसा रहा है, फिर भी अरे मूर्ख ! तू उसे नहीं तजता। जान लेने पर भी कुछ नहीं जानता सो- रहता है । अनेक जन्मों से तू अनेक प्रकार केकर्म करता चला आ रहा है, उन्हीं के कीच में लिप्त हो गया है सो हे चित्त ! यदि तुझे स्वच्छ होना है, तो विवेक प्राप्त कर क्योंकि बिना विवेकरूपी जल के तू निर्मल नहीं हो सकता, यह वेद और पुराणों ने कहा है । तुलसीदास कहते हैं कि उस तालाब से कब प्यास बुझ सकती है, जिसके खोदने में ही सारा जीवन बीत गया [4] । हे हरि मेरा मन हठ नहीं छोड़ता । नाथ ! यद्यपि दिन रात अनेक प्रकार का उसे उपदेश करता हूं पर वह अपने स्वभाव का ही करताहै, अपना स्वभाव नहीं छोड़ता । जैसे युवती प्रसव पीड़ा का अनुभव पुत्र जन्म के समय करती है और उस समय उसे असह्य कष्ट होता है पर वह मूर्ख सारे विगत दुखों को भूलकर फिर प्रसन्न चित्त से दुष्ट पति के समीप जाती है, उससे संभोग करती है । तुलसीदास जी कहते हैं कि मैं अनेक प्रकार के प्रयत्न कर कर हार गया हूं [5] । हाय दिन रात नाचते नाचते ही मरा, बार बार जन्मा और बार बार मरा । हे हरि ! जब से आप ने

---

१ - सू०वि० प० - पद- २०८ पृ० २०१

२ - वही पद - ८५ पृ० ९३

३ - वही पद - ५५ पृ० ६६

४ - वि० प० पद ० ८८ पृ० १७०

५ - वही पद- ८९ पृ० १७१

जीव नाम रखा, तभी से यह कभी शांत नहीं हुआ । नाना प्रकार के इच्छारूपी वस्त्र तथ लोभ आदि अलंकार धारण कर जड़ और चैतन्य एवं पृथ्वी, पाताल और आकाश में ऐसा कौन सा स्वांग बचा, जो न किया हो । देवता, दैत्य मुनि, सर्प, मनुष्य आदि ऐसा कोई भी न रहा, जिससे मैंने कुछ न कुछ मांगा न हो, पर इनमें से किसी ने भी मेरा यह दारुण दुःख दूर न किया अब नेत्र पांव, हाथ और बुद्धि तथा बल सभी थक गये हैं, सबने मुझे अकेला छोड़ दिया है । अब हे रघुनाथ जी संसार के भय से डरा हुआ आप की शरण में आया हूं । हे नाथ जिन गुणों पर रीझ कर आप प्रसन्न होते हैं, वह सब मैं भूल गया हूं । हे प्रभो अब तो आप तुलसीदास को अपने द्वार पर खड़े रहने दें[१] । हे माधव जी मेरे समान कोई भी मूर्ख नहीं है यद्यपि मछली और पतंगे मूर्ख कहे जाते हैं किन्तु वे मेरी बराबरी नहीं कर सकते हैं । पतंग ने सुन्दर रूप देखकर दीपक को अग्नि नहीं समझा और मछली ने आहार के वश हो लोहे का कांटा नहीं जाना, दोनों ही बिना जाने जले और फंसे, किन्तु मैं कष्ट देख- देखकर भी विषय का संग नहीं छोड़ता हूं । अतएव मैं उन दोनों से अधिक अज्ञानी हूं हूं[२] ।

इष्टदेव की महत्ता : माधवदेव कहते हैं 'ठाकुरि हरि दया करो, अधम तुम्हारा नाम लेकर बुला रहा है, नारायण कृपा करो, जिससे हमारा चंचल मन तुम्हारे चरणों में लगा रहे । एक विप्र अजामिल मंदमति पाप शील था जिसने पुत्र भाव से तुम्हारा स्मरण किया- कर्म बंधन नाश कर उसे वैकुंठ में स्थान मिला यह सम्पूर्ण संसार में विदित है उससे भी करोड़ गुना अधिक पापमति निदारुण मैं हूं जिसने तुम्हारे नाम की आशा की है[३] । मैं परम पतित हूं, तुम पतित पावन हो यह जान तुम्हारा भरोसा करता हूं । राम तेरे चरणों के प्रति अनुराग तथा तुम्हारी भक्ति की याचना करता हूं, तुम्हारी निर्मल भक्ति और नाम गुण के बिना और कोई उद्धार नहीं सकता -- हम पतित हैं तुम पालक हो- इस बार गोसांइ न बचूंगा । मुझे अपने दास के दास का अनुचर बना दो । माधव कहते हैं मुझे और काम नहीं चाहिए[४] । नारायण करुणा के सागर प्रभु मुझ पर इस बार

---

१ - वि० प०- पद- ६१ पृ० १७३

२ - वही पद- ६२ पृ० १७५

३ - भा० घ० ५१

४- वही ४०

करुणा करो,तुम्हारे अभय चरणों की आशा में मैं हूं । सनत कुमार,नारद,शंकर आदि आनंद से तुम्हारे चरणों की सेवा करते हैं - उन्हीं को देख मैं भी तुम्हारे चरणों की सेवा की आशा करता हूं । तुम सत्यव्रत हो अपने वचन को सत्य करो । प्रभु मुझे अपने दास के दास का किंकर समझो । तुम्हारी अनादि अविद्या के अंधकार में मैं अंधा हो गया। प्रभु इस बार मुझे अपना दास बना लो ।[१] माधव देव कहते हैं `गोपाल कृपाल राम, करुणा सागर स्वामी हम तुम्हारे पद मकरंद विंदु की आशा करते हैं -- भव ताप से मेरा मंद तप्त है,तुम्हारे शीतल पदारविंद की याचना करता हूं,प्रभु जन्म जन्मान्तर मेरी यही आशा है ।[२] इन तीन भुवनों के तुम्हीं बड़े ठाकुर हो- मेरा मन और किसी को नहीं जानता । मेरी काया संसार में चारों ओर फिरती है,इसका अंत नहीं होता है । नारायण इस बार थोड़ी करुणा करके मुझे तार दो- मैं सब पापियों में महा अधम पापी हूं । माधव कहते हैं कि प्रभु तुम पतित पावन हो,तुम्हारा ही भरोसा मुझे है ।[३] करुणा नाथ मुझ अधम पर करुणा करो सहस्त्र बदन भिन्न भिन्न मुखों से तुम्हारा गुण गान करतेहैं,तथापि तुम्हारे नाम ,गुण,यश तथा महिमा को न जान सके । महामुनि ब्रह्मा,शंकर जिसकी माया से मोहित होते हैं,चार वेदों ने विचार कर जिसका अंत न पाया- सनक सनातन योगी जन जिसकी महिमा नहीं जानते । माधव कहते हैं कि हम मूर्ख हरि को कैसे जानेंगे ।[४] हे जगन्नाथ मुझे क्यों नहीं देखते हो मैं पापियों में सबसे बड़ा पापी हूं -- तुम्हारे चरणों को न पकड़ संसार कूप में पड़ गया हूं । कितनी तपस्या के बाद नर तन मिला,उसे भी विषयों में लगा दिया,जिस प्रकार अमूल्य रत्न चिंतामणि कांच के मूल्य पर बिक गया । तुम्हारी अमृतमयी भक्ति को तज विषय गरल पान किया- लोभ,मोह,काम,क्रोध,मद मान बैरी साथ में हैं । अपनी इच्छा से पापाचरण किया ।

---

१ - मा० व० ३६

२ - वही ३६

३- वही ३५

४- वही ३४

पर नारी,पर धन के लोभ से सदैव आकुल रहा तुम महाधन हो तुम्हारी सेवा न कर मैंने जीवन निष्फल किया । यम की यातना को सुन कर हमारा हृदय कंप रहा है । तुम्हारे अभय चरणों की शरण के अतिरिक्त अन्य गति नहीं है । मूर्ख माधव तुम्हें दयामय जान कह रहा है ।[1] रे हरि ! मैं पापी कैसे पार हूंगा यदि तुम करुण न करोगे -- पाप मति वासना नहीं छोड़ता - मैं घोर संसार में निमज्जित हूं । नयन कामिनी के रूप का मोह नहीं छोड़ते ,रसना षटरस का त्याग नहीं करती है--श्रवण मधुर गीत ध्वनि के प्रति आसक्त हैं -- त्वचा कोमल स्पर्श की कामना करती है-- शीतल सुगंध का मोह नासिका को है--मन स्त्री तथा धन का परित्याग नहीं करता है लोभ,मोह,काम क्रोध,मद मान साथ नहीं छोड़ते-- ईर्ष्या,असूया,हिंसा,पैशुन्य एक तिल केलिये भी नहीं छूटता । काल रूपी अजगर आगे बढ़ शरीर को धीरे धीरे निगल रहा है । प्रभु मैं अचेत हो गया हूं ।[2] हरि का नाम निगमों का सार है जिसका स्मरण कर अन्त्यज जाति के लोग भी भव नदी पार कर जाते हैं । पापी अजामिल हरि का नाम सुमिर कर्म्म के बंधन को तोड़ वैकुंठवासी हुआ । यह जान कर मनुष्यों हरि नाम का विश्वास करो-- सकल वेदों का तत्व मूर्ख माधवदास कहता है ।[3] शंकरदेव कहते हैं मेरा ठाकुर वही है,जो नाम को ही रूप धारण कर प्रकट होता है,हम उसी के दास हैं । पंडित शास्त्र मात्र पढ़ते हैं,उसका सार भक्त ग्रहण करते हैं । कमल के अंतर से जल छूटता है,उस मधु को मधुकर पीता है-- जो भक्ति करता है,वही मुक्ति का अधिकारी है इस तत्व को भक्त जानता है । जिस प्रकार वणिक चिंतामणि के गुण की व्याख्या करता है,उसी प्रकार भक्ति का मूल्य भक्त ही जानते हैं । पंडित वही है जो हरि गुण का गान करता है ।[4] हरि तुम्हारे पांव पकड़कर प्रार्थना करता हूं कि प्रभु मेरी रक्षा करो- विषय विषधर ने मुझे पकड़ लिया है,यह जीवन थोड़ा ही शेष है यह संसार,धन,

---

१ - मा० व० २९

२ - वही १६

३ - वही ११

४ - शंकरदेव - बरगीत १०

जीवन,अस्थिर है - पुत्र परिवार सभी असार हैं किसका भरोसा करूं--जैसे कमल के दल पर जल स्थिर नहीं--रहता,ठीक उसी भांति हमारा चित्त भी चंचल है । विषय भोगों में वास्तविक सुख नहीं है । शंकर कहते हैं `हृषीकेश इस दुख सागर से हमें पार करो[1] । नारायण की लीला कौन जानेगा-- सनक सनातन ब्रह्मा चिंतित हो अधिक विमोहित हो उठते हैं,जिसके रोमरोम में कोटि कोटि अंड हैं,जिसने शूकर अवतार ले पृथ्वी का भार हरण किया था । नृसिंह रूप में प्रकट हुआ था । सुत,वित्त,शरीर जो दिखाई देते हैं वे माया के धंधे हैं । हम जितने जीव है सब तुम्हारे अंश हैं । शंकर कहते हैं प्रभु मैं तुम्हारे पद के अतिरिक्त और कुछ नहीं मांगता हूं[2] । नारायण तुम्हारी भक्ति कैसे करूं-माधव- मेरा पामर मन पाप का त्याग नहीं कर रहा है-- ~~मनन्कब~~ जितने जीव,जंगम कीट,पतंग,अग,नग तथा जगत तेरे शरीर के अंग मात्र हैं-- सब मर कर उसी उदर में पड़ते हैं जीव क्या नहीं करता,ईश्वर रूप में हरि घट घट में स्थित है जैसे आकाश सर्वत्र व्याप्त है । हम पापी निंदा,पिशुन तथा हिंसा ही करते रहते हैं । करुणानाथ शंकर केऊपर कृपा करो,जिससे मैं राम शब्द का बोलना न छोडूं । तुम्हारा नाम सबअपराधों के पाप से मुक्त करता है यह जान तुम्हारी शरण लेता हूं[3] । नारायण के चरणों की पुकार कर रहा हूं विषय के विलास के के फंदे में फंसा,डाकू इन्द्रियां मुझे लूट रही हैं । नासिका गंध के लिये,जीभ मधुर रस के लिये,कान विविध प्रकार की ध्वनि के लिये दौड़ते हैं । आंख रुप का दर्शन,त्वचा कोमल स्पर्श चाहती हैं । काम,क्रोध,मद,मान तथा मोह जैसे विशाल बैरी मेरे पीछे हैं । शंकर कहते हैं `तुम्हारे बिना हमारा अन्य रक्षक नहीं है[4] ।

सूरदास जी कहते हैं -- मेरे प्रभु किसी के कुल का नहीं विचार करते हैं । अविगत क कीगति नहीं कही जा सकती है वे व्याध और अजामिल का भी उद्धार करते हैं उन्होंने जाति पांति के भेद भाव को भुला कर विदुर केघर में जाकर भोजन किया । मेरे स्वामी

---

१ - शंकरदेव - बरगीत १७
२ - वही ७
३ - वही ४
४ - वही ५

का यही स्वभाव है कि भक्त वत्सल होने की अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करते हैं[1]। उनके अतिरिक्त भक्त की लज्जा दूसरा कौन बचा सकता है। वेद और पुराण साक्षी हैं कि प्रभु जाति-पांति एवं कुल की महत्ता नहीं मानते हैं। संसार जानता है कि प्रभु ने अपने अनेक भक्तों को स्वयं अपनी भुजाओं को भ्रमित करके सुखी किया है। ऐसा कौन है जिसका उद्धार प्रभु की शरण लेने से न हुआ हो[2]। सूरदास कहते हैं -- यदुनाथ ने जन हित के लिए क्या क्या नहीं किया। पहले दयारत होकर जो वचन दिये थे, उसके वश होकर गोकुल में गायें चरायीं। नरकेशरी का रूप धारण दैत्यराज का हृदय फाड़कर मार डाला, अदिति के पुत्रों के हित के लिए पराक्रमी राजा बलि से तीन पग पृथ्वी मांगी। इसी प्रकार गजेंद्रोद्धार लीला हुई[3]। इस प्रकार की अनेक अंतर कथाएं हैं, जिनका स्तुति गान होता है। श्याम तुम्हारे गुणों का कहां तक वर्णन करूं। कुब्जा विदुर, दीन द्विज सुदामा, तथा गणिका के कार्य तुमने संवारे[4]। जिस पर प्रभु कृपा करते हैं वह कभी भी संसार सागर में नहीं गिरता, उसकी अभय दुंदुभि बजा करती है। श्याम ने सुदामा को निधि दी और युद्ध में गरजते हुए अर्जुन विजयी हुए, विभीषण लंका के राजा हुए और ध्रुव आकाश में विराजने लगे। कंस-केशी आदि दुष्टों का वध करके मथुरा की अराजकता समाप्त कर दी उग्रसेन के सिर पर पुन धारण कराया, राक्षस दशों दिशाओं में भाग गए चीर हरण के समय द्रौपदी की लाज बचाई और अंधे धृतराष्ट्र के पुत्र को लज्जित होना पड़ा। मेरे स्वामी केवल महान भक्ति से उच्च नीच सभी को श्रेष्ठ कर देते हैं[5]। हे यदुनाथ आप का सबसे बड़ा प्रभुत्व यह है कि आप का नाम प्रत्येक दिन प्रत्येक भक्त के कर्मों को उन कर्मों की वासना के साथ हरण कर लिया करता है[6]। अपने अद्भुत यश का विस्तार करने के लिए हरि का मुझ जैसे सेवकों पर बहुत प्रेम है, क्योंकि कोई भी उन्हें भक्त पावन

---

१ - सू०वि०प०- पद- १३ पृ० २७
२ - वही - पद- १६ पृ० २६
३ - वही - पद- ७ पृ० २०
४ - वही - पद- २८ पृ० ३८
५ - वही - पद- ३६ पृ० ४८
६ - वही - पद- १५४ पृ० १५२

नहीं कहता, सभी पतित पावन कहते हैं[1]। सूरदास कहते हैं -- हे प्रभु जिनके वश में अनेक देवगण आज्ञाकारी सेवक बन कर रहते हैं, वे भी तुम्हारी कृपा चाहते हैं। आप के भय से वायु चलता है, चंद्र और सूर्य घूमते हैं तथा शेष नाग तक अपना सिर नहीं हिलाते, अग्नि अपनी उष्णता त्याग नहीं कर सकती है, सागर अपना जल नहीं बढ़ाता। आप अनादि तथा अजेय हैं -- अनंत गुणों से पूर्ण परमानंद स्वरूप हैं[2]।

तुलसीदास कहते हैं दीनों पर दया करने वाला और उन्हें दान देने वाला दूसरा कोई नहीं है। मैं जिसे अपनी दीनावस्था सुनाता हूं, उसी कोदीन देखता हूं। देवता, मनुष्य, मुनि, दैत्य, सर्प आदि बहुत से साहब हैं जब तक आपने अपनी दृष्टि टेढ़ी नहीं की। भूत, वर्तमान और भविष्यत् तथा आकाश, पाताल, और भूलोक सर्वत्र यह बात प्रकट है और चारों वेद भी कह रहे हैं कि आदि, अंत और मध्य में हे राम आपकी ही एक रस प्रभुता है। आप से मांगकर कोई फिर भिखमंगा नहीं रहा। आप का ऐसा उदार स्वभाव और शील सुनकर यह दास आप से मांगने के लिए आया है। आप गरीबनिवाज हैं, मैं आपका गुलाम है[3]। हे रघुनाथ जी ! आप दीनों के सहायक आनंद के समुद्र, कृपा के सागर और करुणा के धारण करनेवाले हैं। हे नाथ ! सुनिए मेरा मन संसार के तीनों तापों से जल रहा है, इसी से वह पागलों की तरह बकता फिरता है। तुलसीदास का संसाररुपी रोग राम के चरणों के प्रेम के बिना दूर नहीं हो सकता[4]। चारों वेद कहते हैं कि आप नीचों का उद्धार करने वाले, दीनों के हितैषी और जिन्हें कोई शरण न दे उन्हें भी शरण देने वाले हैं तो क्या मैं नीच, भयभीत दीन नहीं हूं क्या वेदों ने झूठ कहा है। पापी, गणिका, हाथी बहेलिया आदि इनसब को पंक्ति में बैठने योग्य हूं। आप मच्छर से ब्रह्मा और ब्रह्मा से मच्छर बना सकते हैं, ऐसा आपका प्रताप है[5]। भगवान अपने सेवक पर इस प्रकार प्रेम करते हैं। अपनी महिमा भूलकर वह भक्त के अधीन हो जाते हैं, उनकी सदा से यही रीति चली आती है। जिसने देवता, दैत्य, सर्प और मनुष्यों को कर्मरूपीरस्सी से बांध रखा है उसी को उसी अखंड परमात्मा को यशोदा जी ने बलपूर्वक बांध लिया और उस बंधन को आप खोल भी न सके। जिसकी माया के अधीन होकर ब्रह्मा

---

१ - सू०वि०प० - पद- २६६ पृ० २६०
२ - वही - पद- २३२ पृ० २३२
३ - वही - पद- ६८ पृ० १६०
४ - वही - पद- ८८१ पृ० १६३
५ - वही - पद- ६४ पृ० १७८

और शिव तक ने नाच नाच कर पार नहीं पाया, उसी को गोपियों ने करताल बजा बजा कर नाच नचाया। जिसका नाम स्मरण से संसार के जन्म मरण रूपी मार से पिंड छूट जाता है, वही कृपा सिंधु अम्बरीष भक्त के लिए दस बार इस भूमंडल पर अवतीर्ण हुआ। बड़े बड़े ज्ञानी मुनि जिसे योग, विराग, ध्यान, जप और तप करके खोजते फिरते रहते हैं उसी नाथ ने बंदर रीछ आदि नीच पशुओं से प्रेम किया।[1] दीनों पर कृपा करना ही रामचंद्र का बाना है, उसे वेद पुराण, शिव, शुकदेव आदि सभी गाते हैं और उनके नाम का प्रभाव तो प्रत्यक्ष ही है। ध्रुव, प्रह्लाद, विभीषण, सुग्रीव, यमलार्जुन, जटायु, पांचों पांडव और सुदामा, इन सबको भगवान ने इस लोक में सत्कीर्ति और परलोक में मोक्ष दी है, पिंगला, गुह, निषाद से बुरा कौन है।[2] प्रभु नाम लेते ही प्रसन्न हो जाते हैं और सबको पवित्र कर देते हैं। यह उनकी सहज प्रकृति है।[3]

उद्धार की प्रार्थना : शारंग पाणि मुझ पामर मति का उद्धार करो-- तुम्हारे चरणों के बिना मुझे नरक देखना होगा जरा, मृत्यु मेरे अत्यंत निकट है, किसी समय शरीर पड़ सकता है। पाप करते करते सारी आयु समाप्त हो गई, किन्तु तुम्हारे चरण को न भज सका-- आधि व्याधि के आघात से प्रतिदिन शरीर क्षीण होता जा रहा है। शंकर हाथ फैला कर कहते हैं प्रभु अंतकाल मेरी गति तुम्हारे हाथ है।[4] राम गोसाईं तुम्हारे चरणों को पुकार रहा हूं, मेरे हृदय में चरण पंकज स्थित रहे। मैं तुम्हारे चरण मधु का पान कर भक्ति करना चाहता हूं।[5] माधव देव कहते हैं 'हरि रे बाप, मेरे पतित पावन प्रभु मेरी क्या गति हो गई है -- दुर्लभ भारत वर्ष में नर तन पाकर भी तुम्हारा नाम न ले सका। कितने स्थावर, जंगम, कीट, पतंग, पशु आदि जन्मे, उनकी गणना नहीं की जा सकती है। तुम्हारी महिमा को न जान चौरासी योनियों में जन्म ले भटकता रहा -- तुम्हारी दया से इस मानवी शरीर का उद्धार हो सकता है। मेरी बुद्धि नष्ट हो गई है, मैंने विषय की लालसा के कारण हाथ की नव निधि को खो दिया। मोह के कारण ही

---

१ - सू०वि०प० - पद- ९८ पृ० १८२
२ - वही - पद- ९९ पृ० १८५
३ - वही - पद- १०७ पृ० १९५
४ - शं० ब० - पृ० ७
५ - माधवदेव बरगीत ३

मैंने तुम्हारा विरोध किया,इससे मुझे अधिक कष्ट हुआ- तुम्हारा नाम मुख से ले भक्तों की सेवा न की । प्रभु कृपामय मुझ पर कृपा करो-- मैं तुम्हारे दास का दास हूं ,मेरा नाश न करना ।[1] माधव कहते हैं `गोपाल तुमने मुझे कैसी मति दी कि मैं तुम्हारे चरणों की सेवा नहीं करता हूं । पुराण आदि समस्त ग्रंथ तुम्हारी महिमा का गान करते हैं,यह जान कर भी मैं पामर मति तुम्हारी सेवा नहीं करता हूं । आज इस भाव सागर में नाव फंसी हुई है और यह पाप के भार बोझिल है । मुझ पापी ने विष को अमृत समझ कर पान किया । तुम प्रियतम मेरे परमात्मा हो,सुहृद,और निज देव हो । तुम्हारे अभय चरणों की शरण मैंने ली है माधव दास कहते हैं मैं तुम्हारे दास का दास हूं ।[2] प्रभु मैं तेरे दास का दास हूं-- मुरारी करुणा करो इस भव सागर से पार करने वाला तुम्हारा चरण है । हम पामर मति पाप की ओर दौड़ते हैं,तुम्हारी भक्ति नहीं जानता हूं,माधव तुम पतित पावन हो । प्रभु तुम भक्त वत्सल हो,ऐसा वेद कहते हैं । माधव कहते हैं `प्रभु तुम्हारे बिना मेरी अन्य गति नहीं है ।[3] हरि हे बाप मुझे देखो मैं तुम्हारे शरणागत हूं -- बंधु जीवन मरण मैं न छोड़ूंगा-- सनक,सनंद आदि योगी जिसका ध्यान करते हैं-- सहस्त्र मुख भी जिसका अंत नहीं पाते हैं,फिर अधम तुम्हारी महिमा कैसे जानेगा -- विषयों के प्रति आतुर हो अत्यन्त व्याकुल हूं -- चरण कमल मेरा उद्धार करो । कृपा के सागर एक बार कृपा करो-- नारायण मेरे मोह पाश को तोड़ मेरी मुक्ति करो ।[4] माधवदेव कहते हैं गोविंद तुम मेरे साहब हो,मैं तुम्हारा अनुचर हूं विनती कर मैं तुम्हारे चरण लगता हूं,तुम्हारी सेवा के अतिरिक्त अन्य काम नहीं मांगता हूं । मेरा जन्म जहां भी हो,मैं तुम्हारा भक्त रहूंगा । मतिहीन माधवदास कहते हैं कि तुम्हारे बिना मेरी और गति नहीं है ।[5]

सूरदास जी कहते हैं -- प्रभु अब की बार मेरा उद्धार करो । हे कृपा सिंधु मुरारि मैं भवसागर में मैं डूबा हूं । माया का जल अत्यन्त गंभीर है और लोभ लहररूपी तरंगें

---

१ - माधवदेव - बरगीत २२
२ - वही - २८
३ - वही - ३७
४ - वही - ४१
५ - वही - ४४

उठती हैं -- काम मुझे अगाध जल की ओर लिए जा रहा है । इंद्रियरूपी मछली मेरे शरीर को काट रही है, सिर पर पाप की गठरी है । मोह रूपी सिवार के कारण पैर इधर उधर ठीक से नहीं रखा जा सकता है । क्रोध, दंभ, गर्व और तृष्णा-- रूपी पवन झकझोर रहा है । पुत्र और पत्नी प्रभुनाम की ओर नहीं देखने देतीं । हे करुणामय ! मैं मध्य समुद्र में थक कर विह्वल हो गया हूं, मेरे हाथों को पकड़ कर ब्रज के तट पर निकाल लीजिए ।[1] हे दीनानाथ ! अब की आप की बारी है । आप पतितों के उद्धारक हैं, यह समझ कर आप मेरी बिगड़ी को सुधार लीजिए । बचपन, मैंने खेल कर गंवा दिया और युवावस्था विषय- सुख में व्यतीत कर दिया वृद्ध होने पर मुझे ज्ञान हुआ है, इससे दुखित होकर पुकारता हूं । मेरे पुत्र और स्त्री ने मुझे छोड़ दिया यहां तक कि शरीर त्वचा भी पृथक हो गई है । करुणा सागर प्रभु मेरा उद्धार करने में तुम्हीं समर्थ हो ।[2] सूरदास जी कहते हैं -- अब भला मैं किसके द्वार जाऊं ? तुम जगत के पालक परम चतुर चिंतामणि हो, तुम्हारा नाम दीनबंधु हैं मैंने सुना है माया ही कपट का जुआ है और लोभ, मोह, और मद भारी दोष कौरव है । मेरी बुद्धि रूपी स्त्री परवश :द्रौपदी: परवश है, यह हार गई है, इसकी पुकार सुने । क्रोध रूपी दु:शासन लज्जारूपी वस्त्र पकड़े है, मेरी दशा अंधे धृतराष्ट्र की भांति हो गई है । प्रभु मुझे हरि की दासी समझ कर देवता, मनुष्य तथा मुनि मेरे निकट नहीं आते । आप ही उद्धार करें ।[3] प्रभु मैं बहुत देर से खड़ा हूं । तुमने अन्य पतितों को जैसे उद्धार किया है, उन्हीं में मेरा नाम लिख कर मुझे बाहर निकाल लो । अनेक युगों से आपका सुयश चला आया है, इसी से पुकार कर कह रहा हूं । पांच पतितों के बीच में लज्जा से मरा जाता हूं कि मैं अब किससे कम पतित हूं । हे स्वामी यदि मेरा उद्धार न कर सकते हों तो पराजय मान कर बैठ जाओ ।[4] सूरदास कहते हैं -- प्रभु मेरे जैसे पतित का उद्धार कीजिए । मैं कामी, कृपण, कुटिल अपराधी और पाप के भारी भार से पूर्ण हूं । तीनों अवस्थाओं में भक्ति न की, कज्जल से भी अधिक काला

---

१ - सू०वि०प० - पद- २५८ पृ० १५५

२ - वही -पद - १७२ पृ० १६६

३- वही - पद- २३४ पृ० २२७

४ - वही - पद- १८६ पृ० १८२

हूं । अब तुम्हारी शरण आया हूं जैसे भी हो मेरा उद्धार करो[1] । मेरे समान कुटिल, दुष्ट और कामी कौन है ? हे करुणामय आप से क्या छिपा है ? आप तो सब के अंतर्यामी हैं । मैं ऐसा कृतघ्न हूं कि जिसने शरीर दिया, उसको भुला दिया ग्राम के शूकर की भांति उदर पूर्ति के लिए विषयों की ओर दौड़ता रहा । सत्संग को सुन कर जी में आलस्य होता है विषयी लोगों के साथ विश्राम प्राप्त होता है । श्री हरि के चरणों को छोड़ कर हरि विमुख लोगों की सेवा करता हूं । मैं तो परम पापी, अधम अपराधी और पतितों में प्रसिद्ध हूं । श्रीपति स्वामी आप पतितों का उद्धार करते हैं[2] ।

तुलसीदास जी कहते हैं हे नाथ ! यदि कहीं आप इस दास केदोषों को मन में लायेंगे, उन पर ध्यान देंगे, तो मैं पुण्यरूपी नख से पाप रूपी बड़े बड़े वन समूह कैसे काट सकूंगा । मैंने जितने पाप, अर्थ, कर्म, वचन और मन से किये हैं, उनकी प्रशंसा भला कौन कर सकता है ? एक-एक क्षण के किये हुए पापों का लेखा लगाने में अनेक शेष सरस्वती और वेद थक जायेंगे । हां, आप के मन में अपने नाम की महिमा और उद्धार करने की गुणावली का पुण्य प्रण[3] आ जाय तो आप यमदूतों के दांत तोड़कर मुझे संसार सागर से पार कर देंगे । हे हरि ! आप दु:खों के हरने वाले हैं। हे मुरारे फिर आप मुझ पर दया क्यों नहीं करते ? आप संसार के तीनों ताप, अज्ञान, शोक, अनिश्चय और भय के नाशकर्ता हैं । कलिकाल से उत्पन्न पापों से मेरी बुद्धि मंद पड़ गई है और मन पापी हो गया है, तिस पर हे नाथ आप रक्षा नहीं करते ! इस जीव का निर्वाह कैसे होगा । क्या यह जान कर मुझ पर कृपा नहीं करते कि मैं अभागा हूं । मैं अपने मन में यह समझे बैठा हूं कि आपके समान कृपा करने वाला दूसरा देखा नहीं है । हे नाथ जिस साधन से आप प्रसन्न होते हैं वह साधन इस तुलसीदास के पास नहीं है[4] । हे हे हे माधव ! अब किस कारण से कृपा नहीं करते ? तुम्हारी प्रतिज्ञा तो भक्तों पर कृपा करने की है और मेरा भी प्रण है कि तुम्हारे चरणारविंदों को देख देख कर ही जीवन व्यतीत करूं । जब तक मैं दीन और तुम दयालु, मैं सेवक और तुम स्वामी नहीं हुए, तब तक मैंने जो जो कष्ट भोगे

---

१ - पू०वि०प० - पद - २०५ पृ० १६६
२ - वही - पद - १६५ पृ० १८६
३ - वही - पद - ६६ पृ० १८०
४ - वही० - पद - १०६ पृ० १६७

वह मैंने तुमसे नहीं कहे,यद्यपि तुम जानते सब थे क्योंकि तुम्हारा नाम ही अंतर्यामी है । तुम पवित्र हो और मैं पापी हूं । तुम मेरे माता, पिता, गुरु, भाई, मित्र, स्वामी और सब प्रकार से हितैषी हो । अतएव कुछ ऐसा उपाय बता दो, जिससे अब मैं अविद्यारुपी अंधेरे कुएं में न गिरुं । हे कमलनेत्र तुम्हारी करुणा का कोई पार नहीं है । वह संसार के बड़े भारी भय से छुड़ा देने वाली है ।[1] हे रघुनाथ मुझे कुछ ऐसा समझ पड़ता है कि हे दयालु हे भक्त हितकारी बिना तुम्हारी कृपा के न तो मोह ही दूर होता है और न माया ही,यह ध्रुव सिद्धांत है । कोई वाक्य ज्ञान में कितना ही कुशल क्यों न हो पर वह संसार सागर पार नहीं कर सकता है । घर में रात के समय दीपक की बातें करने से कहीं अंधेरा दूर होता है ।[2] हे नाथ किसके आगे हाथ फैलाऊं ? ऐसा कौन है जो मेरी याचना को सदा के लिए दूर कर देगा ? अब तुलसीदास भिखारी की इच्छा जानकर उसे भी निहाल कर दे । हे श्री रामचंद्र तू चंद्रमा है मुझे चकोर बना ले ।[3]

वंदना : यदुकुल कमल प्रकाशक कंस के प्राण नाशक तुम्हारी जय हो,मुक्तिदाता जगनायक शारंगधारी,दुष्टों का विनाश करने वाले,जय हो-- गोवर्द्धन धारण करके इन्द्र के मद को चूर्ण कर दिया-- त्रिभुवन को कंपित करने वाले कालि सर्प का दर्प नष्ट कर दिया । नंद नंदन की वंदना समस्त देव करते हैं । गोकुल के लोगों के शत्रु कुवलय आदि की हत्या कर तुमने इन लोगों की रक्षा की,पूतनिका का स्तन पान कर तुमने उसका प्राण शोषण कर लिया,व्रज वासियों को संतोष हुआ । कृष्ण का गुण नाम ही समस्त दुखों को दूर कर सकता है । इस संसार में मुरारी के चरणों के अतिरिक्त और कुछ भी चिंतनीय नहीं है । ब्रह्मा,महेश्वर आदि जिसके चाकर हैं और उनका नाम सदैव लेते हैं । बंधु बांधव मुक्ति की साधना करेंगे,उनके चरणों का ध्यान करो । वही ईश्वर संसार का कर्ता, विधाता और विनाशक है,उसी की सेवा करो ।[4] दीन दयानिधि,मुक्ति पद दाता,

---

१ - तु०वि०प० - पद - ११३ पृ० २०२

२ - वही - पद - १२३ पृ० २१६

३ - वही - पद - ८० पृ० १६१

४ - शंकरदेव- अंकीय नाट पृष्ठ २-३

यादव जलनिधि जाधव धता, जय हो, जगजीवन अजन जनार्दन, मनुजदमन दुखहारी, महदानंद, कंद परमानंद, नंदनंदन बनचारी, विविध विहार के विशारद, शरद की चंद्रमा के भांति प्रकाशित, केशीविनासन, पीत वसन अविनाशी हैं और जो भक्तों के अंतपाप को दूर करते हैं-- केशव के सरोरुह चरणों की शंकर अभिलाषा करते हैं [1]। यादव देव की जय हो, जिसका आदि अन्त कोई नहीं जानता, जिसके कमलवत चरणों की सेवा ब्रह्मा, महेश्वर सदैव करते हैं -- जिसने नृसिंह रूप धारण कर हिरण्यकश्यप का हृदय विदिर्ण कर, भूमि के भार का हरण किया--संसार की रचना कर वह अनेक लीलायें करता है, जो पद नख-स्पर्श के प्रहार से ब्रह्मांड को भेद सकता है, कलिमल को दूर करने वाला उसका यह चरित्र है-- जिसके पद-पंकज की रज स्पर्श कर गंगा मनुष्य तथा देव को पवित्र करती हैं अघ, बक, धेनुक को मार, कंस तथा केशी का अंत कर, मधु, नरक का निवारण कर, कुवलय के जीवन का हरण कर, इंद्र के दर्प को चूर्ण कर ब्रजवासियों का जीवन सुखी किया। रास में गोपियों के साथ हास परिरंभन द्वारा उनके मनोरथ को पूर्ण किया। यमुना हृद से कालि को निकाल कर उसका मर्दन किया- कुब्जा का काम मनोरथ पूर्ण किया। उसका गुण नाम संसार के पातकों को नष्ट करता है, जो इसे अविराम भजता है उसके पाप समाप्त हो जाते हैं [2]। माधवदेव कहते हैं हरि मैं तुम्हारी भक्ति किस प्रकार करूं, मैं मूढ़मति दुर्वासना द्वारा बंदी किया गया हूं, तरने का उपाय नहीं जानता, तुम्हारी माया ने मन को मोहित किया है और अज्ञान अंधकार में मुझे पार नहीं दिखाई देता है तुम्हारे नाम का दीप जलाकर तुम्हारी शरण में हूं-- प्रभु मुझसे दुर्मति हीनमति और कोई नहीं है, मैं वंदना, स्तुति तथा सेवा नहीं जानता - प्रभु तुम कृपा रस के सागर हो मुझे अपने चरणों की छाया दो - करुणासिन्धु, नारायण हरि तुम्हारी मेरी गति हो। तुम्हारा गुण नाम ही भक्तों का परम धन है। पतित पावन प्रभु तुम मुझ जैसे पतित का परित्याग नहीं कर सकते। दया के सागर राम कृष्ण नारायण मुझ पर दया क्यों नहीं करते - दांत से तृण दबाकर और मस्तक पर तृण रख कर कहता हूं प्रभु मुझ पर दया करो। परम पतित अत्यन्त आतुर हो, नारायण तुम्हें पुकार रहा है, तुम्हारे गुण नाम अमृत की आशा से वह तुम्हारे चरणों के लिये बिक गया है, तुम्हारे चरण पकड़ कर यदुपति विनती करता हूं कि प्रभु मुझे न छोड़ना [3]। कृपा सागर कृष्ण

तुम्हारी जय हो, जिसकी सेवा ब्रह्मा और शिव करते हैं, महाविश्व द्रोही भी जिसका नाम लेने से तर जाता है उसी कृष्ण को प्रणाम करता हूं, जिसके आधीन गुण, माया कर्म है, जो एक कटाक्ष से सृष्टि की रचना पालन तथा संहार करता है -- वह महेश्वर कृष्ण नित्य निरंजन है, उसके अरुण चरणों को सदैव नमस्कार करता हूं[१]। प्रवर्तक नारायण तुम मेरी चित्तवृत्ति हो - मैं सेवक हूं और तुम मेरे स्वामी हो, भगवंत कृपा कर मुझे अपने चरणों की छाया दो और माया को दूर करो - तुम मेरे अंतर्यामी हो, मैं तुम्हारा सेवक हुआ, यह जानकर हृषीकेश मुझ पर कृपा करो। प्रभु कृपा कर मुझे भक्ति रस का सार प्रदान करो, तुम भक्तों के कल्पतरु हो- प्रभु तुम मेरे भीतर-बाहर के गुरु हो, मुझे ऐसी मति दो जिससे मेरा प्रेम तुम्हारे नाम के प्रति अधिक हो। कृपासागर बंधु कृष्ण मुझे कृपा दृष्टि से देखें- वासनालिप्त को शरण दें जिससे उसका अहंकार दूर हो। मैं देवकी के पुत्र कृष्ण को नमस्कार करता हूं - मैं परम अनाथ तुम्हारे चरणों को प्रणाम कर भक्ति का प्रसाद मांगता हूं। ब्रह्मा, महेश्वर तथा इन्द्र जिसके शरण में जाते हैं, उसी करुणासिंधु के चरण के अतिरिक्त मेरी अन्य गति नहीं है, प्राण यदुपति माया के निग्रह में परम आतुर हुआ हूं। अनाथ के नाथ हरि तुम्हारे बिना मेरी और कोई गति नहीं है। हे प्रभु भगवंत इस संसार में जितने पापी हैं, मैं उनकी सीमा हूं, प्रभु मुझे अपने चरणों में स्थान देना[२]। नंद नंदन बाल गोपाल परमानंद की जय हो, जिसके पद कमल की धूलि की वंदना सम्पूर्ण संसार करता है, जिसके रोम रोम में अणु परमाणुओं की भांति कोटि कोटि ब्रह्मांड हैं -- नंदनंदन कितने नाम धारण कर लीला करते हैं इसे कौन जानता है, संसार के जनों के तारने के निमित्त ही दीनदयाल अवतार लेते हैं -- परम मूर्ख माधव दीन कहता है कि मेरी गति नंद कुमार है[३]। बनमाली गोपाल जिसके हाथ में शंख, चक्र, गदा, पंकज है, वह पीतांबर धारी, श्यामसुन्दर हरि भक्त जनों के भय को दूर करता है-- परमानंद, परम पुरुषोत्तम, परम करुणासिंधु गोपाल, कमलाकांत कमल दल लोचन भक्त जनों का आत्मीय बंधु है। मूढ़मति माधव दीन जगदानंद, जगत-जन जीवन, यदुकुल कुमुदिनी के इंदु गोपाल की प्रेम भक्ति का एक बिंदु मांगता है[४]। बाल गोपाल गोविंद का चिंतन करो, जो रत्न की शय्या पर सोता है और जिसके नेत्र विशाल हैं, जिसके

---

१ - माधवदेव- माधवदेवर वाक्यामृत पृ० ४२

२ - वही पृ० ४

३ - माधवदेव - बरगीत पृ० ३६

४ - वही - पृष्ठ ३८

दोनों हाथों में कमल है और जिसका मुख विशाल पंकज के तुल्य है । मुनि गण अमृत का त्याग कर जिस प्रकार तुम्हारे पद पंकज का रस पान करते हैं । आप की बाल लीला अमिय रस सागर है,माधव प्रमाण सहित कहते हैं[1]। राम,राघव,रघुकुल पंकज, दिनकर,राम मुरारि जय हो - जिसके पदकमलों की सकल भुवन अधिकारी सुरासुर भी सेवा करते हैं -- बालि की हत्या कर,सुग्रीव का पालन कर सागर में सेतु बांधा- जग जन के मंगल निमित्त राक्षसों सहित रावण का नाश किया -- जानकी,लक्ष्मण,सुग्रीव विभी-षण तथा मारुति सहित पुष्पक विमान पर अयोध्या आए । ब्रह्मा,इंद्र,शिव,गंधर्व, किन्नरों ने रघुनंदन की जय जयकार की[2]।

सूरदास कहते हैं -- हरि के चरण-कमल की वंदना करता हूं जिसकी कृपा द्वारा पंगु गिरि पर चढ़ सकता है,अंधे को सब कुछ दिखाई दे सकता है,बहरा सुन सकता है और गूंगे बोल सकते हैं और रंक सिर पर छत्र धारण कर चल सकता है । सूरदास करुणामय स्वामी के उन्हीं चरणों की बार बार वंदना करते हैं[3]। प्रभु कृष्ण अनाथ के नाथ हैं । हे शारंगधर नाथ गरुड़ पर चलने वाले,संपूर्ण पापों के नाशक हरि मुझ पर कृपा करो । मैं संसार जलधि में पड़ा हुआ,भोगों को चाहता हूं,किन्तु आप मेरे इन दोषों की ओर ध्यान न दें। नंदनंदन सुनो,सूरदास बिनती कर रहा है -- आप से क्या स्पष्ट करूं आप तो अंतर्यामी हैं[4]। सूरदास जी कहते हैं -- हे त्रिभंगी प्राणप्रिय कमल-दल-लोचन श्याम मैं आप के चरण कमलों की वंदना करता हूं । जो पद-कमल शिव के परम धन हैं,जिन्हें लक्ष्मी अपने हृदय से कभी दूर नहीं करतीं, पिता के क्रोध से कष्ट सहते हुए भी प्रहलाद जिन पादपद्मों को,मन,वचन कर्म से सम्हाल रखा,जिन पाद-कमलों के स्पर्श से सुरसरि का जल पावन हुआ,जिसका दर्शन करने से भारी पाप भी नष्ट हो जाते हैं । आप के वही चरण-कमल हमारे तीनों तापों और दुखों को हरण करने वाले हैं[5]। परमानंद दास कहते हैं -- मैं जगदीश के उन चरण- कमलों की वंदना करता हूं जो गोधन के संग दौड़ते थे,जिन पदों की धूल को गोपियों ने हृदय से लगाया,जिन चरणों को शिव और ब्रह्मा ने हृदय में रखा है[6]।

---

१ - माधवदेव - बरगीत पृ० ११८
२ - वही - पृ० १२४
३ - सू०सा० - पद १ - पृ० १५
४ - सू०वि० प० - पद - २६५ पृ० २५६
५ - सू० सा० - पद - १७ पृ० २१

वंदना : तुलसीदास जी कहते हैं मैं करुणालय रघुनाथ की वंदना करता हूं कि जिससे मेरी संसारी बुद्धि का नाश हो जाय । राम रघुकुल रूपी कुमुद पुष्प की चंद्रमा के समान प्रफुल्लित करनेवाले हैं, उनके चरणों की सेवा ब्रह्मा और शिव भी किया करते हैं । वह, अपने भक्तों के हृदयकमल में भ्रमर की भांति निवास करते हैं । वह बड़े प्रचंड अज्ञानरूपी अंधकार के नाश करने के लिए सूर्यरूप और अविद्यारूपी वन भस्म करने को अग्निरूप हैं[१] । श्री रामचंद्र जी की जय हो । जो शुद्ध सदास्वरूप, चैतन्य, व्यापक, अर्थात अंतर्यामी आनंदस्वरूप ब्रह्म हैं वही मूर्तिमान होकर नरलीला करने के लिए अव्यक्त से व्यक्त अर्थात साकार रूप में प्रकट हुए हैं । शिवजी का धनुष तोड़कर अभिमानी राजाओं का गर्व खर्व कर दिया और विजयी परशुराम का उन्नत मस्तक नत कर दिया, उन श्री रामचंद्र जी की जय हो[२] । मैं करुणा के स्थान ध्यानावस्थित और ज्ञान के कारण श्री नारायण को नमस्कार करता हूं । वे समस्त संसार के हित करनेवाले, दयालु हृदय वाले तप:शील, और भक्तों पर अनुग्रह करने वाले हैं[३] । श्रीरामचंद्र संसार के दारुण भय को दूर करने वाले हैं, जन्म मरण के चक्र से मुक्त कर देने वाले हैं, उनका सौंदर्य अगणित कामदेवों के समान है, शरीर नवीन मेघ जैसा सुन्दर है ऐसे पुण्यश्लोक जानकीरमण श्री रघुनाथ जी को मैं नमस्कार करता हूं[४] ।

---

१ - वि० वि० प० - पद - ६४ पृ० १४१

२ - वही - पद - ४३ पृ० ६६

३ - वही - पद - ६० पृ० १३३

४ - वही - पद - ४५ पृ० १०१

बाल लीला

प्रभात जागरण : हे वत्स गोपाल उठो उठो, कमलनयन प्रभात हो गया 'यह बार बार कह यशोदा कृष्ण को जगा रही हैं मेरे सुन्दर मुख प्राणधन निद्रा त्याग करो, बापु गोविंद तुम पुरुष शिरोमणि हो-- अपना पुत्र जान गोपी यशोदा ने अपने छाती से लगा गोद में बांध लिया-- उनके मुख को बार बार चूम कर अत्यन्त मग्न हुईं, सिद्ध मुनि गण जिस हरि का चिन्तन नहीं कर पाते हैं वही यशोदा के गोद में है -- मूर्ख माधव कहते हैं कि वह भक्ति द्वारा मिला।[1] चंद्रमुखी वत्स उठो ~~उठो~~ उठो यशोदा यह बार बार बोल कर कृष्ण को जगा रही हैं -- मलय पवन धीरे धीरे बह रहा है, कोकिल ने सुललित रव त्याग दिया, रवि के स्पर्श से तिमिर का नाश हो गया । मेरे ठाकुर उठो, गोप बालकों के साथ दधि, दुग्ध, घृत, व्यंजन तथा भात, शिंगा, बेत, बेणु हाथ में लेकर गोष्ठ की ओर चलो । यशोदा के शब्द सुन हृषिकेश गोप बालकों के साथ गोष्ठ में गये।[2] कमलापति प्रभात में ~~निद्रा~~ निद्रा का त्याग करो, गोविंद उठो, हम तुम्हारा चंद्र मुख देखें- रवि की किरणों द्वारा अंधकार नष्ट हुआ और दिशायें धवल वर्ण की हो गई, विकसित शतपत्रों पर भ्रमर उड़ रहे हैं, ब्रजवधूएं तुम्हारा गुण गान गा दधि मंथन कर रही हैं । दाम, सुदाम तुम्हारा नाम लेकर बुला रहे हैं देखो बलराम उठकर आ गया, नंद गोष्ठ गए और ग्वाले दूर पहुंच गये -- गोपाल उठो, सुरभी चरने लगी ।[3] प्रातः समय यशोदा जननी श्याम को जगाने के लिये उनका मुख चूम रही हैं, मेरे लाल मदन गोपाल उठो, गोप बालक तुम्हें बुलाने आये हैं -- संचित माखन, रोटी तथा खाने के लिये मुरली लेकर वृंदाबन जाओ और कालिंदी के कूल पर गायों को चराओ, आनंद करो-- नंद नंदन घर छोड़ गोधन चराने चलो ।[4]

सूरदास की यशोदा कृष्ण को जगाने के लिए बार बार कहती हैं आनंद निधि प्यारे नंद नंदन प्रातःकाल हो गया है, गोपाल लाल जागो, तुम्हारे नयन कमल दल के समान विशाल हैं, ये प्रेम रुपी बावली के हंस हैं, तुम्हारे मुख पर करोड़ों कामदेव उत्सर्ग कर दिये।

---

१ - माधवदेव - बरगीत पृ० १०६

२ - वही - पृष्ठ ११०

३- वही - पृ० १११

४ - सं०वि० कु० ब० - अंकीय नाट १८०

देखो सूर्योदय हो रहा है,चंद्र की किरणें प्रकाशहीन हो गईं तारों का तेज नष्ट हो गया, दीपक का प्रकाश मंद होने लगा,मानो ज्ञान के प्रकाशित होने से संसार के भोग विलास छूट गए आस भास रूपी अंधकार को संतोष रूपी सूर्य की किरणों ने जला दिया । पक्षियों का समूह मधुर स्वर में बोल रहा है । मेरे लाल तुम मेरे जीवनधन हो, पक्षियों का गान ऐसा लगता है मानों वंदी जन बेद पाठ करते हों कौटिमार । तुम्हारी जय जय कार कर रहा है कमलों का समूह खिलने लगा है,चंचरीक कमलों को छोड़कर दूर चले गए,मानो वे वैराग्य प्राप्त कर समस्त शोक और घर का त्याग कर तुम्हारा गुण गान करते हों । मां के इन रस मय शब्दों को सुनते ही अतिसय दयाल प्रभु जग गए।[१] जागो,जागो गोपाल लाल,मेरे परम प्रिय पुत्र प्रात: काल अत्यन्त पवित्र शोभा है ,इतनी देर तक नहीं सोना चाहिए । ग्वाले प्रत्येक क्षण आ आ कर तुम्हारे मुख को देख लौट जाते हैं,जैसे अविकसित कमल कोष को देख भौरों की पंक्ति लौट जाती हो । तमाल के सदृश श्याम वर्ण वाले मेरे पुत्र यदि तुम्हें मेरा विश्वास न हो तो तुम स्वयं ही निद्रा का त्याग कर अपने विशाल नेत्रों से देखो ।[२] आनंद विभोर हो माता यशोदा कहती हैं: मेरे लाड़ले जागो,कुँवर कन्हाई उठो,तुम्हारे लिए मैं माखन,दूध-दधि और मिश्री लाई हूं ,उठो और पकवान मिठाई खाओ । तुम्हारे सखा गण प्रात: से ही द्वार पर खड़े तुम्हें पुकार रहे हैं `श्यामसुंदर सूर्योदय हो गया बन को चलो । इन शब्दों को सुनकर यदुराम जाग गए ।[३] मेरे लाड़िले भोर हुआ,जागो,हे यदुनाथ तुम्हारे सब सखा द्वार पर खड़े हैं,उनके साथ खेलो । मुझे अपना मुख दिखला कर तीनों ताप का नाश करो । मेरे नेत्र तुम्हारे मुखरूपी चंद्र के चकोर हैं इन्हें मधुपान कराओ ।[४] तब हँसते हुए हरि ने अपने मुख पर से वस्त्र हटा दिया और सेज से उठ गए ।

<u>यशोदा के साथ खेलना :</u> गोविंद यशोदा के साथ खेल रहे हैं -- सृष्टि,स्थिति लय का जो कारण है जिसकी लीला कोई नहीं जानता है,वही महेश्वर गोप कुमार के रूप में संसार के लिये विहार कर रहा है । जो कृपामय देवों का देव है,जिसकी सेवा द्वारा

---

१ - कृ०बा०मा० १२६ पृ० १२५

२ - वही - १२८ - पृ० १२६

३ - वही - १३० - पृ० १२७

४ - पद - १५२ पृ० १४४

मुक्ति प्राप्त होती है, वही नाना रस में खेल रहा है[1]। यशोदा ने कृष्ण को गोद में लिया और बार बार मुख भर चूमती हैं, हाथ भर पयोधर पकड़ कृष्ण ने पय पान किया, जात के हरि यशोदा की गोद में कभी मुख देख हंस देते हैं। जिस देव की सेवा सनक, सनातन करते हैं वही यशोदा के गोद में शोभित हो रहा है[2]। भक्तों के परमधन जग जन जीवन कृष्ण यशोदा को देख हंस हंस पैर घिस रहे हैं, कभी बैठ कर कभी यशोदा को देख कर हांफना आरंभ करते हैं, टूटे फूटे शब्दों में यशोदा को 'माइ माइ' कह कर बुलाते हैं, यशोदा को देख उनका मन शीतल होता है। सुंदरी यशोदा के स्तन पकड़ कृष्ण पयपान करते हैं। यशोदा हंस कर कृष्ण को चूमती हैं[3]।

यशोदा के साथ खेलना : सूरदास ने कृष्ण यशोदा के खेल का वर्णन किया है। यशोदा घर में भोजन बना रही हैं, कृष्ण नंद भवन में खेल रहे हैं और किलकारि मारते हुए बोल रहे हैं। इसी समय यशोदा ने बुलाया, कि मोहन दौड़ कर क्यों नहीं आते हो। यह शब्द सुनते ही कृष्ण माता के निकट चले गए। यशोदा ने उन्हें गोद में उठा लिया अंचल से धूल पोंछने लगीं[4]। भाग्यवती यशोदा जी धन्य हैं, वे कृष्ण को खेला रही हैं। छोटी छोटी भुजाओं को पकड़ कर खड़ा होना सिखाती हैं, वे लड़खड़ा कर गिर जाते हैं फिर घुटनों के बल चलने लगते हैं। पुन: भुजाओं को पकड़ कर दो एक पग चलाती हैं[5]। कृष्ण ठुमुक ठुमुक कर चलते हैं, वे देहरी तक चलकर पुन: वहीं चले आते हैं। वे देहली नांघ नहीं पाते हैं, बार बार गिर पड़ते हैं। करोड़ों ब्रह्मांड क्षण भर में वे पार करते हैं और उन्हें समाप्त करने में विलंब नहीं लगता है। उसे नंदरानी गोद में लेकर नाना प्रकार के खेल खेलाती है[6]। हरि अपने आंगन में कुछ गाकर नाच रहे हैं -- भुजा उठा कर कभी कभी कजरी-धौरी गायों को पुकारते हैं, कभी बाबा नंद को बुलाते हैं, कभी घर में चले आते हैं। अपने हाथ से माखन ले कुछ मुख में डालते हैं। कभी खंभे में दिखाई देने वाले अपने प्रतिबिंब को नवनीत खिलाते हैं। यशोदा यह लीला देख कर अत्यन्त हर्षित होती है[7]।

---

१ - माधवदेव - बरगीत पृ० १३७
२ - वही - पृ० १४८
३ - वही - पृ० ११५
४ - वही - पद - ५४ पृ० ६९
५ - वही० - पद - ५५ पृ० ७०
६ - सू० सा० पद - २२ पृ० ३६
७ - वही - पद - २७ पृ० ३७

रोदन : माधव के नेत्रों से अविरल अश्रुधारा बह रही है,उनकी कटि रस्सी से कस कर बांधी हुई है । लाल लाल आखें उनकी छोटी हथेली से ढंकी हैं,नवनीत चोर मंद मंद रोते हैं श्याम के प्रत्येक अंग पर नवनीत के कण सुशोभित हो रहे हैं,ऐसा प्रतीत होता है जैसे गगन के मध्य तारे हों । योगी भक्ति द्वारा जिसकी पद धूलि तक लाभ नहीं कर सकते - उसी का शरीर भक्ति के बल से बंधा हुआ है । माधवदास कहते हैं मां सुन इस पुत्र को तुमने कैसे पाया है[1] । हे वत्स गोपाल तुम दुखी न हो,मैं तुम्हारी बलि जाती हूं । तुम्हारे दोनों अधर मणि के समान प्रज्वलित हैं,शेष- दुख के कारण तुम्हारा मुख मलीन हो गया है । सभी दास- दासियां हाट-बाट चली गईं - तुम्हारा चंद्र मुख आंसुओं से मलीन हो गया है -- तुम्हारे पिता नंदघोष घर पर नहीं हैं मैं यमुना में जल भरने गई थी । सब मक्खन पाले हुए बंदरों ने खा लिया इसके लिये तुम क्यों रोष करते हो । मेरे माणिक पुतली तुम्हारा शरीर धूल से सना हुआ है, रोते रोते गला बैठ गया है । मैं तुम्हें खाने के लिये मलाई का लड्डू और मक्खन दूंगी । यह सुन कृष्ण ने रोना बन्द कर दिया[2] । स्वयं ही पात्र दुग्ध माखन खा कृष्ण भूमि पर लोट रहे हैं । यदुमणि झुम झुम कर रो रहे हैं कि किसने हमारा नवनीत खा लिया। पात्र को इधर उधर फैंक वह यह कहकर रो रहे हैं कि मैंने अभी इसमें दही रखा था, यहीं पर वंशी रखी थी उसे किसनेलिया यह कह और गाली दे यदुराय रो रहे हैं[3] ।

सूरदास की गोपियां यशोदा से कहती हैं यशोदा श्याम तुम्हारा मुख देख कर खिनकी ले ले कर रो रहा है,उसके बंधन छोड़ दो । यद्यपि तुम्हारा पुत्र उधम करता है तो भी वह तुम्हारे गर्भ से उत्पन्न हुआ है -- क्या हुआ यदि घर के लड़के ने चोरी करके माखन खा लिया । मैंने कोरी मटकी में देव पूजन के लिए दही जमाया था इसने जूठा कर दिया पर क्या मैं क्रोध करती हूं[4] । सखी देखो `कान्ह खिनकी ले- लेकर रो रहा है । छोटे से मुख में मक्खन लिपटा है - उसे भी वह भय भीत हो आसुंओं से धो रहा है ।

---

१ - माधवदेव - बरगीत पृ० १३७

२ - वही - १३८

३ - वही - १४६

४ - बा० मा० - २२८ पृ० २०२

मक्खन के लिए मोहन ऊखल से बांधा गया है और वह व्रज के लोगों को देख रहा है। गोपियों को देख लज्जा से वह अपनी आंख छिपाता है।[1] सूरदास जी कहते हैं कृष्ण बार बार नेत्रों में आंसू भर लेता है। यशोदा/बालक के मुख को देखो इस प्रकार बुद्धि खोकर क्रोध क्यों करती हो ? इसके पेट की दुसह दुख दायिनी रस्सी को खोल दो और हाथ का बेंत डाल दो। क्या छोटे बच्चे पर इस प्रकार क्रोध किया जाता है।[2]

माखन लीला : नंदनंदन गोपियों के सम्मुख हाथ फैलाकर नवनीत मांग रहे हैं। गोपियों मुझे माखन दो यह कृष्ण बोल रहे हैं, जो हरि चार पदार्थों को प्रदान करता है वही मुरारि माखन मांग रहा है, जिस देव की सेवा शिव तथा विरिंचि करते हैं वही नवनीत मांगता फिरता है। जिन हाथों से अभय-दान करता है वही हाथ आज गोपियों के निकट फैला हुआ है। भक्ति के अधीन हो प्रभु नवनीत मांग रहे हैं।[3] ओ मेरी मां यशोदा मैं आज अत्यन्त भूखा हूं, जो मक्खन तुमने दिया था वह रूखा था, इसलिये नहीं खाया। आज प्रभात से ही मैं खेल रहा हूं, कुछ भी नहीं खाया। मां, तुमने मुझे नहीं बुलाया, मैं क्षुधा से अत्यन्त व्याकुल हूं। कृष्ण के खाली पेट को देखकर यशोदा की आंखों से आंसू बहने लगा पूत पूत कह, अंचल से श्याम के शरीर की धूल पोंछी तथा गले लगा दूध पिलाने लगीं।[4] गोपाल दूध तथा नवनीत खा कर भाग रहे हैं -- यशोदा उनके पीछे उन्हें मारने के लिये दौड़ रही हैं। वेद शिरोमणि चराचर हरि को मारने के लिये नंद की घरनी दौड़ रही है। मुरारि भय के मारे रो रहे हैं। यशोदा ने दौड़कर कृष्ण का हाथ पकड़ लिया। जिसका नाम स्मरण करने से यम कंपता है वही प्रभु यशोदा के भय से कांप रहे हैं। घर ला गोपी ने अत्यन्त ही क्रोध से उन्हें बांधना आरंभ किया, माखन चोर को गाली दे यशोदा बांध रही हैं, पर रस्सी कम हो जाती है इस पर गोपियां हंस रही हैं।[5] गोविंद गोपियों के सम्मुख नाच रहे हैं, हाथ फैला कर माखन मांग रहे हैं, जो कर भक्तों का भय दूर करता है, उसी हाथ को फैला मुरारि माखन मांग रहे हैं। गोपियां कहती हैं गोपाल तुम सुन्दर ढंग से नृत्य करो, हम तुम्हें नवनीत देंगे। माखन की आशा से गोविंद नाच

---

१ - बा०मा० - २२६ पृ० २०३

२ - वही - २३१ पृ० २०५

३ - मा०व० - पृ० ५५

४ - वही - पृ० ५६

५ - वही - पृ० १००-१०१

रहे हैं, गोपियां ताल दे रही हैं । जो हरि तीन भुवन का अधिकारी है वही गोकुल में माखन याचना करता है[1] । कृष्ण यशोदा से हाथ फैला कर माखन मांग रहे हैं । मां तुमने पहले माखन देने को कहा था वह अब मुझे दो, आज बिना नवनीत पाये तुम्हें न छोड़ूंगा । मां का अंचल पकड़ कर नारायण कहते हैं `मां आज तुम्हें न छोड़ूंगा । अपं स्यंगवी हरि की पूजा के निमित्त जो माखन मां ने रखा था, उसे बाल कृष्ण को दिया । चराचर गुरु हरि ने प्रसन्न हो नवीन नवनीत खाया और पुन: नाचना प्रारंभ किया[2] ।

`आज कहां जाओगे` गोपियों ने कृष्ण से कहा, बनमाली उनकी आंख देखते भयभीत हो गये द्वार पर हाथ फैला कर गोपी खड़ी होगई कि आज मुरारि किस प्रकार माखन चुरायेंगे घर में चोर है, घर में चोर है, यह कह गोपियां चिल्लाने लगीं और गांव की सब गोपियां आ गईं । सब ने मिल कर हरि को चोर पकड़ा[3] । गोपियां यशोदा से कहती हैं मेरी मां आप दुख न करें हैं हमने आप के पुत्र कानाह को देखा है । कन्हैया चोर चतुराली कर रहे थे, गोपियां ने उन्हें पकड़ा है भारत के लोग हरि की साक्षी को मानते हैं उन्होंने अपने हाथ का नवनीत गोपियों के मुख में लगा दिया और कहने लगे `मैं कैसे चोर हूं, तुम्हीं चोर हो तुम्हारा मुख इसका साक्षी है।` गोपियां अत्यन्त लज्जित हुईं और निरुत्तर हो गईं[4] । यशोदा कृष्ण से कहती हैं कि तुमगोपियों के पारा में न जाना, मैं कब तक तुम्हारा यह झगड़ा सुनूंगी कोई कहती है कि तुमने चोरीसे माखन खा लिया, कोई कहती हैं दधि दुग्ध नष्ट कर दिया, कोई कहती हैं कि तुमने मापने का पात्र फोड़ दिया, इसी अवस्था में तुम इतने चंचल हो गये हो । मेरे घर में इतना दूध-दही है कि तुम नहीं खा सकते हो। तथापि तुम्हारी पूर्ति नहीं होती और तुम घर घर चोरी करने जाते हो । जितनी इच्छा हो पेट भर कर खाओ, दरिद्र के पुत्र की भांति इधर इधर उधर चोरी न करते फिरो यदि इतने पर भी तुम न मानोगे तो मैं अवश्य छड़ी से पीटूंगी[5] ।

सूरदास की यशोदा ने दही मथकर कृष्ण के हाथ पर नवनीत रख दिया । मोहन थोड़ा सा मक्खन अपने अधरों से लगाते हैं, इसे देख यशोदा माता अत्यन्त प्रमुदित हुईं[6] । स्वयं ही माखन रोटी खा कर उसकी प्रशंसा करतेहैं । यशोदा किसी गोपी से कहती हैं `सखी सखी आज प्रात: समय जब मैं दधि मथने को आई और दही से भरे मटके को मणि मय

---

१ - मा०ब० पृ० १४३
२ - वही पृ० १४७
३ - वही पृ० १३३
४ - वही पृ० १४२
५ - अं० ना० २९५

खंभे के निकट रख मैंने मथनी की रस्सी पकड़ी । दधि मंथन का शब्द सुनते ही श्याम मेरे समीप हंसता हुआ चला आया । माखन के गोले के दो भाग कर के दोनों[1] हाथों पर रख कर एक साथ दोनों हाथों से मुंह में डालते हुए मुसकराता जाता था। यशोदा कहती हैं मेरे कुंवर कन्हाई मैं तुम पर बलि जाती हूं कुछ मधुर स्वर से गाओ, अपने बाबा नंद को अपना नृत्य दिखाओ मेरे कंठ में अपनी भुजाएं डाल दो, दूसरे जंतु[2] की ध्वनि सुनकर क्यों भयभीत होते हो ? तनिक नाच कर मेरी इच्छा पूरी कर दो ।

माखन चोरी : सूरदास के श्याम उस ग्वालिन के घर में प्रवेश करते हैं जिसके द्वार पर कोई नहीं है हरि को आता हुआ देख गोपी छिप गई । शून्य सदन में मथनी के निकट बैठ गई । मक्खन की भरी कमोरी देख वे मक्खन खाने लगे और अपने प्रतिबिंब को भी संगी समझ कर खिलाने लगे[3] । सखि ! गोपाल को मक्खन खाने दे, चुप रह, उसके मुख पर दही लिपटने दे । इसकी भुजा पकड़ कर यशोदा के सम्मुख ले चलूंगी -- इसका चौगुना नवनीत यशोदा से मागूंगी । क्या तुम समझती हो कि हरि कुछ भी नहीं जानते हैं ? वे कान देकर सुन रहे हैं[4] । हरि सखाओं को शून्य घर के बाहर छोड़ कर भीतर गए, नवनीत पा कृष्ण ने अन्य सखाओं को बुलाया और हाथ भर भर मक्खन उन्हें दिया । दधि के बूंदें इधर उधर हृदय पर छिटक गईं, जिसे देख के मन ही मन डरते थे[5] । हरि आज तुम कहां जाओगे । सदैव तुम मेरे छींके का दधि- माखन चुरा कर खाते रहे हो । आज ब्रज सुन्दरी ने कृष्ण को द्वार पर रोक लिया । बताओ आज दूध-दही पी के कैसे भगोगे[6] ? गिरधर ने गंडूष से दधि सुन्दरी के नयनों पर छिड़क दिया और भाग गए । सूरदास की एक गोपी ने चोरी करते कन्हाई को पकड़ लिया । श्याम वे तुमने रात-दिन मुझे सताया अब मेरे हाथ में आए हो । मेरा सारा मक्खन और दही तुमने खा लिया उधम किया । लाला अब तो तुम मेरे हाथ में पड़ गए हो, मैं तुम्हें अच्छी तरह पहचानती हूं । दोनों हाथ पकड़ कर उसने कहा`अब कहां जाओगे ? मैं सारा मक्खन

---

१ - बा०मा० - पद १०७ पृ० १०९

२ - वही - पद - १०८ पृ० ११०

३ - सू०सा० - पद - ४२ पृ० ४१

४ - वही - ४४ पृ० ४१

५ - वही - ४६ पृ० ४२

६ - वही - ४७ पृ० ४२

यशोदा जी से मंगा दूंगी । तब श्याम ने कहा `तेरी शपथ मैंने थोड़ा भी नवनीत नहीं खाया,मेरे सखा सब खा गए ।`कृष्ण ने उसकी ओर देख विहंस दिया उसका क्रोध शांत हो गया । गोपी ने कृष्ण को हृदय से लगा लिया [1]। माता यशोदा कहती हैं पुत्र गोरस के लिए दूसरे के यहां क्यों जाते हो ? घर की सुरभी,कारी,धौरी का माखन क्यों नहीं खाते हो ? ये गोपियां प्रतिदिन उलाहना देने के बहाने प्रतिदिन प्रात: उठकर चली आती हैं । किकट बातें बना कर वे अनहोने दोष लगाती हैं -- निपट निशंक गोपियां नंद के सम्मुख झगड़ा करती हैं जिसे सुन कर नंद अप्रसन्न होते हैं और कहते हैं कि तुम कृपण हो तुम्हारे घर पुत्र का पेट नहीं भरता है [2]।

स्नान न करना : यशोदा के आगे कृष्ण कहते हैं आज मैं स्नान न करूंगा । हमारा शरीर तृण से कट गया है,दिन भर गाय ढूंढता फिरता रहा हूं - स्नान करने से पानी लगेगा तथा मेरा शरीर जलने लगेगा । मां,मैं बिनती करता हूं कि आज बिना भोजन किये ही सो रहूंगा । पुत्र की बात सुन यशोदा के नेत्रों से आंसू झरने लगे लगा । यशोदा ने कृष्ण से अनुरोध किया,पुत्र दुखी न हो,मैं नवनीत लगा कर तुम्हें शीतल जल से स्नान कराऊंगी, तुम्हारा शरीर ठंडा होगा जलेगा नहीं,स्नान करके अमृत अन्न खाओ [3]। सूरदास की यशोदा ने जब स्नान करने को कहा,तो श्याम रोने लगे और भूमि पर लोटने लगे । तेल,और उबटन आगे रख कर लाल को पुकारने-दुलारने लगीं । `मोहन`मैं तुम पर बलि जाऊं,तुम स्नान न करो किन्तु व्यर्थ रोते क्यों हो ?`उबटन तैलादि को छिपा कर पीछे रख दिया । अनेक प्रकार से यशोदा उन्हें समझाती हैं किन्तु वे नहीं मानते हैं [4]। माता कहती हैं `मोहन अब आओ तुम्हें स्नान कराऊं यमुना से जल लाकर उसे तुरन्त पात्र में भर कर चूल्हे पर चढ़ा दूं । केशर का उबटन तैयार कर तुम्हारे शरीर का मैल छुड़ा दूं । यशोदा खीझ कर कहती हैं कि इस चंचल को किसी भी प्रकार हाथ में नहीं पकड़ पाती हूं [5]।

बन में भोजन : प्रभात होते ही कृष्ण ने बंशी बजा अपने सखाओं को बुला लिया और कहा भाइयों आज हम लोग बन में भोजन करेंगे । सखा गण दधि-अन्न लेकर आए । गांव गांव

---

१ - सू०सा० -- पद० ५० पृ० ४२-४३

२ - वही -- ५७ पृ० ४४

३ - वही -- पृ० ६०

४ - वही -- पद-२८ पृ० ३७

५ - सू० बा० मा० - ११० पृ० ११२

से सहस्त्रों गायें चरने आईं,कृष्ण ने असंख्य बछड़ों को अपने भाग में ले लिया । पीतांबर धारी कृष्ण के मुकुट में मयूर पंख लगा हुआ है और शिंग-बेत उनके हाथ में है । हंस हंस गोपाल गोप बालकों के साथ वंशी बजाते हैं उनके रूप की तुलना कोटि कामदेव से नहीं की जा सकती है[१] । गोपाल के चारों ओर गोप बालक गण ऐसे बैठे हैं,जैसे कमल के चारों ओर पत्ते हों -- उसके मध्य में नंद सुत पंकज केशर के समान सुशोभित हो रहे हैं । सुगंधित चारु भोजन को विभिन्न आकार के पत्तों के ऊपर रखा है । दधि,दुग्ध नवनीत आदि प्रेम पूर्वक खा रहे हैं और उनके वाम कक्ष में शिंगा,बेत,वेरटि तथा वंशी विराजमान है । बायें हाथ के नीचे अन्न व्यंजन को दबाकर यदुराय भोजन कर रहे हैं -- कहीं कोई करताल बजाता है,कोई गाता है,कहीं कोई प्रसन्न हो नृत्य कर रहा है । गगन से देवता गण इस दृश्य को देख प्रमुदित हो रहे हैं और शिर पर पुष्प वर्षा कर रहे हैं[२] ।

गोचारण लीला : अब सखि नंद गोपाल को देखो -- उनके कंठ में कदंब की माला तथा हार,किरीट कुंडल मणि शोभित हो रहे हैं,हाथ में वेणु है और गायों के आगे वे हैं और गायों के पीछे बछड़े दौड़ रहे हैं । धाम सुदाम आदि बालक गण दिन भर उनके साथ खेलते हैं[३] । अरे देखो,अरे यह देखो,श्याम का शरीर कोटि भानु के समान प्रकाशित हो रहा है,विहार करने चले जा रहे हैं । पीछे अहीर बालक हैं और आगे गायें चल रही हैं, सुन्दर मुख से कान्हा वेणु बजा रहे हैं,मधुर मधुर हास्य कर वे अरुण नेत्रों से देख रहे हैं । वंशी के स्वर से माधुर्य भर रहा है,गजराज की भांति वे धीरे धीरे चल रहे हैं । स्वन इस काले शरीर में कितना माधुर्य है । श्याम के शरीर का निर्माण किस विधि ने किया कि उन्हें देख कामदेव भी छिप जाता है[४] । मां देखो कृष्ण मधुर रूप का,यमुना पुलिन पर सुरभि चरा रहे हैं । मनमोहन श्याम का रूप मदन को लज्जित करने वाला है,उनका मुख करोड़ों चंद्रमा से अधिक सुन्दर है,जिसे देख संसार मोहित हो जाता है,उनका शरीर तीन स्थान पर वक्र है,भौंहें सुवलित तथा नयन कमल जैसे हैं[५] ।

---

१ - वही पृ० ११८- ११६

२ - वही पृ० १२० - १२९

३ - वही पृ० ८०

४ - वही पृ० ८४

५ - वही ८४

गोविंद गोप शिशुओं के साथ वृंदावन जा रहे हैं,मोहन वेणु बजाते हैं,गायें प्रसन्न हो दौड़ती जाती हैं समस्त बालकों में कृष्ण ही सुन्दर हैं -- शिंगा-वेणु का स्वर नभ मंडल तक फैल जाता है अहीर बालक आगे बढ़ `जय हरि` `जय राम` बोलते हैं । कोई नाचता है,कोई बजाता है,कोई बजाता है,कोई बछड़ों की पूंछ पकड़ कर उन्हें दौड़ाता है [1]। कमल लोचन श्याम शिशुओं सहित वृंदावन जा रहे हैं,सुरभी आगे चलती है,वे कनक पांचनी हाथ में लिये उनके पीछे पीछे दौड़ते हैं । कानों का कुंडल कुटिल कुंतल हिलता है,मयूर पंख सिर पर फलमला रहा है । कटि हिलने के कारण पीत वर्ण की धोती इधर उधर उड़ जाती है,चरणों का मंजिर बजता है,उनकी दोनों भौहें मदन के धनुष के तुल्य हैं । उनके श्याम शरीर पर रत्न भूषण ऐसे सुशोभित हो रहे हैं जैसे नव घन में बिजली का प्रकाश । वृंदावन में गायों को एकत्र कर कृष्ण शिशुओं के साथ खेल रहे हैं [2]। मेरे गोविंद गोधन के संग बंशी बजाते हुए दौड़ते आ रहे हैं । उनके शरीर पर गोरज उस प्रकार शोभा देता है मानों उदय होता हुआ चंद्र । व्याकुल व्रज की रमणियों को उन्हें देख हर्ष हुआ परम पुरुष को प्राप्त कर वे सुख भर देखती हैं [3]।

सुरदास के कृष्ण कहते हैं `आज मैं गाय चराने जाऊंगा । वृंदावन के अनेक प्रकार के फलों को अपने हाथ से तोड़ कर खाऊंगा ।` इस माता यशोदा कहती हैं `मेरे लाल ऐसा न कहो,अपनी ओर तो देखो,तुम्हारे पग छोटे हैं,वन में कैसे चलोगे घर लौटते लौटते रात्रि हो जायगी । गोप बालक गण प्रात:काल गायों को चराने के लिए ले जाते हैं और संध्या तक घर वापस आते हैं तुम्हारा मुख कमल धूप में घूमते घूमते कुम्हला जायगा ।` श्याम ने उत्तर दिया `तेरी शपथ मुझे धूप लगती ही नहीं,भूख थोड़ी भी नहीं है [4]।` घनश्याम वन से गायें चरा कर आ रहे हैं । संध्या समय उनके श्यामल मुख पर गोपद रज लगी हुई है । मयूर पिच्छ के समीप अलकें ऐसी शोभा देती हैं मानो भौरें अमृत पूर्ण खिले कमल के समान मुख के चारों ओर रुचि पूर्वक बैठे हों और वे उड़ाने से भी नहीं उड़ते हैं । हृदय पर मुक्ता माल सुशोभित है [5]। नीलमणि माता यशोदा से कहते हैं मैया,बलदाऊ बहुत

---

१ - वही पृ० ११२

२ - वही पृ० ११५

३ - वही पृ० ११६

४ - सू०सा० पद ३ पृ० ४६

५ - वही पद ११ पृ० ५१

बुरा है। उसने सब बालकों से कहा `वन में बड़ा अद्भुत दृश्य है सभी बालक एकत्र होकर आ जाओ। मुझे भी पुचकार कर सघन झाऊ में ले गया -- और वहां पहुंच कर यह कह कर भाग गया भाग चलो नहीं तो हाऊ काट कर खा जायगा। मैं वहां भयभीत हो रोता - कांपता रहा, किसी ने मुझे धैर्य न दिलाया। मैं भयभीत होने के कारण न भाग सका, वे आगे भागते चले जा रहे थे[१]। मां, मैं गाय न चराऊंगा। सब ग्वाल मुझे घसीटते हैं, मेरे पैर में पीड़ा होती है। यदि तुम्हें मेरी बातों का विश्वास न हो तो बलदाऊ से अपनी शपथ दिला कर पूछो। यह सुन कर यशोदा ग्वालों को गाली देती हैं। मैं अपने पुत्र को मन बहलाने के लिए वन भेजती हूं और ये मेरे अबोध बालक को दौड़ा दौड़ा कर मार डालते हैं[२]। सूरदास के गोपाल ने वृंदावन को दावाग्नि के कोप से बचाया। केवल ग्वालों के आंख मूंदते ही सारी अग्नि बदन में समा गई और ब्रज बाल अभय हुए[३]। यह वृंदावन की रेणु धन्य है जहां नंद किशोर वेणु बजाकर गाय चरा रहे हैं[४]।

<u>वंशीवादन</u> : पीतांबर धारी कृष्ण वेणु बजाते हुए आ रहे हैं, चंदन का तिलक, सुंदर अलकें और चारु भ्रुव और भुजाएं सबल हैं। श्याम के शरीर पर पीत वस्त्र ऐसा सुशोभित होता है मानों मेघ की विद्युत हो। जिस प्रकार निर्मल गगन में तारक गण प्रकाशित होते हैं उसी प्रकार श्याम के अंगों पर रत्न-भूषण सुशोभित होते हैं[५]। सखि, कृष्ण वृंदावन जा रहे हैं, मेरे दो चकोर रूपी नेत्र उनके चंद्रमुख का पान करना चाहते हैं, अधरों पर वंशी रख, नयन के एक कोने से सुधा वर्षा कर रहे हैं। उनके मुख की कांति मणि के समान है और दांत मुक्ता की पंक्ति के तुल्य हैं[६]। सखि, हम तो विरहणी नारी हैं, उनके रूप को देख पुष्पधन्वा भी चुप हो जाता है।

<u>मुरली :वंशी वादन:</u> -- सूरदास के हरि ने जब मुरली अधर पर रखी। चर, अचर, तथा पवन स्तंभित हो गया और यमुना का जल स्थिर हो गया- श्याम की मदन छवि का दर्शन

---

१ - सू०सा० पद १२ पृ० ५१
२ - वही - पद - १३ पृ० ५१
३ - वही - पद - १० पृ० ५१
४ - वही- पद - १४ पृ० ५२
५ - मा० व० पृ० ६४ - ६५
६ - वही पृ० १०८

कर पक्षियों तथा मृगों का विभोर हो गया । पशु मोहित हो गए: सुरभी दांतों में तृण दाबे खड़ी रहीं । सुन सनकादि मुनि मोहित हो गए[1] । श्याम के अधर की मुरली सुनते ही सब नारियां अपने तन की सुधि बिसर गईं -- जो जिस अवस्था में थी वैसे ही रह गईं उनका सुख - दुख नहीं कहा जा सकता है -- चित्र लिखी सी सब गोपियां हो गईं[2] । जिस रस के लिए गोपियों ने छट ऋतुओं में तप किया वही रस मुरली पी रही है । यह कहां थी, कहां से आई, किसने इसे बुलाया ? ब्रज नारियां इसे देख चकित हुईं[3] । सखी, श्याम को मुरली बजाने दे, अपने कानों से क्यों नहीं सुधापान करती हो, उन्हें वर्जित न करना । सुनती नहीं हो वह बार बार राधा का नाम ले रही हैं । तुम सोचती हो कि प्रभु तुम्हें भूल गए हैं[4] । सखी । मोहन ने वंशी बजाकर मुझे मोहित कर लिया है, मैं उन्हीं पर मोहित हूं । संध्या के समय वे मेरे द्वार के सम्मुख से होकर निकले तभी से मैं उन्हीं की ओर देख रही हूं । किसका शरीर घर की सुधि किसे, हरि कौन हैं और मैं भी कौन थी, मुझे पता नहीं । जब से उन्होंने मेरा मन आकर्षित कर लिया वे नहीं आए[5] ।

<u>काली दमन लीला</u> : कृष्ण गायों को चरा, धूल धूसरित हो लौट रहे हैं । ग्वाल बाल कालीदह के निकट पहुंचे, वे यह नहीं जानते थे कि यह जल विषाक्त है अत: उन्होंने पेट भर पानी पिया । विष के प्रभाव से गोप बालक गण मूर्छित हो भूमि पर गिर पड़े[6] । कृष्ण ने अपने अनेक सखाओं का शरीर उलट पलट कर देखा, वे सब मर चुके थे । कृष्ण ने पीत वस्त्र को कमर से कस कर बांध दिया और स्वयं कदंब वृक्ष पर चढ़ कर काली दह में कूद पड़े । यदुराय कालिंदी के जल में वंशी बजाकर क्रीड़ा कर रहे हैं, उनका नीला शरीर तथा पीत वस्त्र मेघ और प्रकाश की भांति शोभित हो रहा है, पानी में कृष्ण दोनों भुजाओं[7] को फैला कर क्रीड़ा कर रहे हैं, दह में रव करती लहरें उठ रही हैं । खेलते हुए कृष्ण के

---

१ - भा० द० पद - ३८ पृ० ५७

२ - वही - ३९ पृ० ५७

३ - वही - ४३ पृ० ५८

४ - वही - ५२ पृ० ६०

५ - अ० भा० - १३८ पृ० १०९

६ - बरूआ - अं० ना० पृ० ४

७ - वही - ६

मर्म - स्थान को काली नाग ने डस लिया और अपने फण में कृष्ण को लपेट कर रखा। कृष्ण उसी अवस्था में पड़े रहे । इस समय गोकुल में भूकंप आया, वृक्ष गिर पड़े स्त्रियों के दाहिने और पुरुषों के बाम अंग फड़कने लगे । यशोदा अत्यन्त आकुल हो अन्य गोपियों सहित चलीं[1] । हे बंधु माधव, देखो देखो तुम्हारे बिना हमारा जीवन न रहेगा -- सखा तुम्हारे शोक में शरीर जल रहा है । घर के मोह का त्याग कर तुम्हारी शरण ली थी, तुम भी हमें छोड़कर जा रहे हो, अब हम अनाथ हैं -- अब गोपियां वंशी बादक का मुख कैसे देख सकेंगी । कमल नयनों से निहार कौन हमारे दुख दूर करेगा -- कृष्ण की विरहाग्नि से व्याकुल हैं और प्राण जल रहे हैं[2] । यशोदा तथा गोपियों के दुख को देख कृष्ण काली-काल के सिर पर चढ़ कर नाचने लगे और देव, तथा मुनि गण पुष्प वर्षा करने लगे -- सिद्ध गण डिम- डिम मृदंग बजा रहे हैं और गा रहे हैं । चरण घूम फिरा कर कृष्ण नृत्य कर रहे हैं । जगत के परम गुरु का भार काली नाग सहन न कर सका और अचेत हो गया । उसके नाक-मुंह से रक्त निकलने लगा, उसका मद चूर्ण हो गया[3] । नाग नारियों ने कृष्ण से प्रार्थना की प्रभु मेरे स्वामी पर कृपा करो, आप को न जान कर दुष्ट ने डंसा और उसको आपने समुचित दंड दिया, आप से हम आंचल फैला कर पति के प्राणों की भिक्षा मांगती हूं, पापी के सब दोषों को भुला दें । इस प्रकार कह नारी-गण रो रही हैं[4] । नाग नारियों की विनती सुन कृष्ण संतुष्ट हुए और काली नाग को अभय दान किया और रमण द्वीप जाने का आदेश दिया । कृष्ण के इसके आदेशानुसार काली सपरिवार तत्पर हो गया और कृष्ण को प्रणाम कर आगे बढ़ा[5] ।

<u>काली दमन</u> : सूरदास ने इस कथा का चित्रण भिन्न रूप में किया है । नारद ऋषि के परामर्श के अनुसार कंस ने जमुना के कालीदह का कमल मंगाया और पत्र लिख कर एक दूत को दिया और उसे व्रज भेज दिया और मौखिक संदेश भेजा कि कंस ने यह कमल का पुष्प मंगाया है[6] । पत्र पढ़ते ही नंद भय भीत हो जाते हैं । कृष्ण ने कंस के समीप पुष्प भेजने

---

१ - बरुआ - अं० ना० ८

२ - वही - ६

३ - वही - १२

४ - वही - १५

५ - वही - १७

६ - सू०सा० - १६ पृ० ५३

का आश्वासन नंद को दिया[1]। श्याम अन्य सखाओं सहित गेंद खेल रहे थे और आपस में एक दूसरे गेंद मार रहे थे, खेलते खेलते सब सखाओं सहित कृष्ण यमुना तट पहुंचे कृष्ण ने श्रीदामा को लक्ष्य कर गेंद फेंकी किन्तु उन्होंने मुड़ कर अपने को बचा लिया। गेंद काली दह में गिर पड़ी। उन्होंने श्याम को पकड़ा कि मेरी गेंद दो। किसी प्रकार से फेंट छुड़ा कर कृष्ण कदंब पर चढ़ गए और कालीदह में गेंद निकालने के लिए कूद पड़े[2]। किन्तु शंकरदेव ने इस प्रसंग में न तो नारद - कंस मिलन की चर्चा की है न गेंद कालीदह में गिरने की। यशोदा पुत्र पुत्र कह कर यमुना के तीर की ओर दौड़ पड़ीं और उनके साथ ब्रज की अन्य गोपियां भी साथ चलीं। बलराम ने जननी को प्रबोध दिया तो भी माता यशोदा धरती पर गिर पड़ीं। नाग नारियों को झिड़क कर नाग के पूंछ पर लात मार कर अहि को कन्हैया ने जगाया। काली नाग ने क्रोधित हो विष वमन किया जिससे जल भस्म हो गया किन्तु सूर के श्याम के शरीर को यह स्पर्श न कर सका उरग ने हरि को लपेट लिया और अहि राज ने गर्व से बोलना आरंभ किया। हरि ने अपने शरीर का विस्तार किया, तब काली नाग व्याकुल हो गया[3]। जब काली के अंग पट पटा कर टूटने लगे तो उसने शरण की भिक्षा मांगी। क व्याल की नाक फोड़ कर उसे अविलंब नाथ दिया और उसके माथे पर चढ़ गए। तब नाग ने सहसा मुख से प्रभु की स्तुति की -- नाग नारियों ने भी प्रभु की स्तुति गाई और पति भिक्षा मांगी[4]। गरुड़ के त्रास से नाग यहां आया था प्रभु के चरण-कमल का चिन्ह उसके प्रत्येक मस्तक पर पड़ा। सूरदास जी कहते हैं कि प्रभु ने उसे अभय वरदान देकर उरग द्वीप पहुंचाया[5]।

<u>रास लीला</u> : वृंदावन कुसुमों से परिपूर्ण है, शरत चंद्र का प्रकाश अधिक उज्ज्वल है, धीरे धीरे मलय चल रहा है, कभी कभी चल कर रुक जाता है। इतने में ही वन में प्रवेश कर कृष्ण ने वेणु बजाया। उसे सुन सब गोपियां-कृष्ण के समीप आईं[6]। ब्रज बालाओं ने अपने पति सुत का त्याग कर प्रेम में निमज्जित हो कृष्ण को हृदय वंधु स्वीकार किया।

---

१ - सू०सा० - २९ पृ० ५३
२ - वही - २६ पृ० ५४
३ - वही - पद - ३१ पृ० ५५
४ - वही - पद - ३४ पृ० ५६
५ - वही - पद - ३६ पृ० ५७
६ - ब०कं० ना० - पृ० १०२

पति पुत्र की उपेक्षा कर वे सभी कृष्ण के दर्शन करने चलीं - सुहृद - सहोदर के निषेध करने पर भी वे चली गईं। राधा को गोपियों ने साथ न लिया[1]। हरि को गोपियां न देख सकीं -- उन्हें अधिक कष्ट हुआ विरह ताप से उनका शरीर जलने लगा, हरि का ध्यान धारण कर गोपियां जोर जोर से चिल्लाती हैं, एकाग्र चित्त से हरि के पद पंकज का ध्यान कर रही हैं, उनकी आंखों से अश्रुधारा बह रही है, भक्ति ने कर्म बंधन को शिथिल कर दिया, उनका शरीर भक्ति भावना से पुलकित है[2]। कृष्ण ने गोपियों को वन के मध्य रात में देखकर प्रश्न किया कि तुम लोग यहां अपने पिता पुत्र पति आदि को छोड़ कर क्यों आई हो? सखियों, यदि तुम्हारी इच्छा वृंदावन देखने की थी, वह पूर्ण हुई अब तु तुम लोग अपने अपने घर लौट जाओ, कामिनी मुझे कलंकित न करो मैं पर स्त्री का स्पर्श नहीं करता, तुम्हारे पति, पुत्र, सहोदर तुम्हारे लिये व्याकुल हैं, कुल कामिनी हो कर भी रात्रि में प्रिय का साथ क्यों छोड़ दिया[3]? चिंतित गोपियों ने अत्यन्त निराश हो अपना मुंह लटका लिया और फफक फफक रोने लगीं, तन मन भारी हो गया और नेत्रों से अश्रुधारा बहने लगी। गोपियों ने कृष्ण से अनुरोध किया, प्रभु पति-पुत्र सब का परित्याग कर हम आप के चरणों में पड़ी हैं, भक्त कृपाल गोपाल, तुम्हारा नव अनुराग कैसे टूट गया, हरि हमने समझ लिया तुम अत्यन्त निर्दय हो, वाणी रूपी बाण से तुमने हमारे हृदय को विदीर्ण कर दिया माधव, हम विरहणी तुम्हारे बिना जीवित न रहेंगी[4]। तुम जगदीश हो, हमें निराश न करो। यादवराज, तुम्हारा मनमोहन पुष्प धन्वा रूप देखते ही मुक्ति प्रदान करता है। प्रभु कटु वचन बोल हमें निराश न करो, तुम्हारी बंशी की ध्वनि को सुन प्राण विकल हो जाते हैं[5]। कृष्ण ने गोपियों को समझाया कि तुम लोग दुखित न हो, मैं मनोरथ पूर्ण करने वाली क्रीड़ा करूंगा, प्राण सखी उठो। जिस प्रकार वृष्टि-जल से दावाग्नि शीतल हो जाती है, इसी प्रकार विरह से दग्ध गोपियां शीतल तथा शांत हो कृष्ण के सहित कैलि करने लगीं। सखि देखो कान्ह कितना निर्दयी हैं, पयोधर को नख से अधर को दशन से घायल किया है, केश-पाश ढीला होकर गिर गया,

---

१ - ब० अं० ना - १०३

२ - वही - १०४

३ - वही १०५

४ - वही १०६

५ - वही १०७

हार टूट गया, हमारे कछुवे के तुल्य कठोर कुच को फोड़ डाला, भुजाओं से बार बार आलिंगन किया, ऐसा प्रतीत होता है मानों चंद्र को राहु ग्रस रहा हो, हरि के ध्यान में मग्न होने के कारण इन्हें ज्ञान न रहा[1]। कृष्ण किसी को हंस कर देखते हैं, किसी को मुंह लगा कर वे चूमते हैं, गोपियों को आलिंगन से रति का सुख प्राप्त हो रहा है[2]। कृष्ण किसी गोपी कांचुरि को छोड़ कुच को प्रकाशित कर देते हैं, गोपी हंस कर अपने हाथ से उसे ढंक लेती है, हरि ने किसी का अंबर छीन लिया गोपी लज्जित हो अपने अंग मोड़ रह गई[3]। कृष्ण ने गोपियों से निवेदन किया, सखि मेरे दोष को भूल कर कटाक्ष से देखो और कामाग्नि का आलिंगन दो, नव रस का बिछोह कैसे होगा, हंस कर मुझे एक बार देखो, मदन ने मेरे शरीर को भुला लिया है[4]। गोविंद ने गोपियों का गर्व देखा और स्वयं राधा नामक गोपी को साथ ले अंतर्ध्यान हो गए। गोपियों ने संपूर्ण वृंदावन ढूंढ़ा, किन्तु उन्हें कृष्ण का दर्शन न हुआ, वे अत्यन्त दुखित हो रोने लगीं। दशों दिशाओं में उन्हें अंधकार दिखाई देता और वे बार बार मूर्छित हो गिर पड़ती थीं। गोपाल प्राण के बिना हमारा जीवित रहना संभव नहीं, विलाप करते वे कृष्ण के गुण गा रही हैं[5]। माधवी से गोपियां कृष्ण के संबंध में पूछती हैं बकुल, बंदुलि, कदंब बन, तुलसी, तुम लोग बड़े उपकारी हो, कहो हमारा बंधु बन के मध्य कहां गया? चंपक कुल, हम आंचल फैलाकर तुमसे याचना करती हैं कि मुझे प्राण बंधु के दर्शन करा दो प्रभु के बिना तन-मन धारण नहीं किया जा सकता है[6]। गोपियों ने कृष्ण लीला का आरंभ किया, कोई कहती मैं गोपीनाथ हूं, मैंने काली नाग का फन किया है। राधा का कृष्ण ने विशेष सम्मान किया, अत: उन्हें भी गर्व हुआ कृष्ण से उन्होंने कहा, मैं पैदल नहीं चल सकती हूं। कृष्ण ने राधा का मान समझ लिया और अपने कंधे पर बैठा लिया। राधा ने कटाक्ष न समझा और कंधे पर चढ़ने के लिये तैयार हो गई[7]। राधा कृष्ण से प्रार्थना करती हैं,

---

१ - ब० अं० ना० - छवि १०८

२ - वही १०८

३ - वही ११०

४ - वही १११

५ - वही ११२

६ - वही ११३

७ - ११५

मेरे बंधु मुझे वन के मध्य दर्शन दो,दासी पर कैसे रुष्ट हुए हो,गोस्वामी मेरे दोषों को क्षमा कर दो -- मुरारि मुझ पर करुणा करो,रात्रि में मुझे अकेले छोड़ अनाथ न करो -- मैं पापी हूं मैंने आप से गर्व किया[1]। गोपियों की पुकार सुन कर कृष्ण पुन: प्रकट हुए । कमल नयन गोपी प्रेम सुधा रस से अत्यन्त व्याकुल थे तथा उनके नेत्रों से वारि की धारा प्रवाहित हो रही थी । कोटि इंद्र के समान प्रकाशित कृष्ण के रूप को देख गोपियों का दुख दूर हुआ । गोपियों ने कृष्ण का आलिंगन किया,कोई उनके हस्त कमल और कोई उनके स्कंध को सूंघने लगीं[2]।

यमुना पुलिन पर कृष्ण ने रास क्रीड़ा आरंभ की -- आनंद विभोर हो गोपाल ब्रज बालाओं के साथ खेल रहे हैं,किसी ने हरि का मकर कुंडल ले लिया,किसी ने हाथ का कंकण ले लिया,किसी गोरी ने हंस कर वंशी ले लिया,किसी ने पीतांबर और बर माला ले लीं[3]। विश्वविमोहन गोविंद गोपियों को कंठ से लगा नाच रहे हैं,जितनी गोपियां हैं उतने ही माधव के रूप हैं,वे धीरे धीरे हंस कर चल रही हैं,ऐसा लगता था मानों हेम मणि के मध्य मध्य में मरकत मणि प्रकाशित हो रही हों । गोपी-कृष्ण की मंडली तड़ित जड़ित मेघ के समान है चलते हुए बालाएं कृष्ण का मुख चूमती हैं और मधुर गीत गाती हैं, गोपियां प्रेम से गले में बाहें डाल देती हैं इसे देख देव-रमणियां मूर्छित हो गई । शशधर का रथ स्तंभित हो गया[4]।सुरत केलि करते करते गोपियां दुर्बल हो गई,हरि के कंठ में भुजाएं डाल शिथिल हो गई हैं,कोई कामिनी हरि की गोद में सो गई,किसी गोपी के लिये पीतांबर डुलाया जा रहा है,उनके शशि मुख[5] पर श्रम जल के बिंदु सुशोभित हो रहे हैं, किसी के केश केशव अपने हाथ से बांध रहे हैं।

ब्रजभाषा में इस विषय पर सूरदास के बहु संख्यक पद और नंददास की 'रास पंचाध्यायी आदि रचनाएं हुई हैं । रास के दार्शनिक महत्त्व पर प्रकाश डालने के लिए 'नंददास ने 'सिद्धांत पंचाध्यायी'की रचना की,आसमिया में इस ढंग की कोई रचना नहीं हुई ।

---

१ - ब० कां० ना० - ११८

२ - वही ११६

३ - वही १२२

४ - वही १२३ १२३

५ - वही १२४

शंकरदेव तथा सूरदास के रास वर्णन में अत्यधिक साम्य है ।

श्याम की मुरली की ध्वनि जब गोप कन्याओं के कान में पड़ी, उन्हें उनका काम धाम भूल गया, कुल की मर्यादा और वेद की आज्ञा से किंचित मात्र न डरीं । जो जिस अवस्था में थीं वैसे ही रात्रि में वन की ओर चल पड़ीं ।[1] माता-व पिता- बंधु के रोकने पर भी गोपियां नहीं रुकती हैं जिस प्रकार भादों के जल प्रवाह कोनहीं रोका जा सकता है, वैसे ही गोपियों को रोकना असंभव हो गया । जैसे भुजंग केंचुरी त्याग देता है वैसे ही गोपियों ने माता पिता का परित्याग किया ।[2] सूरदास के कृष्ण ने गोपियों को वेद मार्ग सुनाया । सखि, जाकर पति की पूजा करो, इस संसार से मुक्त हो जाओगी । उन्हें त्याग कर विपिन के मध्य रात्रि में क्यों आई हो ? गोपियों ने उत्तर दिया "हम व्रज क्यों जांय, आप का दर्शन तीनों लोकों में दुर्लभ हैं । हम धर्म और पाप को नहीं जानती हैं, हम केवल तुम्हीं को जानते हैं संसार निरर्थक है, श्याम इतने निष्ठुर न बनो । श्याम गोपियों के इस अनुपम अनुराग तथा दृढ़ प्रेम को देख प्रसन्न हुए और उनका आलिंगन किया। व्रज युवतियों के मध्य सुन्दर श्याम हैं और उनके साथ राधा हैं । सूरदास जी कहते हैं कि नव-जलद के समान उनके शरीर की ~~कान्ति है,~~ कांति है, इसमें इंदु की अनेक पंक्ति के मध्य उसकी छवि बढ़ जाती है ।[3] रूप निधान श्याम सुन्दर के साथ नृत्य करते करते व्रजनारियों को गर्व हो गया । इसी समय हरि अपनी प्रिया राधा सहित अंतर्ध्यान हो गए, गोपियां हरि के लिए अत्यन्त व्याकुल होकर वृंदावन के कुसुमों-वृक्षों से श्याम के संबंध में पूछने लगीं ।[4] नागरिक के मन में भी गर्व हुआ, मेरे समान अन्य स्त्री नहीं है, मैंने गिरिधर को वशीभूत किया है । कभी वे बैठ कर हरि के हाथ पकड़ लेती हैं कभी कहती हैं, मैं अधिक थक गई हूं। सूरदास के श्याम ने भामिनी को कंधे पर बिठाया । कुछ देर पश्चात घोष कुमारी को वहीं छोड़ कर अंतर्ध्यान हो गए ।[5] गोपियों ने देखा कि राधा द्रुम के तले मुरझाई खड़ी हैं । किसी को ज्ञात नहीं कि मोहन किस मार्ग से चले गए, कहां चले गए ? राधा श्याम

---

१ - सू०सा० पद- ७६ पृ० ६६
२ - वही - ८० पृ० ६६
३ - वही - ८५ पृ० ६८
४ - वही - ८६ पृ० ६८
५ - वही - ६२ पृ० ६६

के विरह से दग्ध हो रही थीं । इस दशा को देख कर करुणामय के हृदय में स्नेह उत्पन्न हुआ । प्रेम के वशीभूत कन्हाई अंतर से प्रकट हो पुन: रास करने लगे और प्रत्येक गोपी के साथ श्याम नृत्य करने लगे-गोपियों ने समझा कि हरि आरंभ से उनके साथ हैं ।

<u>रास-वर्णन के विभिन्न अंशों का तुलनात्मक अध्ययन :</u> भगवान ने व्रज में लीलाएं इसलिए की कि मुक्त जीवों का ब्रह्मानंद से उद्धार होकर उन्हें भजनानंद मिले । इस प्रकार लौकिक विषयानंद तथा काव्य रस से इतर रस रूप श्री कृष्ण :रसोवैस:: के संसर्ग की लीलाओं में जो रस समूह मिले वह रास है । और यह रस समूह गोपी-कृष्ण की शरद् रात्रि की लीला में अपने पूर्ण रूप में स्थित बताया गया है । रास क्रीड़ा द्वारा मानसिक अनुभव से रस की अभिव्यक्ति होती है,देह द्वारा अनुभव से नहीं -- रास क्रीडायां मनसो रसोद्गम: नतु देहस्य ।[१]

वल्लभ संप्रदाय में रास के तीन रूप माने जाते हैं : १- नित्य रास २- अवतरित रास या नैमित्तिक रास ३- अनुकरणात्मक रास,यह दो प्रकार का होता है :क:भावनात्मक या मानसिक :ख: देहात्मक । गोलोक में अथवा निजधाम वृंदावन में भगवान श्रीकृष्ण अपने आनंद विग्रह से अपनी आनंद- प्रसारिणी शक्तियों के साथ नित्य रस मग्न रहते हैं । उनकी यह क्रीड़ा अनादि और अनंत हैं । यही भगवान का नित्य रास है ।[२]

वल्लभाचार्य ने सुबोधिनी द्वारा यह स्पष्ट व्यक्त किया है कि कृष्ण के रास में कामुक चेष्टाएं अवश्य हैं किन्तु उनमें काम का अभाव है । गोपी-कृष्ण में लौकिक काम का अभाव है और साथ ही यह मुक्तिदायिनी है । इस लीला के श्रवण मात्र से लोग निष्काम हो जाते हैं,इससे किसी प्रकार काम की उत्पत्ति नहीं होती । रास लीला का एक आध्यात्मिक अर्थ यह भी किया जाता है कि भगवान की यह लीला अपनी ही लीला है । भागवत पुराण में कहा है जैसे बालक अपने प्रतिबिंब को दर्पण मणि आदि में देख कर क्रीड़ा करता है वैसे भगवान रमापति ने हास्य आलिंगनादि द्वारा व्रज सुंदरियों के साथ खेल किया। भगवान ने आत्मा राम होकर भी अपने अनेक रूप करके प्रत्येक गोपी के साथ पृथक-पृथक रह कर क्रीड़ा की । इसलिए कुछ लोग इस लीला के अभिनय या अनुकरण के पक्ष में नहीं हैं ।[२]

साधारण कोटि के संसारी भक्त इस लीला की मानस भावना नहीं कर पायेंगे और यह गूढ़ गहन दार्शनिक अनुभूति मात्र रह जायगी । राधावल्लभ संप्रदाय में दार्शनिक

गूढ़ता को बचाकर प्रेम की स्निग्ध भूमि पर राधा-कृष्ण के नित्य विहार की स्थापना की गई है,क्योंकि प्रेमी भक्तजन भी अनुकरणात्मक लीला में पावन प्रेम रस का आस्वादन कर तृप्त हो सकते हैं । अत: इस लीला का अनुकरण विधेय माना गया है । श्री वल्लभाचार्य तथा चैतन्य महाप्रभु के अनुयायियों ने भावनापरक रास लीला का ही अधिकांश में वर्णन किया है क्योंकि उन्हें अभिनयात्मक लीला में त्रुटियों के समावेश का भय था । रास पंचाध्यायी के प्रसंगों को लेकर नंददास आदि भक्तों ने बड़े ही मनोमुग्ध कारी[१] लीला चित्र अंकित किए हैं किन्तु स्थूल अनुकरण पर विशेष बल नहीं दिया ।

शंकरदेव के केलि गोपाल नाटक में गोपी-कृष्ण का संभोग और विरह श्रृंगार व्यंजित हुआ है तो भी इसे प्रधानता नहीं मिली है । यहां श्रीकृष्ण केवल श्रृंगार रस के नायक की भांति उपस्थित नहीं हुए हैं,वे भगवान,जगत सृष्टि-स्थिति- लय कर्ता परम पुरुष हैं,[२] उनका रूप,कार्य,शक्ति अलौकिक `अप्राकृत तथा लीला ~~मनक~~ मात्र हैं । गोपियां भी श्रृंगार रस प्रधान नाटक नायिका मात्र नहीं है उन्होंने भगवान परमात्मा को समस्त आनंद स्वरुप समझ कर ही उनसे प्रणय किया । शंकरदेव ने इस नाटक को मोक्ष का साधक[३] कहा है ।

<u>जल केलि</u> : गोपाल जल केलि कर रहे हैं,चारों ओर से गोपियां कृष्ण के मुख को लक्ष्य कर पानी फेंक रही हैं -- हरि ने किसी का अंबर छीन लिया किसी का आलिंगन किया, किसी को भुला कर चूम लिया,किसी के कुच को नख से क्षत किया । जिस प्रकार मद गज कारिणी के सहित खेलता है,वैसे ही कृष्ण गोपियों के साथ क्रीड़ा करते थे । गोपाल की[४] इस लीला को देख सुर रमणियों का हृदय मनमथ के बाणों से घायल हो गया । सूरदास के मोहन रास रस से श्रमित सोलह सहस्त्र नारियों को निशि सुख प्रदान कर उन्हें यमुना तट पर ले गए । रवि तनया के जल में नंद-नंदन सुकुमारियों के संग जल विहार कर रहे हैं[५] । नंददास ने भी जमुना जल क्रीड़ा का वर्णन मनोहर और रसात्मक ढंग से किया है[६] ।

---

१ - रा०व० सं०- वि० स्ना० - पृ० २७३

२ - `हे सखि ! तोहो यशोदानंदन नद,जगत राखिते ब्रह्म प्रार्थित
दे निमित्त तोहो सर्व्व अंतर्यामी श्रीकृष्ण केवल स्याह ।

३ - भो भो सभासदा यूयं श्रृणुत सावधानत:
केलि गोपालं नामेदं नाटकं मोक्ष साधकम् ।

<u>भूषण का खोना :</u> गोपाल का भूषण कहीं खो गया, घर जाने पर मां मारेगी इस भय से वे भाग रहे हैं । कदंब के तले कृष्ण अकेले सोये हुए थे, राधा पानी लेने गई और गोपाल के निकट आ उनका भूषण छीन लिया । भूषण को छिपा, राधा ने कृष्ण को जगाया और पूछा तुम्हारे शरीर पर अलंकार क्यों नहीं है ? भूषण खोकर तुम यहां सोये हुए हो, यशोदा सुनने पर अवश्य तुम्हें मारेंगी । कृष्ण मौन रहे, राधा पानी लेकर चली गई । अलंकार यशोदा को देकर सम्पूर्ण वृत्तांत सुनाया ।[1]

मां मेरा भूषण खो गया, एक ग्वालिन ने मुझे बुला, खाने के लिये मिठाई दी, उसको खाते ही मैं अचेत हो गया-- सिर चक्कर खाने लगा, आंखें ऊपर नीचे होने लगी, ज्ञान हीन हो मैं कदंब तले सो गया । राधा ने हमारा भूषण चुरा लिया और बात करने लगी, मैं अचेत अवस्था में पड़ा था क्या विचार कर कहता ? मां यही मेरा दोष है ।[2] इसके उपरांत कृष्ण ने राधा को देखा और उनके सम्मुख अपना चातुर्य प्रकट करने लगे । राधा तुमने मेरा भूषण कैसे चुराया, हमारे इस गोकुल नगर में राधा चोर है, मैं अकेले सोया था और तुमने मेरा भूषण चुरा लिया, दिन में राजमार्ग में ऐसा साहस किस का होगा और रात में राधा तुम कैसी चोरी करती होगी । मैंने विचार किया है, राधा के अतिरिक्त और कोई चोर नहीं है ।[3] राधा ने गोविंद से कहा तुम गोपी के निकट मेरे दोष की व्याख्या क्यों कर रहे थे ? तुम अचेतावस्था में कदंब के तले पड़े हुए थे, मैंने तुम्हारे प्राण भूषण की रक्षा की, छीन कर नहीं लिया । जब मैंने तुमसे प्रश्न किया तुम निरुत्तर रहे, भयभीत हो तुम ग्वालिनों के घर में छिपे थे अब भूषण पाकर चातुराई दिखा रहे हो, यदि मैं चोर होती तो तुम्हारी मां के आगे भूषण क्यों देती ?[4]

<u>होली :</u> देव दुर्लभ केलि फागु का विहार नंद कुमार खेल रहे हैं, फागु के पड़ते ही श्याम का शरीर ऐसा सुन्दर लगता जैसे मरकत गिरि पर रवि की किरणें सुशोभित हों --कपूर तथा कुंकुम से फागु अत्यन्त सुगंधित है जिसे गोप-गोपी गण आनंद से खेल रहे हैं--अन्य लोग अंजलि भर भर कर फागु मार रहे हैं तथा नाच, गा रहे हैं । फागु से सम्पूर्ण तन

---

१ - 'नन्ददास'- शुक्ल पृ० २३६

२ - वही २४०

३ - वही २४२

४ - वही २४३

अरुण वर्ण का हो गया है जैसे प्रभात काल की रवि की किरण हो । फागु के उत्सव में सभी लोग प्रसन्न हैं[1]। सूरदास ने होली खेलने के अनेक विवरण दिए हैं जिनके द्वारा ब्रज के वार्षिक फाग उत्सव के सजीव चित्र सामने आ जाता है `मदन गोपाल सखाओं को संग लिए हो हो हो हो बोलते,ब्रज की बीथि बीथी में डोल रहे हैं । मृदंग बीन,डफ और बांसुरी बजाते और गीत गाते हैं । शरीर पर अनेक रंग के--नीले,लाल,पीले और श्वेत वस्त्र पहने हैं । यह सुन कर सब नारियां अपने अपनेद्वार पर निकल कर खड़ी हो गईं ।`वे सोलह श्रृंगार सजाए हुए नवीन कुमुदिनी के समान प्रफुल्ल वदन हैं । ब्रज की किशोरियों ने एकत्र होकर राधा और श्याम की गांठ जोड़ दी और कहा कि जब तक फगुवा नहीं मिलेगा, तब तक नहीं छोड़ सकती फूलों के रंग से भरी हुई पिचकारियां हाथों में लेकर कोई मारती कोई दांव निहारती,कोई अरस परस,दौरा-दौरी कर रही हैं । उधर सखा हाथों रस्सियां लेकर संकोच छोड़ कर गालियां देते हैं,इधर सखियां हाथों में बांस लिए भोरा-भोरी की मार कर रही हैं[2]।

डोल लीला : मेरु शिखर के ऊपर जैसे नवनील घन प्रकाशित होता है वैसे ही- कृष्ण डोल के ऊपर विराजमान हैं,श्याम के शरीर पर अलंकार ऐसा झलकता है,जैसे निर्मल गगन में तारे ज्योतित हों- किरीट,कुंडल,हार,केयूरकिंकिणी,रतन,नूपुर रिन झिन रिन झिन बज रहा है -- त्रिजगतपति सिंहासन सहित डोल रहे हैं,जैसे रवि-शशि आकाश में चलते हों । नंद तथा यशोदा आनंदित हो रहे हैं,गोप गोपी हरि की जय बोल रहे हैं[3]। इस प्रसंग के कुछ पदों में नंददास ने वर्षा ऋतु हिंडोले के शब्द चित्र अच्छे दिये हैं । कृष्ण हिंडोले पर झूलते हैं उनके संग वृष भानु नंदिनी हैं जिनके अंग अंग से रूप प्रकट होता है । श्याम राधा की ओर देख कर हंसते हैं और धीरे धीरे झूल रहे हैं । ब्रजबालाएं प्रभु की छवि देखते ही वशीभूत हो गईं[4]। नंददास ने होली,वसंत पर बहुत पद लिखे हैं । नंददास के होली के लम्बे लम्बे गीत झांझ,मजीरा और डफ के साथ रात भर बैठ कर होली गाने वालों के लिए ही हैं । `यमुना के तट पर हरि ब्रज युवतियों के साथ होली खेल रहे हैं,डफ,मृदंग तथा मंजिरे की मधुर ध्वनि हो रही है,वस्त्रों पर केशर का जल छिड़क रहे हैं । इस आनंद के समीर का स्पर्श होते ही पुष्प धन्वा अधीर हो गया[5]।

---

१ - माधवदेव - बरगीत पृ० १२२-१२३
२ - सूरदास - ब्र० वर्मा - पृ० ३२६
३ - माधवदेव - बरगीत पृ० १२३-१२४
४ - नंददास - शुक्ल पृ० ३३५
५ - नंददास- शुक्ल पृ० ३८२

मथुरा लीला

मथुरा लीला : अक्रूर के साथ कृष्ण का मथुरा गमन : असमिया वैष्णव साहित्य में इस विषय पर कोई स्वतंत्र रचना नहीं हुई है शंकरदेव के दशम स्कंध में अक्रूर का प्रसंग पर्याप्त विस्तार से अंकित है । सूरदास के अतिरिक्त हिन्दी के किसी कवि ने इस विषय की ओर ध्यान नहीं दिया है ।

शंकरदेव ने शुक- परीक्षित संवाद का अनुकरण करते हुए अक्रूर का प्रसंग उपस्थित किया है । गोविंद के पदचिन्हों का दर्शन कर वे अत्यन्त हर्षित हुए -- ध्वज, वज्र पंकज तथा अंकुश से सुशोभित चरणों की छाप ने समस्त पृथ्वी को अलंकृत कर दिया है -- इन्हें अक्रूर ने प्रणाम किया[1] । कुछ देर पश्चात अक्रूर पुन: स्वस्थ हुए और राम-कृष्ण को रथ पर बिठाया । राम-कृष्ण के अलौकिक सौंदर्य को देख अक्रूर प्रेम से विह्वल हो रथ में गिर पड़े - राम-कृष्ण के चरणों को पकड़ अक्रूर उसी अवस्था में पड़े रहे अक्रूर की भक्ति से प्रसन्न हो राम- कृष्ण ने उसका आतिथ्य स्वीकार किया[2] । गोपियों ने जब यह समाचार सुना कि कंस दूत अक्रूर कृष्ण को रथ में बिठाकर मथुरा ले गया, तो उनकी स्थिति ऐसी हुई जैसे वे खड़ी खड़ी मर गई हों -- हृदय अत्यन्त आकुल हुआ, मुख से एक शब्द भी नहीं निकलता था उनके केश पाश तथा वस्त्र ढीले हो गए, कृष्ण के प्रेम में विभोर हो वे अपने नेत्र मुकुलित नहीं करती थीं । गोपियां अक्रूर को शाप देती थीं कि उसने हमारे प्राण को हर लिया[3] । गोप तथा गोपियों ने कृष्ण के रथ को दोनों ओर से घेर लिया और फूट फूट कर रोने लगे। भक्त बांधव कृष्ण ने इनका दुख देख, इनकी ओर घूम कर देखा और गोपियों को संबोधित करते हुए कहा "तुम लोग मेरे परम प्रिय हो, तुम्हारे इस दुख को मेरे प्राण सहन नहीं कर सकते हैं । सखियों मुझे छोड़ कर लौट जाओ, मैं मल्ल क्रीड़ा समाप्त होते ही लौट आऊंगा। इस संदेश से गोपियां स्वस्थ हुई[4] ।

---

१ - दशम स्कंध - प० - १७५८

२ - वही १७६६

३ - वही १७६६

४ - वही १८०६

अक्रूर को जल में कृष्ण दर्शन : भागवत का अनुसरण करते हुए शंकरदेव ने भी अक्रूर को जल में कृष्ण का दर्शन कराया है । स्नानादि करने के निमित्त अक्रूर यमुना के जल में उतरे वहीं उन्हें राम - कृष्ण का दर्शन हुआ । शत्रुओं के भय से अक्रूर ने इन दोनों भाइयों को रथ पर बैठा दिया था, जल में इन्हें देख कर उन्हें आश्चर्य हुआ कि ये किस प्रकार जल में चले आए । जब रथ की ओर दृष्टिपात किया, तो राम-कृष्ण रथ पर बैठे थे । दूसरी बार उन्होंने जब डुबकी लगाई तो देखा कि आदित्य के सदृश सहस्त्रों फणों की मणि प्रकाशित हो रही है, और सर्प नायक अपने फण को झुकाकर कृष्ण को प्रणाम कर रहे हैं । अक्रूर चकित हो, इस दृश्य को आंख खोल कर देख रहे हैं । कृष्ण ब्रह्मा आदि अन्य पार्षदों से घिरे हैं, प्रह्लाद, नारद आदि भक्त गण उनकी उपासना कर रहे हैं इस दिव्य रूप को देख कर अक्रूर अत्यन्त विस्मित हुए । अक्रूर कृष्ण की स्तुति करने लगे- प्रभु जगत के कारण तुम्हारी नाभि पद्म से ब्रह्मा उत्पन्न हुए, पंचभूत[1], देह, इन्द्रिय आदि सभी तुम्हारी मूर्ति हैं तथापि यह जड़ जगत तुम्हें नहीं जानता है ।

मथुरा प्रवेश, रजक वध : शंकरदेव ने राम-कृष्ण का मथुरा प्रवेश वर्णन भागवत के अनुसार किया । ब्रजभाषा के कवियों के अंतर्गत केवल सूर ने ही सूरसागर में इसका चित्रण किया मथुरा नगर के गृहों का निर्माण स्फटिक से हुआ और स्वर्ण के कपाट द्वार में लगे हुए हैं, हेम के सदृश तोरण सुशोभित हो रहे हैं[2]। शंकरदेव ने दशम स्कंध और कीर्तन में रजक वध की घटना का उल्लेख किया है । राम-कृष्ण ने मार्ग में जाते हुए एक धोबी को देखकर उससे कहा कि हमें सुंदरतम वस्त्र दो, तुम्हारा कल्याण होगा । धोबी अत्यन्त क्रोधित हो कृष्ण की भर्त्सना करने लगा-- 'ग्वाल होकर राजा के वस्त्र पहनना चाहते हो कंस के दूत सुनेंगे तो तुम्हें प्राण दंड देंगे ।' यह सुनते ही कृष्ण ने धोबी का वध किया उसके अन्य साथी वस्त्र फेंक कर भाग गए ।[3] कृष्ण तथा बलराम ने सुन्दर वस्त्रों को ले लिया शेष गोप बालकों को वितरित कर दिया ।

---

१ - दशम स्कंध - १८२६

२ - वही - १८६०

३ - कीर्तन- ११२५-११३२

माली पर कृपा : रजक का वध करने के उपरांत कृष्ण सुदाम माली के घर में प्रविष्ट हुए । दूर से इन्हें देख माली ने प्रणाम किया और उचित आसन प्रदान कर इनका सत्कार किया । मालाकार ने सौरभी पुष्पों की माला कृष्ण को पहनाया और अचला भक्ति का वरदान प्राप्त किया[1] । सूर ने भी माली का नाम सुदामा लिखा है[2] ।

कुब्जा उद्धार : सूरदास ने कुब्जा सुन्दरी का चित्रण केवल एक पद में किया है । शंकरदेव ने कीर्तन तथा दशम स्कंध में कुब्जा की भक्ति का वर्णन किया है । सुदाम माली को वर दे कृष्ण राजमार्ग पर चले जा रहे थे और कुब्जा कंस के लिए चंदन पात्र ले जा रही थी । कृष्ण की रूप माधुरी को देख वह लुब्ध हो गई, दोनों भाइयों के शरीर पर सुगंधित चंदन का लेप किया । भक्त की इस प्रीति को देख कृष्ण अत्यन्त प्रसन्न हुए और उसके साथ काम क्रीड़ा की । कृष्ण का स्पर्श पाकर कुब्जा युवती दिव्य सुन्दरी हो गई[3] । शंकरदेव ने कुब्जा का नाम सैरंध्री भी लिखा है[4] ।

धनुर्भंग तथा कंस वध : शंकरदेव ने कीर्तन तथा दशम स्कंध में इन घटनाओं का विस्तृत वर्णन किया है । सूर ने भी धनुर्भंग का उल्लेख कंस वध के पूर्व किया है । कृष्ण के स्पर्श करते ही धनुष टूट कर भूमि पर गिर पड़ा- धनुष भंग का शब्द सुन कर कंस को अत्यन्त आश्चर्य हुआ[5] । शंकरदेव ने इस घटना का विशद चित्रण किया है । यज्ञशाली में सूर्य के सदृश धनुष प्रकाशित हो रहा था- अस्त्र शस्त्र से सुसज्जित सैनिक उसकी रक्षा कर रहे थे । रक्षकों की बाधा की अवहेलना कर कृष्ण ने धनुष को उठा लिया- उनके छूते ही धनुष ऐसे टूटा जैसे मत्त मतंग ईख को तोड़ दे । कंस ने अनेक सैनिकों को कृष्ण- राम को बंदी बनाने के लिए भेजा किन्तु वे असफल रहे । कृष्ण ने धनुषभंग और सैनिकों का वध कर चापरि बजा कर गोप बालकों[6] के साथ नृत्य किया । शंकरदेव ने कीर्तन में कृष्ण के दधि-भात खाने का उल्लेख किया है[7] ।

---

१ - कीर्तन - ११३१- ११३६

२ - सू०सा०- पद सं० २९ पृ० १२६

३ - कीर्तन - ११४३ - ११४६

४ - दशम स्कंध- १७२४

५ - सू०- सू०सा०- पद २९

६ - दशम - १७३२-१७४२

७ - कीर्तन- ११५६

कृष्ण द्वारा संपूर्ण सेना नष्ट किये जाने के उपरांत भी कंस ने वासुदेव को कारागार से मुक्त नहीं किया और उन्हें मारने का प्रयास करने लगा । मार्ग में कुवलय कृष्ण की हत्या करने के लिए बैठा था, उसे देख कृष्ण ने अपना वस्त्र संभाला और हाथी से मार्ग छोड़ने को कहा किन्तु हाथी ने उनके अनुरोध की ओर ध्यान न दे उन पर प्रहार किया । जिस प्रकार सिंह हस्ती को भूमि पर गिरा देता है, उसी प्रकार कृष्ण ने हाथी को गिरा उसके दोनों दांत तोड़ दिया[1] । सूरदास ने गज की हत्या राम-कृष्ण द्वारा कराई है दोनों भाइयों ने हाथी का एक एक दांत अपने कंधे पर रख लिया[2] । इसके उपरांत कृष्ण ने चाणूर का वध किया- जिस प्रकार वायु के प्रबल झोंके से वृक्ष उखड़ कर गिर पड़ते हैं, वैसे ही चाणूर कृष्ण के आघात से गिर कर मर गया -- कूट आदि अन्य सभी मल्लों का वध कृष्ण ने किया[3] । सूरदास ने भी शंकरदेव की भांति चाणूर तथा मुष्टिक वध का वर्णन किया है[4] । लघिमा गुण द्वारा कंस के सिंहासन पर कृष्ण जा बैठे - कंस भी खंग लेकर कृष्ण पर आक्रमण करना चाहता था किन्तु कृष्ण ने कंस के केश किरीट सहित पकड़ कर भूमि पर गिरा दिया और छाती पर चढ़कर उसका वध किया[5] । सूरदास के अनुसार कृष्ण ने कंस को चतुर्भुज रुप का दर्शन दिया था और कंस को निर्वाण पद प्राप्त हुआ । कंस वध से प्रसन्न हो देवताओं ने सुमन वर्षा की[6] ।

उग्रसेन को राज्य दान, वासुदेव-देवकी को कारागार से मुक्ति, उपनयन संस्कार : असमिया और हिन्दी के कवियों ने इन प्रसंगों का वर्णन किया है । शंकरदेव ने अन्य कवियों की अपेक्षा इन घटनाओं की ओर अधिक ध्यान दिया है । शंकरदेव के अनुसार कृष्ण-राम ने शत्रुओं का संहार कर माता-पिता के समीप आए तथा उन्हें लौह बंधन से मुक्त किया । वासुदेव देवकी पुत्र को देख परम हर्षित हुए वैष्णवी माया का विस्तार कर चक्रपाणि ने उन्हें मोहित किया[7] । वासुदेव अपने पुत्र की वीरता पर हर्षित हुए और कृष्ण को वासुदेव देवकी ने कंठ से लगा लिया - विप्रों को बुलाकर गोदान किया[8] । कृष्ण ने कंस का राज्य उग्रसेन को दिया, समस्त पुरवासी कृष्ण को चंवर डुलाने लगे और कंस के भय से भागे

---

१ - कीर्तन - ११६८ - ११७८

२- सू०सू० सा०- २२-२३

३ - कीर्तन - १२२०

४ - सू० सू० सा० - २६

५ - कीर्तन - १२३३

६ - सू०सा०- २७

लोग लौट आए[१]। सूरदास के अनुसार वासुदेव कुल व्यवहार का विचार कर हरि तथा हलधर का यज्ञोपवीत संस्कार किया और नाना प्रकार के व्यंजन को खिलाया। कृष्ण ने गर्ग से गायत्री मंत्र लिया[२]। शंकरदेव ने भी दशम स्कंध में इस घटना का विवरण सूरदास की भांति किया है। गर्ग से गायत्री मंत्र लेने के पश्चात वे दोनों भाई अवंती देश के गुरु संदीपनि के यहां चले गए। दोनों भाइयों ने गुरु की आज्ञा का पालन राजाज्ञा के समान किया। चौसठ कला तथा सांगोपांग वेद का अध्ययन कृष्ण राम ने गुरु के यहां किया[३]।

गुरु पत्नी के आग्रह पर कृष्ण प्रभास क्षेत्र से उनके मृतक पुत्रों को लाते हैं। पंचजन्य नामक दैत्य गुरु के पुत्रों को सागर में लाया है,यह सागर ने कहा।इस शब्द को सुनते ही कृष्ण ने सागर में डुबकी लगाई और दैत्य का वध किया। शंकरदेव के अनुसार कृष्ण को यहां उनके गुरु के पुत्र न मिले। अत: वे यमपुरी की ओर चले और संजमणि यम की नगरी में शंख बजाया। शंख की धुन को सुनते ही यमराज ने कृष्ण के आदर सत्कार की व्यवस्था की। उनके अनुरोध पर यमराज ने गुरु पुत्रों को उन्हें लौटा दिया। इन द्विज पुत्रों के सहित दोनों भाई गुरु के यहां वापस आए इन्हें उन्हें भेंट किया। विप्र ने हर्षित हो कृष्ण राम को अनेक आशीर्वाद दिये[४]।

कृष्ण द्वारा उद्धव को ब्रज भेजना : शंकरदेव ने भागवत का अनुसरण किया है। कृष्ण उद्धव को अपना संदेश देकर नंद यशोदा को प्रसन्न करने तथा गोपियों की विरह व्यथा को दूर करने के लिए ब्रज भेजते हैं किन्तु सूरदास के कृष्ण के उद्धव गोपियों को ज्ञान की शिक्षा देने के लिए नहीं जाते हैं। वे वहां जाकर स्वयं अपने ज्ञान की अपूर्णता का बोध करते हैं। असमिया में भागवत का अनुसरण किया गया है। शंकरदेव के कृष्ण के उद्धव बृहस्पति के तुल्य बुद्धिमान हैं[५] और वे गोपियों तथा माता पिता को शांत करने के लिए ब्रज जाते हैं।

---

१ - सू०सा०- २८

२ - वही - ३०

३ - दशम स्कंध- १६४६-१६४६

४ - वही - १६६६- १६८२

५ - दशम स्कंध - २०२५

<u>नंद यशोदा को उद्धव का सांत्वना दान :</u> उद्धव के आगमन का समाचार पाते ही नंद यशोदा आनंदित हुए,उद्धव का आलिंगन करते ही उनके लोचनों से अश्रु धारा प्रवाहित होने लगी । भागवत की भांति शंकरदेव के उद्धव भी गोधूलि वेला में व्रज पहुंचते हैं[1]। उद्धव ने यशोदा को समझाया कि नारायण अवतार लेकर नरलीला कर रहे हैं और आप लोग उनके दर्शन के लिए आकुल न हों । संपूर्ण जगत के स्थावर जंगम पदार्थों में कृष्ण विद्यमान हैं,कोई भी वस्तु उनसे भिन्न नहीं है । उद्धव के प्रबोध द्वारा यशोदा को शांति प्राप्त हुई और उनका संताप कम हो गया[2]। नंद यशोदा से वार्तालाप करते उद्धव की रात्रि व्यतीत हो गई । सूरदास ने भी नंद यशोदा और उद्धव की वार्ता का उल्लेख किया है[3]।

<u>गोपी उद्धव संवाद :</u> शंकरदेव ने दशम स्कंध भागवत,कीर्तन तथा बरगीत में इस प्रसंग का विशद वर्णन किया है । दशम स्कंध का वर्णन मूल भागवत के अनुसार है । कीर्तन में गोपियों की विरह दशा का संक्षिप्त वर्णन है,उद्धव उन गोपियों को अपने ज्ञान संदेश द्वारा शांत कर देते हैं[4]। शंकरदेव ने बरगीत में कृष्ण और गोपियों की विरहावस्था का सम्यक चित्र उपस्थित किया है । गोपियों के वियोग से कृष्ण स्वयं दुखी हैं वे उद्धव को व्रज भेजते हैं और शपथ देकर कहते हैं कि सखा व्रज नारियों को शांत करो[5]। बरगीत में केवल कृष्ण तथा गोपियों के संदेश का वर्णन उद्धव के मुख से कराया गया है । इस ग्रंथ में उद्धव के उपदेश जो उन्होंने गोपियों को दिया था का सर्वथा अभाव है । शंकरदेव के दशम स्कंध में एक भ्रमर का भी प्रसंग आता है ,जिस समय गोपियां उद्धव से वार्तालाप करती हैं उसी समय एक भ्रमर उड़ता हुआ गोपियों की ओर आता है । इसे देख गोपियां इसकी ओर संकेत कर उद्धव से वार्ता करती हैं । 'हे मधुकर तुम धूर्त कुटुंब के हो,सपत्नी के कुच का कुमकुम अभी लगा है,दूर रह दूर रह मेरे चरणों को न स्पर्श कर[6]'। उद्धव ने गोपियों को कृष्ण के वास्तविक रूप से परिचित कराया और ज्ञान का उपदेश दिया । कृपा मय माधव ने भक्तों के दुख के परिहारार्थ ही उद्धव को व्रज भेजा था[7]। गोपियों की परम भक्ति देख उद्धव ने उन्हें प्रणाम

---

१ - दशम स्कंध - २०५०
२ - वही - २११३
३ - सू०सा० - २८
४ - कीर्तन - १२५६
५ - शं० व० पृ० ३२
६ दशम स्कंध पद २१५५
७- वही - पद २१६७

किया तथा उनकी भक्ति भावना की प्रशंसा की । जो अज्ञानी ,अजाति,तथा पापी कृष्ण का भजन करते हैं वे महात्मा हो जाते हैं । कृष्ण भक्ति के लिए जाति,आचार का विचार नहीं है । गोपियों का गुण गान करते करते उद्धव आनंद विभोर हो गए ।[1] ब्रज भाषा के कवियों ने गोपियों द्वारा उद्धव के संदेश की आलोचना,परिहास तथा तिरस्कार कराया है,ज्ञान और योग साधना का उपहास किया गया है उद्धव अंत में प्रत्यक्ष पराजित होकर भक्ति की श्रेष्ठता स्वीकार करते हैं किन्तु शंकरदेव के उद्धव ने ज्ञान-योग की चर्चा गोपियों के सम्मुख न की,उनके उद्धव ने गोपियों के प्रेम की अत्यधिक प्रशंसा की है ।

<u>उद्धव का कृष्ण के सम्मुख ब्रज दशा का वर्णन :</u> सूरदास के उद्धव ब्रज का विस्तृत वर्णन कृष्ण को देते हैं और गोपियों की अगाध भक्ति के महत्व पर अधिक बल देते हैं । नंददास ने भी इस प्रसंग का संक्षिप्त वर्णन भंवरगीत में किया है । शंकरदेव ने दशम स्कंध के पूर्वार्द्ध में इसका उल्लेख मात्र किया है ।[2]

<u>कुब्जा रमण,अक्रूर गृह गमन :</u> गोपी उद्धव संवाद के पश्चात कृष्ण ने कुब्जा की वांछा पूर्ण की और उसे मोक्ष प्रदान किया । शंकरदेव ने इस प्रसंग का चित्रण भागवत के अनुसार किया है । सूरदास ने इसका वर्णन गोपी उद्धव संवाद के पूर्व किया है । असमिया और हिन्दी के कवियों ने इस संबंध में कोई विशेष विवरण नहीं दिया है । शंकरदेव के अनुसार कुब्जा रमण के पश्चात कृष्ण ने अक्रूर के निवास स्थान पर जाकर उसका आतिथ्य स्वीकार किया । अक्रूर ने कृष्ण का स्वागत करते हुए कहा प्रभु आज मेरा घर आप के आगमन से तीर्थ तुल्य पवित्र हो गया है ।[3] भागवत में अक्रूर तथा पांडव मिलन का वर्णन नहीं मिलता है किन्तु शंकरदेव के कीर्तन में कृष्ण ने अक्रूर से पांडवों का समाचार प्राप्त करने के लिए आदेश अवश्य दिया है ।[4]

<u>जरासंध,कालयवन और मुचकुंद वध :</u> शंकरदेव ने इन घटनाओं का सविस्तार वर्णन कीर्तन ग्रंथ में किया है,सूरदास ने इन कथाओं का वर्णन अत्यन्त संक्षिप्त रूप में किया है । कंस वध के पश्चात उसकी दो पत्नियां अपने पिता जरासंध के यहां गईं । कृष्ण के इस कार्य से जरासंध अधिक क्रोधित हुआ,तेइस अक्षौहिणी सेना सहित मथुरा नगर

---

१ - दशम स्कंध पद २२५५

२ - वही - २२६१

३ - कीर्तन - १२७६

४ - वही - १२७७

पर आक्रमण किया । कृष्ण ने तीन मास में एकत्रित इस विशाल सेना का संहार कर दिया,बलभद्र ने जरासंध से मल्लयुद्ध किया[1] । इसी यवन महाराज कालयवन ने तीन कोटि म्लेच्छों को लेकर मथुरा को घेर लिया । कृष्ण उसे द्वारका ले गए और वहां के विविध स्थानों को दिखाया । कालयवन ने कृष्ण को तैलि जाति का वंशज कहा और पालायन धर्म को अनुचित ठहराया । इतना कहते ही नारायण किसी पर्वत की कंदरा में छिप गए -- कालयवन ने देखा कि एक मनुष्य भीतर सो रहा है --इसे कृष्ण अनुमान कर उस यवन ने प्रहार किया मुचुकुंद[2] के दृष्टिपात करते ही कालयवन अपने शरीर की अग्नि से जलकर भस्म हो गया । शंकरदेव के मुचकुंद ने केवल कृष्ण की स्तुति की -- उसका वध कृष्ण ने नहीं किया है ।

द्वारका लीला

रुक्मिणी हरण : इस विषय को लेकर शंकरदेव ने एक काव्य और एक नाटक लिखा है रुक्मिणी हरण काव्य उनके युवाकाल की रचना है,हिन्दी में इस विषय पर अधिक नहीं लिखा गया । नंददास का रुक्मिणी मंगल और सूर सागर में श्री कृष्ण रुक्मिणी विवाह संबंधी कुछ पद मिलते हैं । सूरदास तथा नंद दास ने भागवत में वर्णित कथा का अनुकरण किया है किन्तु असमिया वैष्णव कवि शंकरदेव ने हरिवंश की अमृत कथा में[3] भागवत कथा को मिश्र कर दिया -- दोनों की कथा का मिश्रण कर पद रचना आरंभ की । शंकरदेव ने कथा की सरसता बढ़ाने के लिए ऐसा किया -- उन्होंने कहा है --

> 'दुयो कथा पद बंधे करो मिसलाइ
>
> येन मधु मिश्र दुग्ध स्वाद आति पाय ।'

शंकरदेव के रुक्मिणी हरण नाट में काव्य की भांति सरसता नहीं है । इस नाटक की कथा रुक्मिणी के सौंदर्य वर्णन से आरंभ होती है सुरभि नामक भाट रुक्मिणी का संदेश पत्र लेकर द्वारका पहुंचता है[4] । दूसरी ओर कृष्ण का संदेश लेकर हरिदास नामक भिक्षुक

भाट रुक्मिणी से मिलता है और कृष्ण के रूप-गुण की व्याख्या करता है[1]। सूरदास और नंददास ने द्विज का नाम हरिदास नहीं दिया है यद्यपि पत्रिका देते समय एक द्विज का उल्लेख मिलता है। सूरदास की रुक्मिणी कहती है "द्विज पाती दै कहियो स्यामहिं।" विप्र तुम द्वारकाधीश से जाकर कहना कि कुंडिनपुर की राजकुमारी रुक्मिणी सदैव तुम्हारा नाम जपती है। "उसने अपना शरीर तथा आत्मा आप को समर्पित कर दिया है[2]।

कृष्ण के नाम रुक्मिणी की पत्री : शंकरदेव ने रुक्मिणी द्वारा भेजे गए पत्र का भी उल्लेख किया है, इस पत्र से तत्कालीन असमिया समाज का शिष्टाचार प्रकट होता है। पत्र इस प्रकार है :

स्वस्ति श्री परमेश्वर सकल- सुरासुर वंदित-पाद-पद्म-प्रपन्न जन तारण-नारायण श्री श्री कृष्ण चरण सरोरुहेषु। रुक्मिण्याः सदृत्य प्रणाम- लिखनम। शिव मिह निवेदनं। < < < < < < < <
तव चरण सरोरुहे किं बहु लेख्यमिति पत्रमिदम्। अं० ना० पृ० ७५

रुक्मिणी पापी शिशुपाल से विवाह न करना चाहती थी भाट के मुख से कृष्ण का रूप वर्णन सुन वह कृष्ण के प्रति आसक्त हो चुकी थी। उन्होंने कृष्ण से प्रार्थना की कि वे शीघ्र आकर उनसे विवाह करें, जिससे दुष्ट शिशुपाल से उनकी रक्षा हो। रुक्मिणी ने कृष्ण को यह भी सूचित किया कि विवाह के एक दिन पूर्व वह भवानी के मठ में पूजा करने जायगी - और वहीं से हमें आप ले लें[3]। सूरदास ने इस प्रकार के किसी विधि का उल्लेख नहीं किया है, यद्यपि रुक्मिणी ने देवी मंदिर में जाकर गौरी की पूजा की है और उसके साथ रुक्म द्वारा भेजे गए महाभट भी थे। किन्तु गौरी पूजन की सूचना कृष्ण को द्वारका में नहीं मिली थी। असमिया के शंकरदेव और हिन्दी के नंददास के कृष्ण स्वयं रुक्मिणी की पत्रिका न पढ़कर भाट से पढ़वाते हैं[4]।

---

१ - अं०ना० - पृ० ७३
२ - सू०सा०- दा० च० - ३-४ पृ० १६७
३ - अं० ना० - पृ० ७५
४ - वही - पृ० ७४

शंकरदेव की रुक्मिणी सखि लीलावती से वेद निधि द्विज को बुलाकर पत्रिका देती है और उन्हें द्वारका जाने के लिए प्रेरित करती है।[१] सूरदास की रुक्मिणी ब्राह्मण को प्रणाम कर द्वारका जाने के लिए निवेदन करती हैं और पुरस्कार की घोषणा करती है।[२]

गौरी पूजन : शंकरदेव की रुक्मिणी ने सखियों सहित भवानी के मंदिर में प्रवेश किया अनेक नैवेद्य प्रदान कर उन्होंने दश भुजा की पूजा की -- माता प्रसन्न हो,मुझे ऐसा वर दो कि मेरे स्वामी माधव हों,रुक्मिणी ने इतना कह कर देवी को साष्टांग दंडवत किया। दुर्गा के शरीर की माला गिर गई,रुक्मिणी को मनोनीत वर मिल गया।[३] सूरदास की गौरी भी रुक्मिणी की अर्चना वंदना से प्रसन्न हो मुस्करा उठीं तथा उन्हें मनोवांछित वर प्रदान किया।[४]

रुक्मिणी हरण तथा कृष्ण का अन्य राजाओं के साथ रण : गजगमनी रुक्मिणी ने मुस्कराते हुए राज्य सभा में प्रवेश किया,जिन राजाओं पर उनके कटाक्ष पड़ते थे वे काम बाण से बिंध कर व्यथित हो जाते थे। सभी वृक्ष रुक्मिणी के रूप का दर्शन कर पुष्पित हो उठे,पुष्प की गंध पा भ्रमर रोर करने लगे। पुष्पधन्वा ने पुष्प बाण छोड़ा-प्रधान राजाओं का मन विचलित हो गया,वे रुक्मिणी के रूप को देख कर पृथ्वी पर गिर पड़े।[५] रुक्मिणी के दिव्य रूप को देख कृष्ण भी मोहित हो गए। कृष्ण ने रुक्मिणी के दोनों हाथों को पकड़ कर अपने रथ में बिठा लिया और दारु को तीव्र वेग से रथ हांकने का आदेश दिया। लाखों राजा कृष्ण को देखते ही रह गए,लज्जा से उनका मस्तक नत हो गया।[६]

शिशुपाल अन्य राजाओं की सहायता से कृष्ण को पराजित करना चाहता था,उसने माधव के ऊपर ब्रह्म अस्त्र का प्रयोग किया -- अर्द्धचंद्र के प्रहार से शिशुपाल का धनुष काट दिया और एक शर से सारथी को मार गिराया,बीस बाण के प्रहार से रथ को नष्ट

---

१ - शं०ना० - पृ० ७०

२ - सू०सा०-द्वा०प०- पद- ३

३ - रू० ह० - २६६-२६७ पृ० २०

४ - सू०सा०- द्वा० प०- ६

५ - रु० ह० - २७३-२७६ पृ० २१

६ - वही - २८३ पृ० २२

भ्रष्ट कर दिया । शिशुपाल ने गदा उठाकर युद्ध किया, उसे भी कृष्ण ने चार शर के प्रहार से खंड खंड कर दिया शिशुपाल आठ बाणों के आघात से भूमि पर गिर गया, भूमि[1] पर पड़े हुए शिशुपाल को देख यादवों ने कृष्ण की जय जय कार की ।

विवाह वर्णन : शंकरदेव ने कृष्ण-रुक्मिणी का विवाह द्वारका में देवकी की उपस्थित में संपन्न होना लिखा है । कृष्ण के विवाह की कथा सुन विश्व के प्रत्येक भाग से लोग द्वारकापुरी पधारे[2] । इस समय ब्रह्मा और नारद पुत्रों सहित उपस्थित हुए और[3] विवाह मंडप में होम किया । इस समय राजा भीष्मक ने अपने हाथ से कन्या दान किया । इसके उपरांत कृष्ण ने ब्रह्मा, रुद्र, इन्द्र आदि देवता, पाताल के वासुकि और नागों, पृथ्वी के सब राजाओं को सुगंध, पुष्प, तांबूल, वस्त्र अलंकार दे कर संतुष्ट किया । शंकरदेव के रुक्मिणी हरण काव्य में विवाह के लोकाचार का विस्तृत वर्णन मिलता है । इसमें शशिप्रभा का उल्लेख प्राप्त होता है[4] । शंकरदेव की भांति सूरदास ने भी विवाह का विशद वर्णन किया है ब्रह्मा इन्द्र की उपस्थित में कृष्ण-रुक्मिणी का विवाह संपन्न करते हैं । नंददास ने विवाह का संक्षिप्त वर्णन किया है ।

सुदामा दारिद्र्य भंजन : शंकरदेव ने सुदामा के स्थान पर दामोदर विप्र लिखा है । इस दरिद्र विप्र की कथा को लेकर उन्होंने कीर्तन का एक खंड लिखा है । सूरदास तथा शंकरदेव दोनों ने ही एकही कथा का वर्णन किया है -- सूरदास के अनुसार सुदामा की उपस्थिति में कृष्ण के साथ रुक्मिणी थीं, शंकरदेव के अनुसार लक्ष्मी थीं। दामोदर विप्र की पत्नी ने आकर स्वामी से कहा कि प्रभु हम लोग कब तक इस प्रकार दुख भोगते रहेंगे, आप के मित्र माधव द्वारका में हैं वे हमारी सहायता कर सकते हैं । ब्राह्मणी ने कुछ चावल मांग कर एक छोटी सी गठरी सुदामा को कृष्ण को भेंट देने के लिए दे दिया[5] । सुदामा यह सोचते सोचते चल रहे थे कि किस प्रकार कृष्ण मुझसे मिलेंगे । राजद्वार पर सुदामा को किसी रक्षक ने न रोका, वे प्रासाद के भीतर पहुंच गए । बाल मित्र को देख प्रभु नंगे पैर मिलने आए । कृष्ण ने स्वयं अपने हाथों से सुदामा के चरण धोया और स्वर्ण आसन पर

---

१ - रु०ह० - ३७० - पृ० ३०

२ - कं०ना० - ६६

३ - वही - ६५

४ - रु० ह० - पद- ६८८ पृ० ५३

५ - कीर्तन - १५८३ पृ० १४०

बैठाया । जब कृष्ण सुदामा की पत्नी- की भेंट को ग्रहण कर रहे थे, कमला ने उनका हाथ पकड़ लिया । इसके उपरांत सुदामा को कृष्ण ने छात्रावस्था की वह घटना सुनाई जिसमें सुदामा ने कृष्ण की सहायता की थी । प्रात: काल कृष्ण ने सुदामा को विदा किया । सुदामा मन ही मन सोच रहे थे कि मैंने कृष्ण से कुछ न मांगा न उन्होंने कुछ दिया ही।[1] घर पहुंचते उनकी पत्नी ने नवनिर्मित दिव्य प्रसाद में उनका स्वागत किया ।

स्यमंतक हरण : शंकरदेव ने इस प्रसंग का विस्तृत वर्णन कीर्तन में किया है । सत्राजित सूर्य के परम भक्त थे और सूर्य ने प्रसन्न होकर उन्हें स्यमंतक मणि दे दी, जिसे वे सदैव कंठहार में पहनते थे । स्यमंतक मणि प्रति दिन आठ भर स्वर्ण प्रसवित करती थी और जहां वह रहती उस देश में दुर्भिक्ष न पड़ता था । कृष्ण ने सत्राजित से मणि मांगी किन्तु उन्होंने न दिया । दूसरे सत्राजित का भाई प्रसेन मणि धारण कर मृगया करने गया, वहीं उसे सिंह ने मार डाला । जांबवंत ने इस सिंह की हत्या कर स्यमंतक मणि छीन लिया और कंदरा में मणि को छिपा दिया ।[2] जब प्रसेन दूसरे दिन भी घर न लौटा तो सत्राजित ने यह अनुमान किया कि वह स्यमंतक मणि धारण कर वन में गया था, निर्जन वन में कृष्ण ने उसे मार दिया होगा । कृष्ण अपनी सेना सहित मणि के संधान के लिए चल पड़े । कृष्ण तथा जांबवंत अट्ठाइस दिन तक कंदरा में युद्ध करते रहे ।[3] अन्त में प्रभु के प्रभाव से उसे ज्ञान हुआ और स्यमंतक मणि कृष्ण को लौटा दी और अपनी कन्या का विवाह कृष्ण से कर दिया । सत्राजित को राज्य सभा में आमंत्रित कर कृष्ण ने स्यमंतक मणि दे दी । और अपनी पुत्री सत्यभामा का कृष्ण से विवाह कर दिया, कृष्ण ने सत्राजित को स्यमंतक मणि लौटा दिया ।[4] ब्रजभाषा में सत्यभामा के विवाह का उल्लेख नहीं मिलता है । सूरदास के अनुसार कृष्ण ने जांबवंती से विवाह किया था ।

---

१ - कीर्तन - १६०६ पृ० १४३

२ - वही - १४०८-१४१६ पृ० १२४-१२५

३ - वही - १४२४- पृ० १२६

४ - वही - १४६६ - १४७७ पृ० १३०

सत्यभामा का मान तथा नरकासुर वध : शंकरदेव ने इस प्रसंग को लेकर पारिजात हरण नामक एकांकी नाटक की रचना की है । नारद स्वर्ग से पारिजात कुसुम लाकर कृष्ण को अर्पित करते हैं और उसका महिमा वर्णन रुक्मिणी की उपस्थिति में करते हैं जो इस पुष्प को धारण करेगा वह सदैव सौभाग्यशाली होगा । इतना सुनते ही रुक्मिणी ने कृष्ण के चरणों का स्पर्श कर विनती की, प्रभु यह पुष्प मुझे प्रदान करें । कृष्ण ने सप्रेम पारिजात कुसुम को रुक्मिणी के केश में लगा दिया [1] । सत्यभामा के मंदिर में प्रवेश कर नारद ने इस घटना का अतिरंजित वर्णन किया और सत्यभामा के दुर्भाग्य पर दुख प्रकट किया [2] । मानिनी सत्यभामा को कृष्ण ने पारिजात पुष्प देने का वचन दिया । सत्यभामा सहित कृष्ण गरुड़ के स्कंध पर चढ़ प्रागज्योतिषपुर पहुंचे और शंख बजाया, उसे सुनते ही नरकासुर युद्ध के लिए दौड़ा । कृष्ण ने बाण प्रहार कर उसका मस्तक और स्कंध छेद दिया देवताओं ने कृष्ण पर पुष्प वर्षा की तथा दुंदुभि बजा कर उनका अभिवादन किया । नारद कृष्ण के अनुरोध पर इन्द्र की सभा में गए और सत्यभामा के लिए पारिजात पुष्प मांगा। शची नेपुष्प देना अस्वीकार कर दिया [3] । इसके उपरांत शची तथा सत्यभामा ने पारिजात के लिए कलह किया । शची ने इन्द्र के पुरुषार्थ की भर्त्सना की, इन्द्र ने कृष्ण के ऊपर वज्र प्रहार किया किन्तु कृष्ण ने उसे नष्ट कर दिया [4] । इन्द्र ने माया से मोहित होने के कारण ईश्वर से युद्ध किया, इसके लिए उन्होंने पश्चाताप किया और कृष्ण की करबद्ध वंदना की [5] । पारिजात पुष्प को इन्द्र ने सहर्ष अन्य संपत्ति के साथ कृष्ण को अर्पित कर दिया । सत्यभामा के उपवन में कृष्ण ने पारिजात रोपण किया और उनका मनोरथ पूर्ण हुआ [6] ।

नंद-यशोदा और गोपियों से श्री कृष्ण-बलराम का कुरुक्षेत्र में मिलन : भागवत के दशम के उत्तरार्द्ध की कथा को लेकर शंकरदेव ने छः सौ दो पदों की : कुरुक्षेत्र की रचना की है। कृष्ण-बलराम द्वारका के नागरिकों सहित कुरुक्षेत्र जाते हैं और वहीं स्नान कर विप्रों को दान देते हैं [7] । इसके उपरांत द्रौपदी कृष्ण की प्रमुख रानियों से मिली और उनका आदर

---

१ - शंoनाo - पृ० १३६

२ - वही - पृ० १३६

३- शंoनाo- १५६

४ - वही - १५६

५ - वही - १६१

६ - वही - १६४

७ - कु० - ३२ पृ० ३

सत्कार किया[1]। कृष्ण के कुरुक्षेत्र आगमन का समाचार जब गोकुल वासियों को प्राप्त हुआ तो वे अत्यन्त हर्षित हुए और कृष्ण के दर्शनार्थ यात्रा का प्रबंध किया। सर्वप्रथम वासुदेव नंद से मिले और उनके प्रति आभार प्रकट किया कि आप ने पिता तुल्य मेरे पुत्रों का पालन किया - इसके उपरांत यशोदा कृष्ण बलराम से मिल कर रोने लगीं, कृष्ण की बाल लीलाओं का स्मरण कर उनका दुख दस गुणा अधिक हो गया[2]। कृष्ण को ब्रजसुंदरियों ने मंडल के मध्य बैठा कर उनको आंख भर देखा, उनका संताप दूर हुआ[3]। गोपियां ब्रज से द्वारका जाने वाले पथिकों से कृष्ण के लिए संदेश भेजती हैं[4]। इसके उपरांत रुक्मिणी से कृष्ण ब्रज की क्रीड़ाओं का वर्णन करते हैं। रुक्मिणी स्वयं कृष्ण को ब्रज जाने का अनुरोध करती हैं[5]। यादवों सहित कृष्ण सूर्य ग्रहण के अवसर पर कुरुक्षेत्र पधारे और जननी यशोदा को सूचना देने के लिए दूत भेजा। नंद-यशोदा, गोपियां श्रीकृष्ण के दर्शनार्थ कुरुक्षेत्र पहुंची। रुक्मिणी ने गोपियों का वृहत्त समुदाय देख कर कृष्ण की सखी राधा के विषय में पूछा। कृष्ण ने राधा की ओर संकेत किया ही था कि वे दोनों आपस में ऐसी मिलीं जैसे एक पिता की दो बिछुड़ी हुई पुत्रियां मिली हों -- राधा[6] को रुक्मिणी अपने मंदिर में ले गई और नाना प्रकार के आभूषणों से अलंकृत किया।

<u>वर्षा वर्णन</u> : शंकरदेव का वर्षा वर्णन दशम स्कंध भागवत का छायानुवाद मात्र है, कहीं कहीं लोक प्रचलित उपमाओं के योग से यह वर्णन अधिक आकर्षक हुआ है। तुलसीदास ने राम लक्ष्मण के संवाद द्वारा वर्षा वर्णन किया है। शंकरदेव के दशम स्कंध में शुकमुनि राजा परीक्षित से वर्षा का वर्णन करते हैं। वर्षा काल में सूर्य, चंद्र तथा तारागण मेघों से ढक जाते हैं जैसे जीवात्मा शरीर से छिन्न होता है। पृथ्वी ग्रीष्म के तप से तप्त हुई, वह अब वर्षा के जल से पुनः हरी भरी हो गई जैसे तप करने से देह सूख जाता है और भोग भोगने से शरीर पुष्ट हो जाता है। वर्षा की रात्रि में घर घर अग्नि जलती है आकाश में तारा गण नहीं दिखाई देते हैं जैसे कलियुग में वेद-शास्त्र आदि ग्रंथ लुप्त हो गए हैं और

---

१ - कु० - ४० पृ० ४

२ - वही - ११३ पृ० ६

३ - वही - १३६ पृ० ११

४ - भू०सा० - द्वा० व० - २७ पृ० २०३

५ - वही - प० ३५ पृ० २०५

६ - वही - प० ५० पृ० २०८

लोग पाखंड को सुनते हैं । मेघों का नाद सुनने पर मेढक ऐसे बोलते हैं जैसे गुरु के पाठ देने के पश्चात शिष्य गण पाठ पढ़ते हैं[1] । क्षुद्र नदियां अपने कगार को तोड़ कर इधर उधर से बहती हैं । नदी- का संगम सागर एक हो गया है जैसे जिस योगी का काम कष्ट नष्ट नहीं होता है वह विषयों को पाते ही भ्रष्ट होता है । मूसलाधार वृष्टि से पर्वत को कुछ भी कष्ट न हुआ जैसे जिस व्यक्ति का मन कृष्ण में लग गया है उसे क्लेश का भय नहीं[2] । सारे मार्ग तृण द्वारा ढक गए हैं, जिससे लोगों का आना जाना बन्द हो गया है, जैसे द्विज वेदाभ्यास नहीं करते हैं और अपना मार्ग भूल गए हैं जिससे वेद मार्ग नष्ट हो गया है । मेघों में बिजली चमक कर लुप्त हो जाती है जैसे महापुरुषों के मिलने पर भी वेश्या का मन स्थिर नहीं होता है । मेघ का गर्जन सुनकर मयूर प्रसन्न हो नाचने लगते हैं, जिस प्रकार परम दुख से दुखित गृहस्थ हरि भक्त को पा प्रसन्न होता है। चकोवा पक्षी कंटक पूर्ण सरोवर के तट पर विश्राम करता है -- गृहवास के दुख को जानते हुए भी दुराशय प्राणी उसे नहीं छोड़ते हैं[3] । मेघ की प्रबल वर्षा से आलि सब भाग रहे हैं जैसे कलियुग में वेद पथ का त्याग कर लोगों ने पाखंड को ग्रहण कर लिया है, वायु के चलने से मेघ चारों ओर से वृष्टि करते हैं जैसे वैदिक विधान के पुरोहित राजा से दरिद्रों को दान दिलाते हैं[4] ।

तुलसीदास के राम चरितमानस और शंकरदेव के दशम स्कंध के वर्षा वर्णन में अधिक साम्य दिखाई देता है । तुलसीदास के राम लक्ष्मण से कहते हैं जैसे खल की प्रीति स्थिर नहीं होती है वैसे ही घन में दामिनि चमक कर लुप्त होती है खल के कटु वचन को भी संत सहन कर लेते हैं जैसे गिरि बूंदों के आघात को सहते हैं । छोटी नदियां वर्षा होते ही कगारों को तोड़कर इधर उधर से बहने लगती हैं, जैसे थोड़ा धन पाते ही खल उन्मत्त हो जाता है, भूमि पर गिरते ही मेघ पानी हो जाता है जैसे जीव संसार में आते ही माया द्वारा आच्छादित हो जाता है । भूमि हरित तृणों से ढक गई है, मार्ग दिखाई नहीं देते हैं जैसे पाखंडवाद के कारण सद्ग्रंथ लुप्त होअ गए हैं । चारों ओर मेढकों का शब्द सुनाई

---

१ - शं० द० - ७७५-७७८ पृ० ६५
२- वही - ७८२-७८८ पृ० ६६
३ - वही - ७९५
४- वही - ७९७ पृ० ६७

देता है -- जैसे ब्रह्मचारी गण वेद पाठ कर रहे हों । अर्क जवास के पत्ते गिर गए हैं, जैसे सुन्दर राज्य में खल का उद्यम समाप्त हो जाता है । उपकारी की संपत्ति की भांति पृथ्वी शस्य श्यामला हो गई है । चक्रवाक पक्षी नहीं दिखाई देता है जैसे कलियुग में धर्म दूर हो जाता है । प्रबल पवन के वेग से मेघ इधर उधर हो जाते हैं जैसे कुपुत्र के उत्पन्न होने से कुल का सद्धर्म नष्ट हो जाता है । सूर्य दिन में कभी दिखाई देता है, कभी घोर अंधकार हो जाता है, जैसे सत्संग में ज्ञान उत्पन्न होता है और कुसंग में नष्ट हो जाता है ।[1] वर्षा ऋतु का वर्णन सूरदास ने संयोग और वियोग दोनों पक्षों के रति भाव उद्दीपन के लिए किया । वन वन में कोकिल कंठ सुनाई देता है, दादुर शोर करते हैं । घन घटा के बीच नभ में श्वेत बग-पंगति दिखाई देती है । जैसी घोर घन घटा है, वैसे ही दामिनी दमकती है । पपीहा रटता है और बीच-बीच में मोर बोलता है । हरी हरी भूमि शोभित होती है और उसके ऊपर लाल रंग की बीर बहूटी[2] चित्त चुराती है । भरी भरी सरिताएं मर्यादा तोड़ कर सरोवर के लिए उमंग चलीं ।

<u>शरद वर्णन :</u> शंकरदेव ने दशम में शरद ऋतु का वर्णन किया है । मेघों के हट जाने से गगन निर्मल हो गया -- महासुखकर सुरभि शीतल वायु बहती है, सरोवर के तट पर पुष्पों के उद्यान में पक्षी कलरव कर रहे हैं, जिस प्रकार योग भ्रष्ट का दूसरे बार के अभ्यास करने के उपरांत मन निर्मल ~~होने लगे । पृथ्वी~~ हो जाता है । आकाश के समस्त नक्षत्र प्रकाशित होने लगे। पृथ्वी का पंक नष्ट हो गया, सरोवरों का जल स्वच्छ हो गया, मार्ग चलने योग्य हो गए ।[3] मेघों ने जल वर्षा करके अपने शरीर को शुभ्र कर लिया, जैसे मुनि गण वित्त लाभ का त्याग कर शुद्ध होते हैं। प्रत्येक स्थान से पर्वत अब जल दान नहीं करते हैं जैसे ज्ञानी गुरु शिष्यों से समस्त गुप्त ज्ञान नहीं कहते हैं । अल्प जल की मछलियों ने यह न जाना कि जल सूख जायगा, जैसे आयु नित्य घटती जा रही है, किन्तु मूढ़ प्राणी ध्यान नहीं देता है । सूर्य के ताप से तालों में मछलियों की संख्या कम हो रही है, जैसे महादुखी कुटुंब का मनुष्य दुख का अन्त

---

१ - रा०च०मा० - पृ० ४८६-४६०

२ - छवि ब० सू०- पृ० ४६५

३ - शं० दशम- ८२१-८२४ पृ० ६८

नहीं देखता है । शरत काल के सागर में उर्मियों का रौल नहीं सुनाई देता है जैसे वेद पा
प्राप्त कर मुनि चित्त शांत करने के लिए बैठा हो । शरत काल में सूर्य ताप के दुख को चं
दूर करता है जैसे विरह तप्त गोपियां कृष्ण का मुख देख शीतल होती हैं । सूर्य के प्रका
होते ही पद्म वन विकसित हो जाता है, जैसे राजा के उदय से सभी सुखी होते हैं किन्तु
चोर आकुल होता है ।[1]

तुलसीदास ने शरद ऋतु का वर्णन रामचरितमानस में किया है । कास फूल गए हैं
ऐसा लगता है कि वर्षा का वृद्धत्व आ गया हो अगस्त ने पंथ का जल सुखा दिया जैसे
लोभ संतोष का शोषण करता है, सरिता सर का जल निर्मल हो गया है जैसे संत के
हृदय से मद मोह का नाश होने पर वह शुद्ध हो जाता है सरिता-सर का पानी धीरे ध
सूख रहा है जैसे ज्ञानी ममता का त्याग करता हो । नीति निपुण नृप के सुकृत्य की भां
पृथ्वी पर पंक नष्ट हो गए हैं जल की कमी के कारण मीन व्याकुल हो गई जैसे अज्ञानी
हीन कुटुंबी चिंतित होता है । जैसे हरिजन समस्त आशाओं का त्याग कर देते हैं वैसे ही
बिना मेघों के आकाश शोभित हो रहा है । कमल के फूलने पर सर ऐसा शोभित होता
जैसे निर्गुण ब्रह्म सगुण हो गया हो । रात को देख चक्रवाक दुखित होता है जैसे दुर्जन प
ई संपत्ति को देखता है । संतों के दर्शन से पातक नष्ट हो जाता है, जैसे शरदाताप का हर
रात्रि का शशि करता है । चकोर इंदु को देखते हैं जैसे हरिजन ईश्वर को देखते हैं ।[2]

वर्षा के उपरांत शरद ऋतु का भी सूरदास ने किंचित उल्लेख किया है ``सरोवरों
नए नए सरोज और कुमुदिनी फूल गई, चारु चंद्रिका उदय हो गई, घटाओं की कालिमा अ
तेज नष्ट हो गया । आकाश निर्मल हो गया, पृथ्वी पर काश कुसुम छा गए, स्वाति नक्षत्र
गया, सरिता और सागर का जल उज्ज्वल हो गया, जिसमें अलिकुल के सा
कमल शोभित हो गए पर शरद समय भी श्याम नहीं आए ।[3]

---

१ - भा० दशम - ८२६ - ८३१ पृ० ६६

२ - रा० च० मा० - पृ० ४६१

३ - व०- सू० - पृ० ४६७

पंचम अध्याय

सिद्धान्त पक्ष

प्रस्तुत अध्याय में असमिया तथा हिंदी वैष्णव कवियों के दार्शनिक दृष्टिकोण को उपस्थित किया गया है । ईश्वर,जीव प्रकृति,माया आदि विषयक सिद्धान्तों का प्रतिपादन कर शंकरदेव तथा माधवदेव के एक शरण धर्म, नाम धर्म, सत्संग तथा भक्ति की तुलनात्मक समीक्षा की गयी है । अव्यभिचारिणी और प्रेम-लक्षणा भक्ति की भी समालोचना इसअध्याय में की गयी है । भक्ति रस तथा वैष्णव काव्य में प्रयुक्त शांत रस की भी आलोचना की गयी है ।

नारद के उपदेश के अनुसार महर्षि व्यास देव ने जब ईश्वर का ध्यान किया तो उनके हृदय में यह रूप प्रकाशित हुआ । कृष्ण के रूप का ध्यान किया तो कृष्ण को अपने हृदय में विद्यमान देखा-- व्यास यह देखकर रोमांचित हो गए कि उनके बाईं ओर माया और दाहिनी ओर भक्ति है,माया ही बांधती है और भक्ति ही मुक्त करती है,इन्हीं दोनों के मध्य में भगवान हैं[1] । द्वितीय स्कंध में कहा गया है,ब्रह्मा ने जब सृष्टि के लिये तप किया उस समय भगवान ने अपना रुप उनके सामने प्रकट किया था । ब्रह्मा ने देखा `अलौकिक नित्य बैकुंठ लोक में चतुर्भुज,कुंडलधारी,अनुपम सुन्दर,और आनंद के आधार लक्ष्मीपति,यज्ञपति श्रीकृष्ण पार्षदगण हैं और संसार के नाना भोगों द्वारा उनकी सेवा हो रही है । सृष्टिकर्ता ने इस रूप को प्रत्यक्ष देखा और परम पुरुष ने चतु:श्लोकी भागवत द्वारा इसे व्यक्त किया कि सृष्टि के आदि मध्य अंत में वे ही हैं। उनके अतिरिक्त शेष मिथ्या माया के विलास मात्र हैं-- उनकी शक्ति का नाम माया:माया वास्तविक वस्तु को ढाककर उसके स्थान पर अन्य वस्तु को प्रकाशित करती है,इसी लिये प्राणी ईश्वर के वास्तविक रूप को न देख केवल वासना के विषयों को देखता है । जिस प्रकार से पंच महाभूत स्थावर जंगम में स्थित हैं इसप्रकार माया भी समस्त जगत में व्याप्त है,तो भी उसका गुण दोष मुझे स्पर्श नहीं करता है । साधुओं की संगति द्वारा मेरे स्वरूप का विचार करना चाहिए वहीं से ज्ञान विज्ञान का ज्ञान होगा। ज्ञान का साधन मेरी श्रवण कीर्तन भक्ति है।जिस रूप में

१- कृष्णर मूर्तिक पाछे करिलंत ध्यान
हृदयते कृष्णक देखिला विद्यमान
वाम पाछे माया दक्षिणत भक्ति भाव
देखि व्यास ऋषिर रोमांच भैल गाव ।।६४।।प्रथम स्कंध भागवत-शंकरदेव

मैं तुम्हारे सम्मुख प्रकट हुआ हूं यह मेरा निज स्वरुप है।[१] शंकरदेव ने यहां भी माय और माया के कार्यादि का प्रकाश भगवान के स्वरुप के भीतर किया है ---

> 'नाहि देहेन्द्रिय समस्त कर्त्तार,शक्तिक धरा अकले ।
> तुमिसि सर्व्वेश कर्त्ता,तोमाक सेवे सकले ।।कीर्तन १६६५
>
> जानिलो साक्षाते तुमि पुरुष पुराण
> निरंजन आनंद स्वरुप सर्व्वजान ।।
> तुमिसे केवले सचा सने मायामय
> तोमातेसे हन्ते होवे सृष्टि स्थिति लय ।।१० स्कंध ८२

इन उक्तियों की आलोचना कर हम ईश्वर के स्वरुप के विषय में इस सिद्धांत तक पहुंचते हैं--जो सर्वशक्तिमान,सर्वज्ञ,सत्यस्वरुप आनंदस्वरुप,सर्वकर्ता,सृष्टि स्थिति लय का आधार और निमित्त कारण सर्वफलदाता जो है वही ईश्वर है ।
कालमाया आदि उनकी शक्ति हैं,वे उनसे भिन्न नहीं हैं ।

> जन्म मरणरो मिटो कारण प्रकृति
> जीवको आवरे सिटो तोमार शक्ति ।। कु०घो० १६३४४
> 'अनादि रुपिणी ईश्वर सहाय ।
> व्यक्त भैला महामाया ईश्वर इच्छाय।।'अनादि पतन ४५

१- जातर पूर्व्वे मइ मात्र थाको जान
कार्य कारणर किछु नाछिलेक आन
मोक माल देखियोक सृष्टिर मध्यत
देखा सुना माने सबे मन्नि किवारत
मयिं मात्र अवशेषे थाकोहो अंतत
कुंडल भांगिले येन सोना स्वरुपत । ६४६ द्वितीय स्कंध- शंकरदेव
अवस्तुक देखाय वस्तुक आवरि
एहिसे मोहोर माया जाना निष्ठ करि । ६५०
एक्मिते माया आर करि ईश्वरक
आशार विषय ताक देखावे जीवक ।।
येन महा पंचभूते करिया निवास.

शुनियो प्रकृति एको गुणे नाहि हीन
तोमारे आमारे किंचितेको नाहि भिन ।।
मोर निज प्रकृति साक्षाते देखो प्राण
सत्वरे करियो माया जगत निर्माण ।।
तोमाक तेवाइलों आमि एहि अभिप्राय ।
जानि मोक माले तुमि मोर अर्द्धकाय ।।
तोमारे आमारे किछु नाहि भिन्नाभिन्न
मोते यातो लीन माहा रहिखानि हीन ।।४९-५०

नंददास के मतानुसार ईश्वर अजन्मा है, उसको किसी ने उत्पन्न नहीं किया। वह अनंत रुप होते हुए एक है । वह जगत का निमित्त और उपादान दोनों कारण है। वह ज्योतिमय रुप भी है । इसी ज्योति रुप का योगी ध्यान करते हैं । वह प्रेम रुप भी है और रस रुप विधि तथा नित्य भी। भक्त जन इसी रुप का ध्यान करते हैं इस प्रकार नंददास ने ईश्वर में अनेक धर्मों का आरोप कर उसे धर्मी बताया और उसके व्यक्त-अव्यक्त आदि धर्मों को बता कर उसे विरुद्ध धर्मत्व का आश्रय कहा । दशम स्कंध भाषा में नंददास ने ईश्वर विषयक अपने भाव कृष्ण की अनेक स्तुतियों में प्रकट किए हैं । उक्त ग्रंथ के दशम् स्कंध वे कहते हैं-- "हे प्रभु आप परम पुरुष हैं, सब जड़ चेतन के आप ही कारण हैं, आप ही पालनकर्ता, आप ही तारने वाले और आप ही संहार करने वाले हैं। जो विश्व व्यक्त अव्यक्त है, वह आपका ही रुप है । काल का विस्तार भी आप की लीला का विस्तार है । सब प्राणी भी आप ही के विस्तार स्वरुप हैं अर्थात प्राणिमात्र आप ही के स्वरुप हैं । आप सर्वव्यापी अंतर्यामी हैं। सब के ईश और अच्युत हैं। सम्पूर्ण प्रकृति और सम्पूर्ण शक्ति तीनों गुण, जीव, जीवन सब कुछ आप ही हैं । सर्वत्र आप के सिवाय और कोई दूसरा नहीं है। हे करुणानिधान आप मुझे अपनी भाव भक्ति दीजिए । इन पंक्तियों में[१] नंददास ने वल्लभाचार्य के अद्वैत ब्रह्म अथवा ब्रह्मवाद का प्रतिपादन किया है ।

तुलसीदास जी के राम जगत प्रकाशक अखिल ब्रह्मांडनायक, विराट रुप जगत की मर्यादा और गरुड़ पर चढ़ते हैं । आप ब्रह्म हैं, वर देनेवाले देवताओं के आप

१- न०ग्र० सं० पृ० ४९५

स्वामी हैं। वाणी के अधिष्ठाता ,सर्व व्यापक निर्मल,महान बलवान और मुक्ति के आप स्वामी हैं । महामाया,महत्तत्व शब्द,रुप,रस,गंध ,स्पर्श,सत्व,रज,तमोगुण सर्वदेव,आकाश,वायु,अग्नि,निर्मल जल और पृथ्वी,बुद्धि,मन,इंद्रियां,पंचप्राण,चित्त,आत्मा,काल,परमाणु,महाचैतन्य शक्ति आदि जो कुछ प्रकट और अप्रकट है, वह सब हे राजराजेश्वर,हे विष्णु भगवान आप का ही रुप है। आप अभेद रुप से सब में रम रहे हैं । यह सारा ब्रह्मांड आप का ही अंग है । आप के दोनों चरणों की शिव जी वंदना करते हैं और वही चरण गंगा जी के उत्पादक हैं । आप ही आदि हैं आप ही मध्य और आप ही अंत । ब्रह्मवादी ज्ञानीजन आपको हे ईश सर्व व्यापी देखते हैं । जैसे वस्त्र में तंतु,घड़े में मिट्टी,सांप में माला,लकड़ी के बने हुए हाथी में लकड़ी और कंकरण में सोना देखा जाता है,उसी प्रकार आप विश्व में दिखाई देते हैं[१] । आप का तेज बड़ा ही तीक्ष्ण है,संसार के नित्य नूतन और प्रचंड ताप संतापों के आप नाशकर्ता हैं । राजा का शरीर होने पर भी आपका रुप तमोमय है । आप अविद्या से तप:शील हैं । मान मद,काम,मत्सर,मनस्कामना,और मोहरुपी समुद्र को आप मंदाचल है । और विचारशील हैं[२] । तुलसीदास के राम शुद्ध सदा स्वरुप,चैतन्य व्यापक ब्रह्म हैं वही मूर्तिमान होकर नरलीला करने के लिए साकार रुप में प्रकट हुए हैं । जब ब्रह्मा प्रभृति देव और सिद्ध दैत्यों के अत्याचार से व्याकुल हो गए तब उनके संकोच से आपने विशुद्ध गुण-विशिष्ट नर शरीर धारण किया[३] ।

ब्रह्म

निरुपाधिक चैतन्य ही परब्रह्म अथवा ब्रह्मतत्व है । यह वाक्य,मन इन्द्रियादि से अगोचर है । समस्त वस्तुओं के निषेध करने के पश्चात जो निर्विशेष

१- वि०प० पद ५४ पृ० ११६

२- वि०प० पद० ५५ पृ० १२१

३- वि०प० पद ४३ पृ० ९६

अपरिच्छिन्न निराकार तत्व शेष रहेगा वह यह है :--

नपावै इन्द्रिय सवे माहार गोचर
मिटो नोहै मन बुद्धि वचन गोचर ।।
येन फिरिंगतियम वहिर बजाइ ।
नकरे प्रकाश सिटो वहिक दुनाइ ।।
सेहि मन आदि तान्ते हुआ आछे जात ।
मायात थाकिया ताक नाजाने साक्षात ।।
जेदेखो माहाक निरुपिवे नपारम ।
निशेषर शेष बुलि प्रकारे कहय ।।
मात बिने काहारो नाहिके रको सिद्धि
थिटो ब्रह्मतत्व होवै सवारो अवधि ।। निमिनवसिद्ध संवाद
१८२-१८४ -- शंकरदेव ।

सूरदास के कृष्ण आदि, अनादि अनूप और सर्वान्तर्यामी हैं । श्री कृष्ण ही अंश और कला रूप में अनेक रूप धारण करते हैं । जीव रूप में जगत रूप में तथा सम्पूर्ण देवता रूप में, जो कुछ भी इस जगत में है सब उन्हीं का अंश है । श्री कृष्ण अखंड रस-रूप से अपनी आदि रस शक्ति राधा के साथ युगल रूप में विहार करते हैं । वे ही अक्षर ब्रह्म रूप हैं और वे ब्रह्मा, विष्णु और शिव हैं। ये सम्पूर्ण रूप उन्हीं से अंश रूप बन कर प्रसूत हैं । उनके निर्गुण रूप तक हमारा मन और हमारी वाणी नहीं पहुंच सकती, इसलिए उनके सगुण रूप[1] की व लीला का गुणगान ही सूर ने आध्यात्मिक सिद्धि का साधन माना है । ब्रह्म को सगुण और निर्गुण दोनों बता कर सूर ने ब्रह्म के विरुद्ध धर्मत्व के भाव को स्वीकार किया है । सगुण रूप में वे युगल-रूप से नित्य रास-विहार करते हैं। उनका सौंदर्य अमित है उनके अनेक रूप हैं । सूर ने ब्रह्म, प्रकृति, पुरुष आदि की अद्वैतता स्वीकार की है तथा पर ब्रह्म और श्रीकृष्ण का एकीकरण किया है अर्थात पूर्ण पुरुषोत्तम पर ब्रह्म श्रीकृष्ण ही हैं । वह एक है, रस रूप है, अखंडित है,

---

१- अ०व०सं० पृ० ४०६

अनादि,और अनुपम है । सृष्टि के आदि में भी वही था,उससे पहले अन्य कुछ नहीं था। सृष्टि के सम्पूर्ण देवता,माया प्रकृति तथा आदि पुरुष श्रीपति लक्ष्मीनारायण ये सब कृष्ण के ही अंश हैं।[१] पर ब्रह्म के अंतर्यामी स्वरुप और उनके विराट रुप का वर्णन सूरदास ने दशम स्कंध सूरसागर में अनेक स्थानों पर विस्तार से किया है ।[२]

नंददास अद्वैत ब्रह्म को मानते थे । वल्लभ मतानुसार उन्होंने भी अनेक स्थानों पर कृष्ण के पर ब्रह्म होने के भाव को व्यक्त किया है । पर ब्रह्म श्रीकृष्ण गोकुल अथवा गोलोक में रस रुप से नित्य लीला मग्न रहते हैं । वह रस-रूप ब्रह्म नित्य,आत्मानंद,सदा एक रस,अखंड और घट घट में अंतर्यामी हैं । नंददास इसी रस-रुप के उपासक थे। `सिद्धांत पंचाध्यायी में कृष्ण की स्तुति करते समय वे कहते हैं कि कृष्ण के अपार रूप,गुण और कर्म हैं । जिस माया शक्ति ने यह सृष्टि रची है,वह उन्हीं कृष्ण की है । उनकी माया ही इस विश्व का सृजन पालन और संहार करती है । पर ब्रह्म श्रीकृष्ण षट गुण संपन्न हैं और समय समय पर वे ही अवतार धारण करते हैं । नारायण ईश्वर वे ही हैं ।[३] परमानंद के श्रीकृष्ण ही साक्षात पर ब्रह्म परमात्मा हैं,कृष्ण ही एक से अनेक रूप धारण करते हैं और उन्हीं को वेद नेति नेति कहते हैं । पर ब्रह्म गुण रहित तथा सगुण दोनों हैं । निर्गुण ब्रह्म ही सगुण रूप धारण करता है ।[४] परमानंद यह भी कहते हैं-- `ये मुख्य तीन देवता ब्रह्मा विष्णु और रुद्र कृष्ण के ही गुणावतार हैं ये अनेक प्रकार के वर देने में समर्थ हैं । परन्तु मेरे उपास्य देव तो राधिका वल्लभ श्रीकृष्ण ही हैं ।[५]

१-अ०व० सं० पृ० ४०७

२- अ०व० सं०- पृ० ४०६

३- वही - पृ० ४१४-४१५

४- वही - पृ० ४१०

५- वही० - पृ० ४१३

प्रकृति : सांख्याचार्यों ने प्रकृति को जगत का मूल कारण कहा है--किन्तु उनके मतानुसार प्रकृति का सृजन किसी ने नहीं किया है-- यह अनादि और नित्य है वहां किसी चेतन व ज्ञानी पुरुष की अर्थात ईश्वर की प्रेरणा व इच्छा की अपेक्षा नहीं । योग दार्शनिक गुण यद्यपि ईश्वर नाम के एक सर्वज्ञ व्यक्ति का अस्तित्व मानते हैं तथापि वे प्रकृति के सृष्टा नहीं हैं । असमिया वैष्णवों का मत इन लोगों के मत से भिन्न है ।

आचार्य रामानुज के अनुसार प्रकृति अचित :जड़: पदार्थ,भगवान का विशेषण है अत: नित्य है । माधव के मतानुसार भगवदिच्छा को प्रकृति व माया कहा जाता है । आचार्य वल्लभ के अनुसार ब्रह्म व ईश्वर की अभिव्यक्ति चार प्रकार की है-- अक्षर,काल,कर्म स्वभाव । अक्षर- ब्रह्म ही प्रकृति और पुरुष रुप में अभिव्यक्त होता है इनके मत से प्रकृति ब्रह्म का कार्य है निम्बार्क और गौड़ीय वैष्णवों के मतानुसार भगवान अपनी असाधारण शक्ति व अचित्य शक्ति के प्रभाव में जगद् रुप में परिणित होते हैं । प्रकृति की उत्पत्ति के संबंध में असमिया वैष्णवों का मत इन लोगों से मिलता है,यद्यपि उसके स्वरूप और लक्षण आदि अद्वैतवादियों के साथ मिलते हैं ।

वल्लभ मतानुसार,सच्चिद,गणितानंद,अक्षर ब्रह्म से पूर्ण पुरुषोत्तम की इच्छानुसार अग्नि के चिनगारी के समान उसके चिद अंश से जीव और सत अंश से जड़ जगत की उत्पत्ति हुई। ब्रह्म की इच्छा इस सम्पूर्ण प्रपंच सृष्टि का कारण है। ब्रह्म के आनंद और चिद धर्मों के तिरोधान से ब्रह्म का सद् अंश जगत बना । य यह जगत अनेक रुपात्मक है,परन्तु यह अनेक रुपता ब्रह्म के एक सद अंश का ही परिणाम मात्र है,पर ब्रह्म तो श्रीकृष्ण ही हैं,कृष्ण का व्यक्त अक्षर रूप सच्चिदानंद स्वरूप है । वल्लभाचार्य ने कहा है कि[1] वह अक्षर ब्रह्म ही `एतत प्रकारेण`इस प्रकार जगत का रूप हो जाता है । वल्लभ[2] संप्रदाय अथवा पुष्टि मार्ग जगत के संबंध में अविकृत परिणामवाद को मानता है । वल्लभाचार्य जी ने कहा है कि सृष्टि के आदि में परम तत्व के परिणाम से २८ तत्वों का प्रत प्रादुर्भाव हुआ। इन तत्वों के नाम ये हैं -- सत,रज,तम,पुरुष,प्रकृति महत्,अहंकार पंचतन्मात्रा

१- अ० व० सं० - पृ० ४३५

२- वही० - पृ० ४३६

।शब्द,वायु,तेज ,जल,पृथ्वी। पंच कर्मेन्द्रियां,पंच ज्ञानेन्द्रियां ।कान,त्वक,घ्राण नेत्र, जिह्वा। और मन । अक्षर ब्रह्म हरी पुरुष,काल कर्म और स्वभाव रुप धारण करता है । तभी अक्षर ब्रह्म के चित् रुप से जीव रुप पुरुष और सत अंश से प्रकृति का प्रादुर्भाव होता है [1]। जगत का उपादान कारण प्रकृति है-- जो वस्तुत: ब्रह्म का ही अविकारी परिणाम है [2]।

जीव : पूर्वार्जित कर्मवासना के फल के अनुसार,उन्हीं कर्मों के भोग के लिये अन्तर्यामी परमात्मा द्वारा प्रेरित हो पूर्वोक्त 'पांच ज्ञानेन्द्रिय,पांच कर्मेन्द्रिय, पंचतन्मात्र रूप विषय और मन साथ मिलकर रहते हैं । इसे ही सूक्ष्म शरीर या लिंग शरीर कहा जाता है । सोलह पदार्थों द्वारा गठित होने के कारण इसे षोरशकल या सोलह कला विशिष्ट कहा जाता है । मन को केन्द्रित कर शेष अनेक पदार्थ मिलते हैं अत: इसके भीतर मन या अंत:करण ही प्रधान है । स्वभाव से यह समस्त पदार्थ जड़ और अचेतन हैं अत: एक दूसरे के साथ मिल नहीं सकते [3]। बुद्धि का स्वरूप निश्चय ज्ञान,चित्त की वृत्ति अनुसंधान व स्मरण,अहं,अथवा मैं,मैं, की अभिमान वृत्ति ही अहंकार और संकल्प- विकल्पात्मक वृत्ति का नाम मन है । इस समुदाय को ही अंत:करण कहा जाता है और कभी कभी मन शब्द के द्वारा भी इसे अंत:करण कहा जाता है [4]। यह अन्त:करण अत्यन्त स्वच्छ,निर्मल वस्तु, वह पूर्वोक्त फल व भगवान की कृपा से प्रतिफलित होता है । तब वही प्रतिबिंबित चैतन्ययुक्त मन व अंत:करण चेतन रुप में प्रकाशित होता है । यही प्रतिबिंबित चैतन्य ईश्वर ही जीव है ।

'आछे मन समस्त प्राणरि हृदयत ।
ईश्वरर प्रतिबिम्ब लागिछे मनत ।।
ताके बुलि जीव मन एरे भिन्न न्युह।
एक पिण्ड भैला येन लोहा अग्नि दुइ ।।अ०पा०६६-६७

शंकरदेव

१- अ०व० सं० - पृ० ४३८

२- वही० - ४३६

३- मनोरंजन शास्त्री- असमर वैष्णव दर्शनर रुपरेखा- ११६ पृ०

४- वही 〃 〃 〃 〃 - पृ० ११७

तुम्हीं सत्य ब्रह्म हो तुम्हीं में यह अनंत जगत प्रकाशित होता है सदैव जगत में अंतर्यामी भगवान तुम्हीं प्रकाशित होते हो ।[1] इन्द्रियों के साथ जीव विषयों को भोगता है और मायामय शरीर को आत्मा मानता है ।[2] सूरदास के अनुसार ब्रह्म ही अपने चित अंश से अनेक जीव रूप में स्थित है । जीव और ईश्वर की अद्वैतता का भाव सूर ने कई स्थानों पर बताया है । सूरदास ने जीव को भगवान की चेतन शक्ति का ही स्वरुप माना है । सृष्टि का सम्पूर्ण प्रसार, सम्पूर्ण तत्व, प्रकृति, पुरुष लक्ष्मीनारायण देवता तथा सम्पूर्ण जीव सब गोपाल कृष्ण के अंश हैं । उन्होंने इस कथन से ईश्वर और जीव के अंशी-अंश संबंध का समर्थन किया है । पर ब्रह्म श्रीकृष्ण का अंश- रुप-जीव इस संसार की माया में पड़कर अपने सत्य स्वरुप को भूल जाता है । वह जीव अपनी आत्मा में स्थित, परन्तु प्रच्छन्न आनन्दांश और ईश्वरीय ऐश्वर्यादि गुणों को भूल जाता है । घट घट में व्याप्त ईश्वर के अंतर्यामी स्वरुप से भी वह अनभिज्ञ रहता है ।[3]

नंददास ने अपने ग्रंथ 'दशम स्कंध' भाषा में कहा है-- 'ईश्वर ही जड़ चेतन का कारण है। सम्पूर्ण प्राणी उसी ईश्वर के विस्तार रूप हैं। ईश्वर ही जीव रूपों में है और ईश्वर ही इस सम्पूर्ण सृष्टि रूप में है । इस प्रकार नंददास ने ईश्वर और जीव की अद्वैतता स्वीकार की है ।[4] नंददास कहते हैं कि जीव की देह पाप-पुण्य कर्मों से निर्मित है और संसारी जीव की विषय विदूषित इन्द्रियां इस अंतर्यामी ब्रह्म को नहीं पकड़ सकतीं। शुद्ध जीव और ईश्वर में यह अंतर है कि ईश्वर काल, कर्म और माया के बंधन से अलग और जीव काल, कर्म और माया के वश में है, वे विधि-निषेध और पाप पुण्य के विकार से प्रभावित है ।[5]

१- तुमि सत्य ब्रह्म तोमात प्रकाशे जगत इटो अनन्त ।
जगतो सदा तुमिसे प्रकाशा अन्तर्यामी भगवंत ।।की० १६६३ शंकरदेव

२- इन्द्रियर संगे जीवे भुंजे विषयक ।
आत्मा बुलि माने मायामय शरीरक ।। नि०न० ११० शंकरदेव

३- भ०व० सं० - पृ० ४२८

४- वही - पृ० ४३२

५- वही० - पृ० ४३३

तुलसीदास जी के अनुसार जब से यह जीव भगवान से पृथक हुआ, तभी से इसने शरीर और घर को अपना मान लिया । माया के वश होकर उसने निजस्वरूप को भुला दिया और उसी भ्रम के कारण इसे असह्य दुःख भोगने पड़े । अविद्या के कारण संसार दुःखमय दिखाई दिया सुख का स्वप्न में भी नाम न रहा । जीव का निवास स्थान आनंदसागर में है वह पर ब्रह्म का अंश है, इसने मृगजल को सच्चा मान रखा है अपना स्वाभाविक अनुभव गम्य रूप भूलकर संसार में पड़ा है।[1] तुलसीदास जी कहते हैं 'प्रभु मैं जड़ जीव हूं और आप विभु हैं ईश्वर हैं, आप माया के स्वामी हैं और मैं माया के वश होकर रहता हूं ।[2] यहां स्पष्ट रूप से जीव और ब्रह्म का अनैक्य सिद्ध कर दिया गया है । जीव अपनी विशुद्ध[3] अवस्था में ज्ञानी और निर्विकार सुखस्वरूप है किंतु माया इसे मलीन कर देती है । जीव स्वयं आपने अपने कर्मों का फल भोगता है तो भी इसका संचालन हरि के हाथ में है । दर्पण में छाया किस मार्ग से प्रविष्ट होती है और किधर जाती है यह रहस्य है जीव की वही गति जीव के नाद ने की है ।[4] जीव माया के अधीन है, और माया ईश्वर के अधीन है, अतः जीव परवश है और भगवान स्वतंत्र हैं, श्रीकांत एक हैं और जीव अनेक हैं। माया से प्रेरित अविनाशी जीव काल, कर्म, स्वभाव और गुणों के चक्कर में पड़कर चौरासी लक्ष योनियों में निरंतर भ्रमता रहता है ।[5] जीव माया का स्वामी नहीं है पर माया ईश्वर के अधीन है, ईश्वर बंध मोक्ष दाता है ।[6]

१- वि०प० पद २ पृ० २३३

२- वि०प० पद० १७७ पृ० ३०४

३- भूमि परत भा ढाबर पानी। जनु जीवहि माया लपटानी । रा०च०मा०

४- दोहा० दो० २४४

५- आकर चारि लक्ष चौरासी। जोनि भ्रमत यह जिव अविनासी
फिरत सदा माया कर प्रेरा। काल कर्म सुभाउ गुन घेरा । --'मानस' उ०

६- माया ईश न आपु कहं जानि कहिय सो जीव।

जीव-ईश्वर का भेद

अंतकरणावच्छिन्न चैतन्य पुरुष ही जीव और मायावच्छिन्न चैतन्यपुरुष ही ईश्वर है। अवच्छेदक :परिचायक: माया और अंत:करण के व्यवहारिक भेद होने के कारण ही ईश्वर और जीव भिन्न हो गये। भेदक अंत:करण न होने पर जीव की पृथक सत्ता नहीं रहती। जिस प्रकार से नाना वर्ण के छोटे छोटे कांच के टुकड़े से वृहत दर्पण बनाया जाता है उसमें जब सूर्य का प्रतिबिंब पड़ेगा तो भिन्न भिन्न कांच के टुकड़ों में सूर्य का प्रतिबिंब अन्य वर्ण का होगा।[1] यहां पर वास्तविक सूर्य निर्मल नि:संग होने पर भी मलीन कांच में प्रतिबिंबित होता है और उसके संपर्क में मलीन और नाना रुपों में प्रकाशित दिखाई देता है--इसी प्रकार भगवान वास्तव में निर्मल,निष्क्रिय,शांत,अविकारी सच्चिदानंद रुप होने पर भी मलीन,सक्रिय,दीन और विकारी अंत:करण में प्रतिबिंबित हो मलीन, सक्रिय,दीन और विकारी दिखायी देता है।[2] जिस प्रकार से आकाश घट घट में व्याप्त है उसी प्रकार ब्रह्म भी समस्त प्राणियों को प्रकट करता है। जिस प्रकार से जल में सूर्य के भिन्न भिन्न प्रतिबिंब दिखाई देते हैं,इसी प्रकार से ब्रह्म भी भेद ही है।[3] नित्य निरंजन स्वप्रकाशित आत्मा एक है,माया उपाधि के पद के कारण वह अनेक दिखायी देता है।[4] प्रभु यद्यपि जीव तुम से पृथक नहीं हैं तथापि वह तुम्हारे आधीन है।[5] ईश्वर से जीव भिन्न नहीं है वह शांत अविकारी हो,अज्ञान आवरण के कारण अपने को न जान,भ्रमता है।[6] मन के दुख पाने पर जीव कहता है

३- एक ब्रह्म आछा सर्व्व देहक प्रकटे।
येन एक आकाश प्रत्येक घटे घटे ।।
जलत सूर्यक येन देखि भिन्न भिन्न।
सेहिमते जानिबा ब्रह्मरो भेद हीन ।।भा० १२ स्कं० २०१४६ शंकरदेव

४- नित्य निरंजन स्वप्रकाश आत्मा एक ।
माया उपाधिर पदे देखिय अनेक ।। कुरु० ५१० शंकरदेव

५- यद्यपि तोमात करि जीव नोहे भिन्न ।
तथापितो भैल प्रभु तोमार अधीन ।। द० १६६८

मैं दुख पाता हूं । मन जहां जाता है जीव कहता है मैं जानता हूं,मन जो करता है जीव कहता है मैं करता हूं,मन के मरने पर जीव कहता है मैं मरता हूं । जल के स्थिर होने पर बिंब पूर्ववत रहता है किन्तु सूर्य का प्रतिबिंब चंचल जल इधर उधर दौड़ता दिखाई देता है । मन के कर्म को जो अपना कहता है,यही कर्मपाश में बंदी जीवों का[1] कारण है । आत्मा के प्रसंग से जीव सचेतन हुआ । मनों मन में चौदह भुवन हैं ।

सूरदास ने स्पष्ट शब्दों में कहा है कि यह सम्पूर्ण सृष्टि प्रभु इच्छा रचनी है,माया के भ्रम से रचा हुआ यह जगत नहीं है । माया के वश में उनके मतानुसार ब्रह्म नहीं है वरन् ब्रह्म का अंश-रूप जीव माया के भ्रम में स्वयं अपने आप पड़ गया है । जीव और जगत में ईश्वर के चिद् और सत् अंश की सत्ता सार रूप से विद्यमान है जीव स्वयं अविद्या या भ्रम वश अपने ईश्वरीय अंश रूप,सत्य रूप को भूल जाता है और इंद्रिय धर्म,देहधर्म आदि को अपनी आत्मा के धर्म समझने लगता है । यही उसका अज्ञान है,यही स्वप्न है[2] । सूर के मतानुसार भ्रम अथवा अविद्या में जीव स्वयं फंसा है ,किसी अन्य ने उसे नहीं फंसाया । आप ही इस संसार के भ्रम को रचता है और आप ही उसमें लिप्त हो अनेक क्लेश उठाता है, जैसे मदारी का बंदर और चिड़ीमार का तोता । जैसे ब्रह्म सत्य और नित्य है उसी प्रकार ब्रह्म का अंश जीव भी नित्य और सत्य है । नाम और रूप परिवर्तनशील हैं,नाशवान हैं,परन्तु जगत और जीव की सार सत्ता नाशवान नहीं है।[3]

१- मनै दु:ख पाइले जीवे बोले मइ पाओं ।
मनै येक भावे जीवे बोले मइ पाओं ।
मनै यिवा करे जीवे बोले मइ करों।
मनर मरणे जीवे बोले मइ मरों।
येन सूर्यबिंब लरे जलर माजत ।
जल स्थिर भैले बिम्ब थाके पूर्ववत ।।
मनर कर्मक यिटो मोर बुलि मानै ।
कर्म पाशे बंदी जीव एहिसे निदानै।।
आत्मार प्रसंगे मन भैल सचेतन ।
मनतेसे आछे जाना चैध्यय भुवन ।। :अ०पा० ६७-६६:

२- अ०ध० सं० - पृ० ४२६

नंददास कहते हैं कि जीव की देह पाप पुण्य कर्मों से निर्मित है और संसारी जीव की विषय-विदूषित इन्द्रियां इस अन्तर्यामी ब्रह्म को नहीं पकड़ सकतीं बद्धजीव और ईश्वर में यह अंतर है कि ईश्वर काल, कर्म और माया के बंधन से अलग और जीव काल कर्म और माया के वश में है।[1] जो जीवात्माएं पुण्य और पाप से निर्मित गुणमय शरीर के धर्मों को छोड़कर ईश्वर का नैकट्य लाभ करती हैं अथवा ब्रह्म को जान लेती हैं वे अपने सत्य रूप आनंद तथा ईश्वरीय छः गुणों को धारण करती हैं।[2]

जीव ईश्वरादि का अभेद

एक ही पुरुष लक्षण उपाधि भेद से ईश्वर, जीव, ब्रह्म, परमात्मा भगवान, नारायण इत्यादि नाना रूपों में प्रतीत और सेवित होता है। मृत्तिका का स्वरूप एक ही है, पर घट पर के भेद के कारण उसके आकार प्रकार अनेक दिखाई देते हैं। आत्म बुद्ध अद्वैत इसी प्रकार माया उपाधि और पद से वह नाना प्रकार का प्रकट होता है।[3] इसी से ईश्वर जिसके वश में है परम आनंदमय माया है, माया जिसका मर्दन करती है उसे ही जीव दुख का उदय कहता है।[4] ईश्वर की सेवा करने से जीव का माया भ्रम नष्ट होता है, ब्रह्म पद शुद्ध जीव को ईश्वर परम ब्रह्म कहते हैं।[5] समाधि में व्यक्त होने पर भ्रम दूर होता है, उसी समय माधव को ब्रह्म कहा जाता है।[6] समस्त इन्द्रियों में जो प्रवर्तन करता है उस समय माधव को परमात्मा कहते हैं।[7] ब्रह्म, परमात्मा, और भगवंत एक तत्व हैं, लक्षण और भेद

१- अ०व० सं० - पृ० ४३३

२- वही - पृ० ४३४

३- स्वरूपत एकेमात्र मृत्तिका आकार।
घट पर भेदे देखि अनेक प्रकार॥
एहिमते अनेक अद्वैत आत्मबुद्ध।
माया उपाधिर पदे देखि नाना विध॥ कु० ५१२

४- सेहिसे ईश्वर मार वश्य माया परम आनंदमय।
माया मर्दे पाक ताके बुलि जीव दुःखे तार उदय॥ भ०र० १५८

५- ईश्वर सेवा करिले जीवर गुचय मायार भ्रम।
ब्रह्म पदे शुद्ध जीवक कय ईश्वर परमब्रह्म॥ ला०घो० १७४

६- समाधि वेकत होवन्ते गुचे भ्रम।
तेवने बोलय जाना माधवक ब्रह्म॥ नि०न० १८०- शंकरदेव

के कारण एक ही के तीन नाम हैं [1]। जिस समय सृष्टि स्थिति का लय करते हैं, उस समय माधव को भगवंत कहते हैं [2]। सब का स्वरुप ब्रह्म से प्रकाशित है और वह सब में प्रकाशित हो रहा है, नृपति उसे ही नारायण जानो, उसकी चरण सेवा के बिना गति नहीं होगी [3]।

लक्षण भेद का अर्थ क्या है ? यह न जानने पर ब्रह्म, नारायण भगवंत आदि का ऐक्य ज्ञान होने में अनेक बाधा उपस्थित होती है एक स्थान पर जिसे ब्रह्म व परमात्मा का लक्षण कहा गया है-- इसी को अन्य स्थान नारायण का लक्षण कहा गया है । अत: इस विषय में निश्चित जानकारी नहीं हो सकती है [4]।

ब्रह्म को जगतप्रपंचक और सृष्टि स्थिति लय का कारण व ईश्वर कहा जाता है, यहां पर सृष्टि स्थिति लयादि उनके उपलक्षण हैं, क्योंकि ब्रह्म सृष्टि स्थिति लय का कारण हो कभी सृष्टि स्थिति लय न करने की अवस्था का ब्रह्म भी परिचायक होता है । इसी ब्रह्म को जो सगुण, सविशेष, साकार, ईश्वर कहा जाता है । वहां सगुण आदि की बात उनके परिचायक उपाधि रूप हैं की हैं ।

नंददास ने ईश्वर और जीव की अद्वैतता स्वीकार की है। दशम स्कंध भागवत भाषा में उन्होंने एक स्थान पर शंकर, ब्रह्मा, शारदा, देवता, नारद तथा अन्य मुनिश्वरों से श्रीकृष्ण की स्तुति कराई है । उस स्थान पर वे कहते हैं-- हे

१- ब्रह्म परमात्मा भगवंत एक तत्त्व ।
एकोरेसे तिनि नाम लक्षणभेदत ।।१८२

२- करंत येसने हरो सृष्टि- स्थिति अंत ।
तेसने बोलय माधवक भगवंत ।।१८०

३- सबारो स्वरुप करे ब्रह्ममेसे प्रकाश ।
समस्तते भिरो करि आछंत प्रकाश ।।
तेसेन्तेसे नारायण जानिबा नृपति ।
ताहान चरण सेवा बिने नाह गति ।।१८८

४० वे० द० रु० रे० -- मनोरंजन शास्त्री -- १२३

नाथ आप हम सब के स्वामी हैं सम्पूर्ण विश्व आप के हाथ में है । हम सब प्राणि आप से इस प्रकार प्रसूत हैं जैसे अग्नि से अगणित स्फुलिंग निकले हों । दशम स्कंध भागवत में उन्होंने अन्य कई स्थानों पर जीव,जगत और ईश्वर की अद्वैतता बताते हुए जीव और जगत को ब्रह्म प्रसूत बताया है ।[1] चतुर्भुज दास तथा छीतस्वामी ने ईश्वर और जीव की अद्वैतता स्वीकार की है । चतुर्भुजदास ने कहा है कि रसिक भक्त रसमय भगवान की प्रेम रस भक्ति द्वारा भगवान की एकता में मिल कर स्वयं रसमय हो जाता है । उसी प्रकार छीतस्वामी भी कहते हैं कि मैं जिधर देखता हूं उधर कृष्ण ही कृष्ण दिखाई देता है । इससे भी यही भाव निकलता है कि छीतस्वामी सब प्राणि मात्र को कृष्ण रूप में देखते थे अथवा यह कहें कि वे ईश्वर और जीव की एकता को मानते थे ।[2] परमानंद दास ने भी ईश्वर और जीव के संबंध को अंशी-अंश का संबंध माना है ।[3]

माया :- मायावच्छिन्न चैतन्य ही ईश्वर और अंत:करणावच्छिन्न चैतन्य ही जीव है, अर्थात् माया द्वारा परिचित होने पर ब्रह्म हीईश्वर शब्द द्वारा संबोधित किया जाता है और अंत:करण के द्वारा परिच्छिन्न होने पर वही यही ब्रह्म जीव शब्द का बोधक होता है ।[4]

जिस समय गंभीर निद्रा में व्यक्ति सोता है समस्त इन्द्रियां अहंकार के साथ आत्मा में जाकर लय होती हैं । इस समय आत्मा साक्षी के रूप आभासित होता है ।[5] जाग्रतकाल में भी आत्मा नाम की वस्तु प्रत्यक्ष रहती है । आत्मा स्वयंप्रकाश,ज्ञान स्वरूप है इसे अन्य कोई प्रकाशित नहीं करता यह स्वयं स्वयं को प्रकाशित करता है और अन्य विषय को भी प्रकाशित करता है ।[6] नित्य निरंजन स्वप्रकाश आत्मा एक है,वह माया और उपाधि द्वारा अनेक रूपों में दिखाई देता है ।[7]

१- अ०व० सं० - पृ० ४३३
२- वही० - पृ० ४३४
३- वही० - पृ० ४३२
४- वही० - पृ० १२६
५- येसने निर्भर निद्रा होवे उपस्थित ।
इन्द्रिय सकल अहंकारर सहित ।।
तेसने आत्मात गेया सबे होवे लय।
सेकाले आत्मा साक्षि स्वरुपे थाकय।।नि०न०१६८
६- वही० १३१
७- नित्य निरंजन स्वप्रकाश आत्मा एक
माया उपाधिर पदे देखिय अनेक ।
कु०टो० ५१०

वल्लभाचार्य जी ने भगवान की शक्ति स्वरुपा माया के दो रूप बताये हैं--एक विद्या माया और दूसरी अविद्या माया। इस माया के अधीन जीव हैं,भगवान माया के अधीन नहीं है । अविद्या माया से जीव संसार में बंधता है और विद्या माया के द्वारा जीव इस संसार में बंधता है और विद्या माया के द्वारा जीव इस संसार से छूटता है[1] । वल्लभ मत की माया सत्य और भ्रम दोनों प्रकार की है,कि परन्तु ये दोनों ब्रह्म पर प्रभावशालिनी नहीं हैं । वल्लभ मत में अविद्या के नाश होने पर जीवत्व तथा जगत का नाश नहीं होता,जीव फिर भी ब्रह्म से पृथक सत्य रुप में स्थित रहता है । उसका भ्रम जन्य-संसृति-जाल अवश्य छूट जाता है[2] । सूरदास ने भी ईश्वर की माया के विधानों को अविगत और अकथनीय कहा है-- "हे प्रभु आपकी इस माया के विधान के कहने और समझने में नहीं आते । रिक्त को आप भर देते हैं और भरे को ढुलका देते हैं,कभी तिनका पानी में डूब जाता है और शिला पानी पर तैरने लगती है । रेगिस्तानों को पानी से भर कर समुद्र बना देते हो और समुद्रों को रेगिस्तान । जल में भी आप ने अग्नि का संचार किया है। इस प्रकार प्रभु आपकी गति विचित्र है[3] । अहंता ममतात्मक संसार की सृष्टि करने वाली माया का वर्णन सूर ने बहुत किया है इस माया को उन्होंने सत्य को भुलानेवाली और मिथ्या में मोह उत्पन्न करनेवाली कहा है । इस माया के अनेक रूप हैं जैसे मन की मूढ़ता, तृष्णा,ममता,मोह,अहंकार,काम,क्रोध,लोभ तथा अनेक मानसिक विकार । सूरदास ने अविद्या माया को तथा इस माया जन्य संसार को अनेक पदों में भ्रमात्मक कहा है । एक पद में सूरदास कहते हैं-- संसारी जीव को झूठी माया सच्ची प्रतीत होती है,यदि मनुष्य अहं की व्यष्टि दृष्टि को छोड़कर समष्टि दृष्टि से जगत को देखे तो माया का सत्य रुप उसे दीखने लगेगा । एक और पद में सूरदास अपनी सफलता का चित्र राजा परीक्षित के वाक्यों में इस प्रकार खींचते हैं "हे करुणानिधान प्रभु आप की कृपा- कटाक्ष से मेरा अज्ञान रूपी अंधकार नष्ट हो गया । माया मोह की निशा,विवेक प्रकाश होने पर भाग गई। ज्ञान सूर्य के प्रकाश में समष्टि दृष्टि खुल गई और सर्वत्र आत्म रूप दिखाई देने लगा,मेरी अहंता ममता छूट गई,देह का अध्यास चला गया अब इस देह का जरा भी मोह नहीं है । अब केवल यही

१- भा०व० सं० - पृ० ४५५

२- वही० - पृ० ४५७

३- वही० - पृ० ४५८

लालसा है कि मैं दिन-रात प्रभु की लीला का ही श्रवण करूं [1]। परमानंददास कहते हैं-- जब तक चित्त से संसार के राग द्वेष नहीं निकलेंगे तब तक भगवान का दास कहलाना कठिन है। इन सब कथनों में परमानंद दास ने अहंता-- ममतात्मक अविद्या माया की ही निन्दा की है और उसी के कृत्यों का वर्णन किया है [2]।

तुलसीदास जी के अनुसार आदि शक्ति सीता विश्व की सृष्टि- स्थिति संहार कारिणी हैं [3]। माया प्रभु के अनुशासन के अनुकूल रचना करती है [4]। अविद्या का प्रभाव हरिभक्तों पर नहीं होता है, विद्या माया उनमें व्याप्त होती है। अविद्या माया के [illegible] घोरपाश में पड़े हुए प्राणी जगत को पूर्णतया भगवद्रूप में नहीं देख सकते। वस्तुत: जगत और भगवान में अभेद दृष्टि रखनेवाले समस्त भ्रमों से उन्मुक्त होकर भगवान के निर्गुण और गुणाकार स्वरूप में भी कोई अंतर नहीं देखते। माया माया ही है, चाहे वह अविद्या माया हो, चाहे विद्या माया। दोनों ही हमें परमात्मा के सामीप्य में ले जाकर हमारे मन को परम विश्राम नहीं दे सकतीं। महामलीन अविद्या माया तो सीधे ही पतन कुंड में फोंकती है और विद्या माया भगवच्छक्ति स्वरूप होने से भगवान से अभिन्न होकर वह स्वयं जगत की उत्पत्ति, स्थिति और संहार में दत्तचित्त है [5]। गोस्वामी जी ने मूल प्रकृति स्वरूप विद्यामाया को ही नाना ब्रह्मांडों की सृष्टि, स्थिति और प्रलय का कारण ठहराकर भगवती सीता से इसका तादात्म्य अवश्य कर दिया है [6]। माया ऐसी है कि कितने उपाय करके थक जाओ पर जब तक प्रभु की कृपा नहीं हो, तब तक इससे पार पा जाना असंभव है। माया की गति ठीक ठीक नहीं बैठती। जब तक इसका वास्तविक रहस्य ज्ञात नहीं हुआ, मन निश्चल और एवं शांत नहीं हुआ, तब तक अविद्या जन्य संसार की बड़ी बड़ी घोर विपत्तियां दुख देती ही रहेंगी [7]।

१- अ०व० सं० पृ० ४६१

२- वही० पृ० ४६२

३- उद्भवस्थिति संहारकारिणीं क्लेश हारिणीम।
सर्वश्रेयस्करीं सीतां नतो, हैं रामवल्लभाम।
-मानस-बाल०मंगलाचरण।

४- सुनु रावन ब्रह्मांड निकाया। रचइ जासु अनुशासन माया।
--मानस० सुं०

५- दीक्षित-- तुलसी और उनका युग- पृ० २८०

६- वही पृ० २८२

७- वि०प० पद- ११६ पृ० २०६

जगत :- तुममें से जगत की उत्पत्ति हुई,इसी से तुम इसमें प्रकाशित हो रहे हो[१]। माया गुण से तुम्हीं[२] अनेक रूपों में प्रकाश करते हो । इन निमित्तों को देख सत्य का कुछ आभास मिलता है । जो पहले न था न बाद में रहेगा,केवल मध्य में ही कुछ समय के लिये व्यवहार का विषय होता है,उसे ही मिथ्या कहते हैं । जिस प्रकार रज्जु को देख कर सर्प का भ्रम होता है आगे वहां सर्प नाम का वस्तु न थी,रज्जु समझने पर भी उसकी प्रतिमा बाद में दिखाई न देगी,केवल मध्य में वह प्रकाशित हुआ उसे देख कर भय से व्यक्ति चिंघाड़ उठता है । जगत भी परिवर्तनशील[३] और विनाशी है । अत: यह भी मिथ्या है,इसका निज का स्वरुप और सत्ता नहीं है ।

जगत के पूर्व मैं ही था,कार्य कारण अन्य नहीं थे,सृष्टि के मध्य में केवल मुझे ही देखेंगे,सब के रूप देखने सुनने में मेरा ही रूप है । मात्र मैं सब के अंत तक रहता हूं जिस प्रकार कुंडल टूट जाने पर सोना का रूप शेष रहता है[४]। जिस कथा को आपने पूछा उसका परिच्छेद मैंने कहा,सब कृष्ण मय है,यह सत्य भेद कर मैंने कहा[५]। ब्रह्म के अतिरिक्त[६] जो भी देखते हैं वह मिथ्या है,जिस प्रकार रस्सी को देखने से सर्प का भ्रम होता है । जागरण और स्वप्न बुद्धि की वृत्तियां हैं,नाना प्रकार के रूप जो हम देखते हैं[७] वह सब माया मय है । एक क्षण में उत्पन्न हो अनन्त अवस्तु क्षण में नष्ट हो जाती है । जिस प्रकार मुकुट कुंडल आदि स्वर्ण से भिन्न[८] नहीं,उनका नाम रूप मात्र मिथ्या है,इसी प्रकार अहंकार और पंचभूत तुमसे पृथक नहीं हैं । जिसे देखते और सुनते हैं,जिसका मन में चिंतन करते हैं,यह सब मायामय और

१- अर्थात जगतखान,तोमात उद्भव भैला,सन्त हैन प्रकाशे सदाय।
कीर्तन १६७० - शंकरदेव

२- जानो माया गुणे बहुरूप धरि तुमि करा प्रकाश
रहिले निमित्त सिवको देखि सत्यर किछु आभास गो०व० ३ स्कंध ८६३:

३- म०शा० - अ०वै० द०रे० - पृष्ठ १३४

४- द्वि० स्कंध

५- यि कथा पूछिला तार कैलों परिच्छेद।
सबे कृष्णमय धरी कैलों सत्यभेद ।। १ स्कंध-शंकरदेव

६- ब्रह्म व्यतिरेके मत देखा मिछा आन ।
जरित उपजि आछे येन सर्पज्ञान।।१२ स्कंध२०१४०शंकरदेव

७-जागत सपोन बुद्धिरेसे वृत्तिद्वय।
नाना विध देखा थिरो सिरो मायामय।।
अनंत अवस्तु येन तातेकर न्य।
क्षोणेके उपजि क्षोणेकेत नाश हय
२०१४१ शंकरदेव

८-मुकुट कुंडल येन सुवर्णर भिन्न न्यूहि,मिछा मात्र नामरूप यत ।
अहंकार पंचभूत तोमात पृथक न्यूहि प्रभु परमार्थ विचारत ।। कीर्तन- शंकरदेव

स्वप्न के समान है[1]। जहां भी देखते हैं वह सब मायामय स्वप्न के तुल्य है उसे हरिमय देख मति भ्रम को दूर करें[2]। हे कृष्ण तुम्हीं मात्र चैतन्यस्वरूप नित्य,सत्य,शुद्ध और अखंडित ज्ञानमय हो,अन्य जितने हैं,वे तुम्हारी माया के कल्पित विनोदरूप चराचर हैं[3]। माया और उसके कार्य जगत कारण रूप में सत और कार्यरूप में असत् हैं,इस विषय में कथा भागवत में कहा गया है -- विदुरे पूछंत "हे मैत्रेय निर्गुण भगवन्तर गुणमय सृष्टि आदि लीला केमने हय,तुमि कहिदा जीवर अर्थे करन्त स्थियो नघटे काल द्विये असुप्तबोध ब्रह्म रुप जीवर केने अविद्यामय संसार हय,मोर एहि मनर संशय दूर करा ।"मैत्रेये कहन्त,जाना बिदुर स्वरो हरिर माया यि विचार नहै मात इन्ते मिछा संसार जीवक लभि । येन स्वप्न आपुन्तर शिरच्छेद आपुनि देखि । क०भा०३।९पृष्ठ १३:

पारमार्थिक रूप में इसे असत्य होने पर भी व्यवहारिक दृष्टि से इसे सत्य कहा जा सकता है । भगवान निज शक्ति के द्वारा स्वयं ही इस जगत को प्रकाशित करता है, अतः वही जगत का उपादान और निमित्त का कारण है। उनके अतिरिक्त इसका कोई अन्य कारण नहीं है ।

नंददास कहते हैं कि सम्पूर्ण जड़ और चेतन सृष्टि के मूल में एक ही शुद्ध तत्व है जो नाम और रूप के भेद से अनेक रुपता धारण किये हुए है और वह शुद्ध तत्व श्रीकृष्ण हैं। ब्रह्मा और जगत की अद्वैतता बताते हुए नंददास ने ब्रह्म को ही जगत का निमित्त और उसी को उपादान कारण माना है । नंददास कहते हैं-- एक ही वस्तु अनेक नाम और रूपों में इस प्रकार जगमगा रही है जैसे स्वर्ण से बने हुए अनेक आभूषणों में:कंकण,कर्धनी कुंडल आदि में: नाम और आकार का भेद होते हुए भी स्वर्ण साधारण वस्तु,व्याप्त रहती है[4]। जगत में जो गुण भाव हैं वे सब पर ब्रह्म से ही प्रसूत हैं जैसे समुद्र से बादल बनते हैं और उससे जल लेकर पृथ्वी पर बरसाते हैं फिर अंत में समुद्र उनको अपने में ही मिला लेता है जैसे अग्नि से अनेक दीपक ज्योति जलती है,परन्तु सब मिलकर वे एक अग्निमय हो जाती हैं । इस प्रकार उन्होंने जगत को ब्रह्म से प्रसूत ब्रह्म का ही परिणाम और अंत में

१- यत देखा यत शुना यतेक मनत गुणा सबे मायामय स्वप्नसम:कीर्तन १८२५।:

२- यत देखा मायामय सबे स्वप्नसम ।
हरिमय देखि दूर करा भ्रम।।
११स्कंध १६२६२-शंकरदेव

३- हे कृष्ण तुमि मात्र चैतन्यस्वरुप नित्य
सत्य शुद्ध ज्ञान अखंडित ।
आवर यतेक इटो तोमार विनोदरुप
चराचर मायार कल्पित।ना०घो०७७
--माधवदेव

४- भ०प० सं०- पृ० ४४६

ब्रह्म में ही लीन होने वाला बताया है[1]। इस जगत का आधार ब्रह्म की सत्ता अथवा सत रूप है,जब यह जगत ब्रह्म की माया में लीन हो जायगा उस समय केवल एक ब्रह्म ही रह जायगा ।दशम स्कंध के अट्ठाइसवें अध्याय में नंददास कहते हैं `माया,लोक और सृष्टि का सृजन करती है । भगवान की शक्ति स्वरूपा सत्य माया का वर्णन कवि `सिद्धांत पंचाध्यायि में इस प्रकार देताहै`-- पंच महाभूत आदि अट्ठाइस तत्वों की बनी सृष्टि माया का ही परिणाम है । यह माया भगवान केवश में सदैव रहती है और भगवान की इच्छानुसार जगत का सृजन पालन और प्रलय करती है । `रास पंचाध्यायी में कवि कृष्ण की मुरली से आदि शक्ति योगमाया की समता देते हुए कहता है-- यह योगमाया अघटित घटनाओं को घटित करने वाली है । इस कथन में भी कवि ने `योगमाया`शब्द से भगवान की सृष्टि कारिणी शक्ति का ही संकेत किया है । इसी ग्रंथ में गोपी मिलन पर कृष्ण गोपियों से कहतेहैं-- हे किशोरियों मेरी माया ने सम्पूर्ण विश्व को वश में कर रक्खा है,परन्तु तुम्हारी प्रेममयी माया ने मुझे वश में कर लिया है जिसके साधन से तुमने लोक-वेद की श्रृंखलाओं को तिनके के समान तोड़ दिया है[2]। नंददास गोपियों के वाक्य द्वारा शुद्ध स्वरूपा माया मलमयी अविद्या माया दोनों,का वर्णन किया है। उस संवाद का भाव इस प्रकार है-- हे उद्धव,तुम कहते हो कि ईश्वर निर्गुण है तो हमें बताओ यदि उसके गुण नहीं हैं तो इस सृष्टि में दीखने वाले गुण कहां से आए हैं । वस्तुत: ईश्वर सगुण है और उसके गुणों की परछाईं ही उसके माया के दर्पण में पड़ रही है । ईश्वरीय गुणों से प्राकृत गुण क्यों भिन्न दीखते हैं ? अविद्या माया के संसर्ग से। स्वच्छ जल के समान ईश्वरीय शुद्ध गुणों को जो प्रकृति माया के माध्यम में परिणाम रूप में व्यक्त हो रहे हैं,अविद्या माया की कीच ने सान दिया है और उन्हें सने हुए गुणों को संसारी जन अपनाते हैं । जिस माया के दर्पण का नंददास ने यहां उल्लेख किया है वह शंकर की मिथ्या माया का दर्पण नहीं है यह दर्पण ब्रह्म की `सत स्वरूपा प्रकृति की माया का दर्पण है इसमें जो विजातीय विकार है वह अविद्या रूपिणी माया की कीच है,जो अन्यथा ,प्रतीति कराती है[3]। `रसमंजरी`में नंददास कहते हैं `जो`रूप प्रेम आनंद रस आदि गुण और भाव इस जगत में हैं उन सब का मूल आधार

१- अ०व० सं० - पृ० ४४७

२- वही० पृ० ४६३

३- वही० पृ० ४६४

गिरिधर देव ही हैं। विद्या माया से अविद्या माया के भ्रम को हटा कर भगवान की दृष्टि कारिणी सत चित और आनंद -- शक्ति रुपिणी माया का दर्शन होता है।[1]

तुलसीदास जी विनय पत्रिका में कहते हैं "भ्रमवश ही मैं असत्य जगत को सत्य मान रहा हूं और अभी तक निश्चय भी नहीं हुआ है कि क्या सत्य है और क्या असत्य। मृगजल सत्य नहीं कहा जा सकता है, परन्तु, जब तक भ्रम है, तब तक सच सा दीखता है, इसी भ्रम के कारण अधिक दु:ख होता है। जब तक ज्ञान का उदय नहीं हुआ है यह मनोरम दिखाई देता है, वेद कह रहे हैं कि सांसारिक प्रपंच सर्वथा असत्य है।[2] तुलसी दास जी कहते हैं कि प्रभु की दृष्टि का वर्णन करते नहीं बनता। आदिकर्ता निराकार परमात्मा ने मायारुपी दीवार पर अथवा अंतरिक्ष पर जो शून्य भास रहा है, ऐसे विचित्र चित्र खींचे हैं, जिनमें रंग का लेश नहीं है। प्राय: चित्रकारी धोने से मिट जाती है, पर इस कुशल चित्रकार के चित्र धोने से नहीं मिटते। जड़ चित्रकारी को मरने का भय नहीं होता, किन्तु इन चित्रों को मृत्यु भय रहता है। कोई इस रचना को सत्य कहता है और कोई मिथ्या। किसी किसी के मत से यह सत्य और मिथ्या दोनों का मिश्रण है। तुलसीदास जी का मत है यह तीनों सिद्धांत भ्रम हैं।[3]

अकार : जीव यद्यपि सत्य है भी तो वह ब्रह्म के अतिरिक्त नहीं है, जगत तो पूर्ण रूप से मिथ्या है। अत: ब्रह्म ही एक मात्र सत्य उनका सजातीय या विजातीय अन्य कोई नहीं है। "समस्त रूप मायामय दृष्टि के हैं, यह जान कर केवल ब्रह्म में पर दृष्टिपात करो। मायामय नामरूप आदि की उपेक्षा कर केवल मुक्त अंतर्यामी ईश्वर को देखो।[4] समस्त प्राणियों में बाहर और भीतर अनंत भगवंत व्याप्त है। जिस प्रकार सभी घट ही मृत्तिका के हैं उसी प्रकार से इन तीनों जगत में व्याप्त हूं।[5] तुम्हारे परम अद्वैतरूप आनंद

१- अ०व० सं० पृ० ५६५

२- वि०प० -पद १२ पृ० २३

३- वि०प० पद १११ पृ० ११६

४- यतेक आकृति माने मायामय दृष्टि।
सेन जानि केवल ब्रह्मत दिया दृष्टि।।
मायामय नामरुप सबाको उपेक्षा।
अंतर्यामी मुक्त ईश्वर मात्र देखा ।।कु०दो०-शंकरदेव

५- समस्त प्राणीक व्यापि आछोंहो अनंत।
बाहिरे भीतरे समस्तते भगवंत ।।
येन घट सब माटि मात्र विचारव।
सेहिमते व्यापि आछों एहि त्रिजगत ।।

पद में मेरा चित्त मग्न हो[1]। तुम्हारे स्वरुप में किसी प्रकार का भेद नहीं है माया से ही अनेक परिच्छेद दिखाई देते हैं। चैतन्य रुप में एक निरंजन व्याप्त हैं, तुमको कौन अज्ञानी द्वैत कहेगा[2]।

समस्त आत्माओं का परम बंधु हरि माधव प्रकृति और पुरुष दोनों का नियंता है[3]। कृपामय प्रभु जिसके हेतु तुम हृदय में हो, वहीं से समस्त जड़ जीव का प्रवर्तन होता है[4]। जिस लिये कृष्ण ही समस्त प्राणियों में निरंतर आनंद लाभ उठा रहे हैं। महाजन निश्चित ही जानेंगे कि इसीलिये सर्वानंद नाम धारण कर हरि हैं[5]। समस्त जीवों में आत्मा नारायण आत्म सुख में सदैव रत रहते हैं। इसी लिये हरि समस्त प्राणियों में समान हैं[6]। चैतन्य से लेकर माया में उपजे जितने हैं, उसे हरि रमाते हैं[7]। इसी परमानंद पूर्ण परमात्मा की उपलब्धि के लिये ही देह, मन, प्राण आदि उनके प्रति आकृष्ट हो रहा है। जिस लिये हरि चैतन्य पूर्ण परमात्मा रूप में हृदय में प्रकाशित हो रहे हैं। वहीं इन्द्रिय गण भूत, प्राण, बुद्धि मन आदि जड़ राशियों का प्रवर्तन करता है[8]।

१- तोमार अद्वैत ब्रह्म रुप परम आनंद पद ताते मोर मग्न होक चित्त। :की०१६७०:

२- मायातेसे देखय विविध परिच्छेद।

स्वरुपत तोमार नाहिके किछु भेद।।

चैतन्य रुपे व्यापि एक निरंजन।

तोमाक बुलिबे द्वैत कोन अज्ञजन ।। :की० २१७८: शंकरदेव

३- प्रकृति पुरुष दुहरो नियंता माधव।

समस्तरे आत्मा हरि परम बांधव ।।ना०घो०--शंकरदेव माधवदेव

४- यिहुते थियाल आछा तुमि कृपामय।

तातेसे समस्त जड़ जीव प्रवर्तय।। :१०म०१६१७:शंकरदेव

५- यिहेतु कृष्णेसे आत्मा सवेंसे जीव रासि निरंतरे आनंद लभय ना०घो०१४माधवदेव

६- समस्तरे आत्मा नारायण आत्मसुखे रति सर्व्वदाण

रहि हेतु हरि समस्त प्राणीते सम।। :वही ६३५:

विष

जिस प्रकार अप्राकृत विद्याशक्ति का विकासरुप स्वीकार किया गया, इसी प्रकार विद्याशक्ति का विकासरुप भगवान के चैतन्य लीला-विग्रह को भी स्वीकार किया ववव जाता है । हम भाषा में या व्यवहार में जिसे आकार या विग्रह कहते हैं, वैसा आकार या मूर्ति भगवान की नहीं है । इसी ही माधवदेव ने कहा है अव्यक्त ईश्वर हरि की पूजा किस प्रकार करोगे, व्यापक का विसर्जन कैसा और अमूर्त का चिंतन कैसे करोगे, ब्ब्नम्क राम बोलकर मन को शुद्ध करो[1] । अतः उनका स्वरुप निराकार है और भक्त के अनुग्रह पर ही कभी कभी वे लीला विग्रह धारण करते हैं । एकांत ज्ञानी भक्त के पक्ष में भगवान की लीला और निग्रह विहार आदि विपरीत और विस्मयजनक और परमआनंद दायक बात है । हे कृपामय हरि तुम परम दुर्बोध आत्म तत्व और उसके ज्ञान के लिये अनेक लीला अवतार धारण करते हो-- उसका चरित्र सुधासिंधु है, उसमें क्रीडा कर दीनबंधु चार पुरुषार्थ को तृण के समान करते हैं[2] । बंधु कहने में विस्मय और सुनने में विपरीत है, ब्रह्म का विहार कहां है । जिसे सकल निगम अनुमान के आधार पर कहते हैं, वही हरि गोप शिशुओं के समान केलि कर रहा है, सुनने में नित्य, शुद्ध, बुद्ध, निरंजन, निराकार आदि हैं और उसका विहार कौतुक के समान हैं। जो जगत का अंतर्यामी, सर्वसाक्षी है उसके अलंकार गुंजा और मयूर पंख हैं, जिसके प्रकाश से समस्त चराचर प्रकाशित होता है, देख वही कृपामय प्रभु गोपवेश धारण किये हैं, आत्मा का विनोद सुनने में विपरीत हैं, हरि के चरणों में माधव का चित्त डूब जा[3]। सुनने में अनुपम ब्रह्म का वर्ण

१-अव्यक्त ईश्वर हरि किमते पूजिबा तांक
व्यापकत किआ विसर्जन ।
एतावंत मूर्ति शून्य केनमते चिंतिपाहा
राम बुलि शुद्ध करा मन।।:ना०घो०८: वही

२-परम दुर्बोध आत्म तत्व तार ज्ञान अर्थे हरि यत
लीला अवतार धरा तुमि कृपामय।
ताहार चरित्र सुधा सिंधु तात क्रीडा करि दीनबंधु
चारि पुरुषार्थ तृण सम करय।।माधवदेव

३- कहिते विस्मय विपरीत शुनिबार
कोथा शुनि आछ नाई ब्रह्मरे विहार।।
अनुमाने कहे माक सकल निगमे।
सेहि हरि केलि करे गोप शिशु समे
नित्य, शुद्ध बुद्ध निरंजन निराकार।
शुनिते कौतुक बर तादेर विहार।।
यिटो जगतर अंतर्यामी सर्व्व साखी
तादेर भूषण गुंजा गेरु मैरा
पाखी।
याहार प्रकाशे चराचर प्रकाशय।
गोपवेशे आछे देख सेहि कृपामय।।
आत्मार विनोद शुनिबार विपरीत।
हरि पदे मजि रहों माधवर चित्त।।
बरगीत--ववववदेव

घनश्याम है।[1]

दुष्ट के निग्रह और ~~व्यक्त~~ भक्त के अनुग्रह के द्वारा विश्व में शांति स्थापना के लिये,भगवान जो लीला विग्रह धारण करते हैं,उसे अवतार कहा जाता है। जिस रुप में ऐश्वर्य,ज्ञान,धर्म,वैराग्य,श्री और यश आदि का पूर्ण रुप से प्रकाश होता है उसे ही पूर्ण अवतार कहते हैं।

सूरदास कहते हैं-- आदि अजिर वृंदाबन में पूर्ण पुरुषोत्तम की इच्छा शक्ति से राधा और गोपियों के साथ नित्य रास हो रहा है,इसी आदि सृष्टि का उन्हीं पूर्ण पुरुषोत्तम की इच्छा शक्ति से राधा और गोपियों के साथ नित्य रास हो रहा है, इसी आदि सृष्टि का उन्हीं पूर्ण पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण ने इस सम्पूर्ण सृष्टि को रचकर विस्तार किया है और वह आदि पुरुष भी जिसके परिणाम स्वरुप यह सृष्टि हुई है उन्हीं में से प्रकट हुआ। जिस ब्रह्म के सगुण-निर्गुण दोनों स्वरुप हैं वही इस जगत में अवतार भी धारण करता है। कृष्णावतार में प्रकटित श्रीकृष्ण स्वयं साक्षात परब्रह्म थे। इसके अतिरिक्त कृष्ण विष्णु रुप से धर्म संस्थापन और असुरों के संहार के लिए भी इस लोक में अवतार धारण करते हैं।[2] परमानंद दास का कहना है-- जो ब्रह्म प्राकृत गुणों से रहित निर्गुण स्वरुप है वही इस लोक में अवतार धारण कर सगुण रूप से लीलाएं करता है। और सब का आदि स्वरुप वह पर ब्रह्म भगवान श्रीकृष्ण ही हैं। आदि वृंदावन विहारी कृष्ण का स्वरुप आनंदमय है। उनका परिवार गाय, गोपी,यशोदा आदि भी आनंद मूर्ति हैं। उसका धाम गोकुल भी आनंदस्वरुप है। कृष्ण ने संसार के आनंददान के लिए ही निजरूप से अवतार धारण किया है।[3] कृष्ण सुख के सागर हैं और संतों के सर्वस्व हैं। वे ही इस जगत में लीला- अवतार रुप में आते हैं।[4] नंददास ने कृष्ण के अतिरिक्त अन्य अवतार राम,नृसिंह आदि में भी अपनी आस्था प्रकट की है। वे यह भी मानते हैं कि पर ब्रह्म श्रीकृष्ण अपने पूर्ण रस-रूप से ब्रज में तथा धर्म संस्थापन के लिए वासुदेव राम आदि चौबीस लीला अवतारों के रूप में,इस लोक में, अवतार धारण करते हैं।[5]

१- शुन्ति कौतुक अनुपाम
ब्रह्म वरण घनश्याम।। माधवदेव
२- अ०व० सं०- पृ० ४०८
३- वही० पृ० ४२१
४- वही पृ० ४२२
५- वही० पृ० ४२६

श्री वल्लभाचार्य जी भक्ति के विषय में अपने ग्रंथ तत्वदीय निबंध में कहते हैं-- 'भगवान के प्रति माहात्म्य ज्ञान रखते हुए जो सुदृढ़ और सबसे अधिक स्नेह हो वही भक्ति है।' पुष्टिमार्गीय भक्ति केवल प्रभु- अनुग्रह द्वारा ही साध्य है तथा भगवान का अनुग्रह ही पुष्टिमार्गीय भक्त के सम्पूर्ण कार्यों का नियामक है । इनका मत है कि अविद्या विद्या से नष्ट होती है और भक्ति विद्या का एक पर्व है, सब छोड़ कर दृढ़ विश्वास के साथ श्रवण, कीर्तन आदि साधनों द्वारा हरि का भजन करो, इसी से अविद्या का नाश होगा ।[1]

पुष्टि भक्ति के सेव्य रस श्री कृष्ण हैं । उन्होंने भक्ति में अनन्यता के भाव बहुत महत्व दिया है । उनका इस विषय में कहना है कि कृष्ण का पूर्ण आश्रय लेकर भक्त को दृढ़ विश्वास इस प्रकार रखना चाहिए जैसे चातक का मेघ से होता है । उनका विश्वास है कि अंश रूप जीव का अपने अंशी परमात्मा के साथ प्रेम भक्ति द्वारा ब्रह्म संबंध स्थापित होने से सब दोषों की निवृत्ति हो जाती है, अन्यथा निवृत्ति नहीं होती।[2] इसलिए भगवान को बिना समर्पण किए कोई वस्तु भक्त के ग्रहण योग्य नहीं है ।[3] वल्लभ संप्रदाय का वस्तुत: 'श्रीकृष्ण शरणाम मम भजनयि तथा अन्युकरणीय मंत्र है । मर्यादा पालन के संबंध में जो पुष्टि भक्ति की आरंभिक अवस्था है आचार्य की आज्ञा है-- 'मनुष्य को लौकिक और वैदिक कार्य इस प्रकार से भगवान को अर्पण करके करना चाहिए जैसे लोक में सेवक सर्व कार्य अपने स्वामी के निमित्त करता है ।[4] हरि के स्वरुप का सदा ध्यान करना चाहिए, भगवान का दर्शन और स्पर्श, भाव में भी होते हैं । उनके सबसे बड़े सेव्य स्वरुप श्री गोवर्द्धन नाथ जी थे ।[5] गोस्वामी विट्ठलनाथ जी ने किशोर कृष्ण की

१- माहात्म्य ज्ञानपूर्वस्तु सुदृढ़ सर्वतोऽधिक।
स्नेहो भक्ति रिति प्रोचास्तया मुक्तिन चान्यथा । त०दी०नि० श्लोक ४६ पृ० १२७

२- अ०व०सं० - पृ० ५१८

३- वही - पृ० ५२६

४- सेवकाना यथा लोके व्यवहार प्रसिद्धयति
तथा कार्या समाप्यैव सर्वेषां ब्रह्मता तत:
-सिद्धांत रहस्य षोडस ग्रंथ भट्ट रमानाथ शर्मा- ७-८

५- अ०व० सं०- पृ० ५२६

युगल-लीलाओं का तथा युगल स्वरूप की उपासना विधि का भी समावेश अपनी भक्ति पद्धति में कर लिया[1]। सूरदास आदि भक्तों की रचना में युगल स्वरूप तथा राधा की स्तुति के अनेक पद विद्यमान हैं[2]। वल्लभ संप्रदाय में राधा स्वकीया है और गौड़ी संप्रदाय में राधा परकीय रूपा है।

श्रीमद्भागवत में भक्ति के नौ प्रकार किये गए हैं जो इस प्रकार हैं-- श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पाद सेवन, अर्चन वंदन, दास्य, सख्य तथा आत्म निवेदन। वल्लभ मत में भागवत की नवधा भक्ति के अतिरिक्त दसवीं 'प्रेम लक्षणा भक्ति भी कहीं गई है और यही भक्ति उस मत में मुख्य है जिससे भगवान के

भक्ति भेद

भगवद् भक्ति साधारणतः दो प्रकार की है-- सगुण और निर्गुण। गुण का अर्थ है सत्व, रजः और तम। इन तीन गुणों के योग की सहायता से त्रिगुणात्मक प्राकृत, वस्तु को आश्रय कर प्राकृत जनों की जो भक्ति है, वही सगुण भक्ति है। निर्गुण अर्थात्, सत्व, रज तम गुणों के सहयोग से न होगुणातीत भगवान के प्रति अप्राकृत अर्थात त्रिगुणों के आधीन लोगों की शुद्ध सत्वमय द्रवीभाव प्राप्त अंतकरण की अविच्छिन्नभाव से चलती भक्ति ही निर्गुण भक्ति है[3]।

परम पुरुष भगवान माया का सृष्टा, प्रकृति का जनक अतः स्वाधीन और निर्गुण है। इसी कारण वह जीवों के विसदृश है। जीव जब तक प्रकृति के आधीन रहता है तब तक प्रकृति व प्राकृत विषयादि जीव को अनेक ओर खींच सुख दुख का भोग कराते हैं। जब तक प्राणी प्रकृति से संबंध विच्छेद नहीं कर सकते की सीमा में है--प्राणी का अंतःकरण प्राकृत वस्तुओं के साथ आबद्ध होने के कारण यह भगवद् विमुखी नहीं हो सकता है है[4]।

सगुण भक्ति : भक्त अपने अंतःकरण को भावद् विमुखी करने के लिये, जिन वस्तुओं को ग्रहण करेगा, यह सब प्राकृत त्रिगुणात्मक होगा, इनका चित्र या त्रिगुण के अतीत

१- अ०व० सं० - पृ० ५२७

२- वही० - पृ० ५२८

३- म०शा०-भ० वे० रे० पृष्ठ १८३

४- वही - पृ० १८४

वस्तु की कल्पना कर न सकेगा। प्राकृत वस्तु के भीतर जो सत्वप्रधान सुन्दर, सुखकर दुख और मोह का कारण भूत रज: और तमो गुण की अभिव्यक्ति रहित वस्तु को आश्रय कर प्रथम सच्चिदानंदात्मक भगवान में मन को अभिनिष्ट करना होगा[1]। जिन वस्तुओं के प्रति मनुष्य की प्राणि सुलभ लालसा नहीं, जो अभिनिविष्ट होने पर भी अंत:करण में प्राकृत वासना आदि का उद्रेक न हो, तब तो अनन्या साधारण भगवन्महिमा मंडित सात्विक विषय सूर्य, चंद्र जल आदि नहीं तो भगवान के निकट घनिष्ट भाव से संश्लिष्ट रुप में प्रकाशित वैष्णव भक्त के विष्णुमूर्ति आदि ही भगवद्भक्ति के आलंबन हो सकते हैं।

वल्लभ संप्रदाय में ईश्वर के दोनों रूप, सगुण तथा निर्गुण मान्य हैं। परन्तु उस मार्ग का इष्ट रस-रूप सगुण ब्रह्म ही हैं। सूरदास, परमानंददास आदि अष्ट भक्तों ने भी सगुण ईश्वर ही की उपासना का भाव अपनी रचनाओं में प्रकट किया है। सूरदास तथा नंददास के भंवर गीतों का गोपी- उद्धव संवाद इसी सगुण-निर्गुण तथा भक्ति और ज्ञान के विवाद को प्रकट करता है। इन कवियों ने इस विवाद को प्रकट करके अन्त में सगुण ईश्वर की भक्ति को ही अधिक प्रभावमयी सिद्ध किया है[2]। सूरदास कहते हैं-- निर्गुण ईश्वर की गति कहते नहीं आती, और न उस अव्यक्त पर मेरे मन की भावमयी वृत्ति ही ठहरती है, इसलिए सब प्रकार से अव्यक्त ब्रह्म तक पहुंचने में अपने को असमर्थ पाकर, मैं सगुण ईश्वर की भक्ति करता हूं और उसकी लीला के पद गाता हूं[3]। सूर ने अनेक पदों में ज्ञान और योग मार्ग तथा निर्गुण ईश्वर की ओर अपनी उपेक्षा के भाव को प्रकट किया है और सगुण ब्रह्म कृष्ण के रूप, नाम और लीला की प्रेम भक्ति की ही महिमा गाई है। एक स्थान पर वे कहते हैं-- मैं कर्म, योग, ज्ञान तथा वैधी भक्ति के साधनों में भटकता रहा, परन्तु मेरा भ्रम नहीं छूटा। अंत में वल्लभाचार्य जी ने भगवान की लीला का रहस्य मुझे जीव की भगवान के साथ मिल जाने के लिये जो आकर्षण व प्रवनतारुप द्रवीभूत अंत:करण की वृत्ति ही यदि ह भक्ति हो, तो जिन क्रियाओं के द्वारा भगवान के साथ अभिन्न हो सकता है, वही क्रिया

१- म०शा०-- अ० वै०रे० पृष्ठ १८५

२- अ०व० सं०- पृ० ५३३

३- अविगत गति कछु कहत न आवै-- सू०सा०

ही भक्ति या भजन है ।

श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पाद सेवन, अर्च्चन, वंदन, दास्य, साख्य और आत्मसमर्पण। इन नव भक्तियों का यदि सात्विक, राजसिक और तामसिक भेद किया जाय, तो प्रत्येक के तीन भेद होंगे। इसी प्रकार सगुण भक्ति के ८८ भेद होते हैं [1]।

श्रवण : भगवद्भक्त संत वैष्णव व गुरु के मुख से भगवान का नाम स्वरूप, गुण, क्रिया आदि की वेदादि शास्त्रों को एकनिष्ठ भाव से सुनना चाहिए। किसी एक वस्तु के नाम और स्वरूप आदि के विषय में सुनने से उसके संबंध में जो ज्ञान होता है, उसके द्वारा ही मनुष्य के मन में तद्विषयक संस्कार और वासना का जन्म होगा । अत: श्रवण द्वारा अंत:करण में भगवान का नाम गुण क्रिया का परोक्षज्ञान होता है [2]।

कीर्तन : उसे ही यदि बार बार अपने मुंह से आवृत्ति किया जाय या अन्य के सम्मुख इसी कथा को अनेक बार कहा जाय, तब यही श्रवण जनित संस्कार व वासना स्पष्ट और गाढ़ी होगी [3]।

स्मरण : भली तरह से मन में जमी और कंठस्थ बात भी स्मरण न करने पर चित्त पट पर अंकित उसके संस्कार व वासना धीरे धीरे सांसारिक या वासनान्तर द्वारा अभिभूत हो नष्ट हो जायगी। भगवत कथा संबंधी वासना चिरस्थायी हो उसके लिये स्मरण का विधान है । अनुभूत वस्तु का संस्कार उद्बोधन के द्वारा अंत:करण में पुन: पुन: प्रतिभास होने का नाम ही स्मरण है [4]।

पाद सेवन : अंत:करण में स्मरणांत भक्ति के से हुई भक्त के अंतर के भगवद प्राप्तिविषयक अभिलाषा से भी जो भगवत्प्राप्ति विषयक जिस कृति का उदय होता है, यही पाद सेवन अर्च्चन और वंदन यही तीन प्रकार की चेष्टा, क्रियारूप में बहिरिन्द्रिय और शरीर में अभिव्यक्त होने पर ही भगवत प्राप्ति अनुकूल होगी । वेद शास्त्रों ने जिस प्रकार की सेवा का विधान किया है उसी प्रकार की सेवा से वे संतुष्ट होंगे । उनका प्रतिमास्थापन गृहलेपन, प्रतिमास्नापन और उनके भक्त वैष्णव साधु लोगों की नाना प्रकार की प्रतिसाधना ही भगवान का पादसेवन है ।

अर्च्चन : अर्च्चन शब्द का अर्थ है पूजा । निज की भोगोपयोगी वस्तु और भगवान की प्रिय शास्त्रों में कहे गए नाना उपहार द्रव्य भगवान के उद्देश्य से त्याग करने को उनकी पूजा

१- वही- पृ० १८८
२- वही- पृ० १८६
३- वही - पृ० १६०
४- वही - पृ० १६०-१६१

या अर्चनात्मक भक्ति कहते हैं ।

बन्दन : स्तव स्तोत्रादि या नाना प्रकार की प्रार्थना कर,शास्त्रों के विधि के अनुसार प्रणाम करने को वंदन भक्ति कहते हैं ।

दास्य : भक्त का समस्त कर्म उसका फल,स्त्री,पुत्र,धन,सम्पत्ति आदि सब भगवान की होगी । इस प्रकार स्वयं को भगवान का दास समझने पर,समस्त कर्मफल इत्यादि को भगवान को अर्पण कर देने का नाम दास्य भक्ति है । दास्य भक्तिमान भक्त जिन कामों को भगवान को प्रिय समझता है या जानता है,उन्हें ही करता है और जो कर्म भगवान को अप्रिय हैं अर्थात वेदादि शास्त्रों द्वारा निशेध किये गए हैं उन्हें वह कभी न करेगा ।

सख्य : इसी प्रकार एकांतभाव से भगवान की भक्ति करते करते,जब प्रभु प्रसन्न हो भक्त को अपना दास कह ग्रहण करेंगे। तब माया व अज्ञान का आवरण फट जा हो जायगा । भगवान जो जिस प्रकार से प्रेम करता है भगवान भी उसे वैसे ही प्रेम करते हैं । तब भक्त भगवान को प्रभु न कह,परम प्रिय प्राणाधिक सखि अथवा सुहृद कहता है । परम प्रिय भगवान से मिलन की उत्कंठा अत्यन्त प्रबल हो उठती है ।

आत्मसमर्पण : जब भक्त का देह,मन,इन्द्रिय समस्त भगवान को अर्पित करेगा। देह,मन, प्राण सकल जब प्रियतम के हाथों में अर्पण कर दिया गया,और सर्व शक्तिमान भगवान ने उसे जब ग्रहण किया तब उसका चलना फिरना,प्रवृत्ति,निवृत्ति,उसके कृत पाप पुण्य आदि यह सब भगवान की क्रिया है,उसका कहीं भी किसी प्रकार का निजत्व नहीं। इसी अवस्था को माधव देव ने कहा है "न हम चार जाति जानते हैं न चार आश्रम,न धर्म शील,दानी तपस्वी और तीर्थगामी हैं,किन्तु पूर्णानन्द सागर के गोपीवल्लभ के कमलवत चरणों के दास के दास का दास मैं हुआ ।[1]

श्रवण-कीर्तन श्रेष्ठ : आत्मसमर्पण व भगवान को एक शरण लाभ तक ही सगुण भक्ति है। आत्म समर्पण होने के पश्चात भक्ति का सगुण भाव गिर जाता है । इस नव प्रकार की

१- नोहो आमि जाना चारि जाति,चारिओ आश्रमी नोहो आति
नोहो धर्मशील दान व्रत तीर्थगामी ।
किन्तु पूर्णानंद समुद्र गोपी भर्ता पद कमलर
दास रो दासरो तान दास भैलों आमि।।:नाघो०--माधवदेव

सगुण भक्ति के भीतर भी श्रवण,कीर्तन और स्मरण भेद भाव के स्फुरण न होने पर भी निर्गुण अवस्था में भी चल सकता है । भेद भाव व माया के बंधन न हुए निर्गुण भक्त का भी सदैव श्रवण,कीर्तन और स्मरण चल सकता है । "मुमुक्षु हरि कीर्तन से सदैव रति करते हैं,इसी कीर्तन में जो विघ्न नहीं देता वह अधोगति को प्राप्त होगा[1] । जितने एकांतिक महामुनि हैं,निवर्तित विधि निषेध में निरंतर निर्गुण भाव में स्थिति हो,कृष्ण कथामृत,सागर को पुरुषार्थ का सार तत्व जानकर,व सदैव ही उसे कहते सुनते हैं[2] । श्रवण कीर्तन के साथ स्मरण भी अंतर्भुक्त हो सकता है,क्योंकि स्मरण होने पर श्रवण कीर्तन नहीं हो सकता है । अतः श्रवण और कीर्तन को सर्वश्रेष्ठ कहा गया है । "पूजा आदि जितने भक्ति के मध्याम हैं इनमें श्रवण कीर्तन ही सार हैं-- कथा सुनने और नाम कीर्तन के समान अन्य कोई नहीं है[3] । मेरी भक्ति का रहस्य श्रवण और कीर्तन है-- आकाश में मात्र विवक्ष्य करना[4] ।

आचार्य भट्टदेव ने भक्ति विवेक में दास पर्यन्त भक्ति का निरूपण किया है,सख्य और आत्म निवेदन के संबंध में कुछ भी नहीं कहा । शंकरदेव ने भी "भक्ति रत्नाकर" में भक्ति के नाना विभाग की बात की है किन्तु सख्य और आत्मनिवेदन भक्ति का निरुपण नहीं किया है । दास्य भक्ति की पीछे माया का आवरण फटला हो जाता है,और भेद ज्ञान दूर होने लगता है सख्य और आत्म समर्पण रूप भक्ति के समय भेद ज्ञान का लेश रहने पर उसको दूर करने के लिये किसी वैध कर्म के अनुष्ठान का विधान संभव नहीं[5] ।

१- मुमुक्षु सकलो हरिर कीर्तने करन्त सदाय रति।
हैन कीर्तनत मिटो विघ्न ने दे याइबे सिटो अधोगति।।ना०घो०२८८-माधवदेव:

२- ऐकान्तिक महामुनि मत निर्वर्तिया विधि निषेधत
निर्गुण भावत थिति हुया निरंतरे ।
जानि पुरुषार्थ सार तत्व कृष्ण-कथामृत सागरत
मथने मथने सदाय रमणकरे । ना०घो० ६४८-माधवदेव

३- पूजा आदि मत भक्तिर मध्यत,श्रवण कीर्तन सार।
कथा श्रवणार,नाम कीर्तनर समान नाहिके आर।। २ स्कंध :४७३-४७४:शंकरदेव
४- श्रवण कीर्तन मोर रहस्य भकति।
आकाशे करिबा मात्र विवक्ष्य सम्प्रति।।:२ स्कंध ६५२:
५- म०शा०-अ०वै०द०रे०पृष्ठ १९६

श्रीभागवत में पुरंजन उपाख्यान वर्णन के प्रसंग में रुपक के द्वारा स्पष्ट किया गया है कि दास्यांत सात प्रकार की भक्ति गुरु के उपदेश द्वारा जन्मती है,सख्य और आत्मनिवेदन भक्ति स्वयं उत्पत्ति के कारण गुरु के उपदेश व विधि की अपेक्षा नहीं करती। भगवत् तत्व ज्ञान के पश्चात जो स्वयं उत्पन्न होती है अथवा स्वयं भगवान ज्ञान के पीछे व भक्त को इस सख्य भक्ति का उपदेश देंगे । भक्ति विवेक में पहले ही जो शरण-निर्णय किया गया है उसके द्वारा आत्मनिवेदन भक्ति का रूप कहा गया है। शंकर देव ने भी भक्ति रत्नाकर में अनेक स्थान पर भगवान के एक शरण अब अनन्यशरण की कथा के भीतर आत्म समर्पण भक्ति का स्वरूप निरुपण किया गया है[1]। जब माया का आवरण और विक्षेप रूप कार्य नहीं रहता किन्तु शुद्ध सत्वमय,भगवद्ाकार में आकार की द्रवीभावापन्न मायिक अंत:करण वृत्ति रहती है । यही एक शरणता नाम है,इसे हमने निर्गुण भक्ति कहा है । इस भक्ति के उदय होते ही व्यक्ति जीवन्मुक्त होता है। शंकरदेव ने कहा है "जो समस्त जगत में विष्णुमय देखता है,वह अचिर काल में जीवित रहते हीं मुक्त होता है[2]।

भक्त गण मुक्ति की उपेक्षा कर केवल भक्ति कीवांछा करते हैं । "जिस प्रकार हरि पद को कमल नहीं चाहिए,उसी प्रकार मुझे मुक्ति नहीं चाहिए[3]। सुख का भोग मैं नहीं मांगता,न मुझे मुक्ति चाहिए। केवल तुम्हारे चरणों में मेरी भक्ति रहे[4]। तुम्हारी पद धूलि को छोड़ प्रभु मुझे मोक्ष की अभिलाषा नहीं है[5]। नारद,सनतकुमार,अनंत शुकमुनि इत्यादि मुक्ति के सुख को त्याग कर केवल राम नाम लेकर विचरण करते हैं[6]।

१- भ०शा०-अ०वे०द०रे० पृष्ठ १६८

२- विष्णुमय देखे यिटो समस्त जगते।
जीवन्ते मुकुल होवे अचिर कालते। :की०१८२४:
शंकरदेव

३- नलागे लीन मुकुतिको तथा ।
नाहि हरि पद पंकज यथा। :की०११४:

४- न मागोहो सुख भोग न लागे मुकुति।
तोमार चरणे मात्र थाकोक भकति। :वही५२३:

५- मोक्षतो अभिलाष नाहि हरि।
तोमार चरण रेणुक एरि। :वही १६२:

६- नारद सनतकुमार अनंत शुकमुनि आदि करि।
मुकुति सुखक ठेलि रामनाम सदाइ
फूरे घुनरि।ना०घो०३५३माधवदेव

जिन लोगों ने भक्ति पथ का अवलंबन नहीं किया है अथवा भक्ति के अनाधिकारी ज्ञान को चरम काम्य कह सोचते हैं और ज्ञान लाभ के निमित्त ही भक्ति करते हैं, उनके पक्ष में चरम वृत्ति अन्यान्य समस्त को दग्ध कर स्वयं भी दग्ध व उपशांत हो जाती है। इन्हीं लोगों को लक्ष्य कर कहा गया है। 'जो अपने कर्मविपाक को भोग कर, तुम्हारी कृपा की ओर देखता है-- काय-वाक्य मन से तुम्हारी ही सेवा करता है, वही मोक्ष प्राप्त करता है[1]। ज्ञानी गण यहां ब्रह्म में विलीन हो जाते हैं-- जो जन माधव का नाम धर कर जाते हैं, उनके पीछे देवी देवता स्तुति करते फिरते हैं पांच प्रकार[2] की मुक्ति मूर्ति मुक्ति मूर्तिमय होकर कहती हैं 'तात मुझे लो'-- प्रार्थना करती हैं।

सगुण भक्ति साधन और निर्गुण भक्ति साध्य अर्थात सगुण भक्ति के द्वारा ही निर्गुण भक्ति की अभिव्यक्ति होती है 'भक्ति रत्नाकर' में इस बात को एक श्लोक में कहा गया है।

स्मरन्त: स्मारयन्तश्च मिथो कौघ हरं हरिम।

भक्त्या संजातया भक्त्या बिभ्रत्युत्पुलकांतुम ।।भ०र०९४।४

यहां पर प्रथम भक्त्या के अर्थ हैं साधन भक्ति। चित्त का द्रवभाव निरवच्छिन्न होने पर, इसे ही प्रेम भक्ति कहा जाता है। साध्य भक्ति से अनवरत भगवत्तत्व का स्फुरण होता रहता है। शंकरदेव ने कहा है 'मेरे लिये जिसके मन में प्रेम उत्पन्न हुआ, बंधु उसके हृदय को मैं कभी नहीं छोड़ता[3]। इस अवस्था में भगवद्रति रसरूपा प्राप्त होती है अत: मुक्ति से भी अधिक इसका आनंद है। इसी को वैष्णव जन 'रसमयी भक्ति' या भक्तिरस कहते हैं।

१- यिटो मुंजि निज कर्मर विपाक तोमार कृपाक चावे।
काय वाक्य मने तोमाकेसे सेवे तेहसे मोक्षक पावे ।। :१० स्कंध- ४६४:

२- यिटोजन याम माधवर नाम धरि।
पाछे पाछे फुरे देव-देवी तुति करि ।।
मूर्तिमंत हुया पांच प्रकार मुकुति।
मोक लैयो बाप बुलि करंत काकुति।।:११ स्कंध १६३१६: शंकरदेव

३- मोक लागि प्रेम उपजिल यार मने।
नेरो सखि ताहार हृदय सर्व्वक्षणे।:११ स्कंध १६२६०: शंकरदेव

अव्यभिचारिणी भक्ति : निर्गुण भक्ति कभी कभी विष्णु तत्व को छोड़ नहीं सकती है, अत: इस भक्ति के व्यभिचारिणी होने की कोई आशंका नहीं है । सगुण भक्ति व यदि किसी अवस्था में विष्णु व परमउपास्य रूप ग्रहण किये तत्व को छोड़ उससे भिन्न अन्य देवता तत्व में आविष्ट होती है, तब यही भक्ति व्यभिचारिणी होती है । अव्यभिचारिणी भक्ति में अन्य देव या अन्य धर्म की निन्दा का स्थान नहीं है । दूसरे के धर्म के प्रति कदाचित हिंसा न करना- सकरुण चित्त से प्रत्येक प्राणी के दया करना।[1] अन्य समस्त मतावलंबियों की निन्दा न करना, योग के फल के लिये कर्म का त्याग करना। आत्म योग में निष्ठा होगी, कामना छूट जायगी, शीत उष्ण आदि ताप और दुख को सहन करना ।[2] अवज्ञा, उपेक्षा, द्वेष निन्दा का त्याग कर -- कलिकाल में जितना हो सके कृष्ण की पूजा करो ।[3] आत्मा रूप में प्रत्येक प्राणी में हूँ, उसकी उपेक्षा कर जो मेरी पूजा करता है । उस पूजा को होम की भस्म की आहुति समझना ।[4]

श्रवण कीर्तनादि भक्ति को परम धर्म कह और निर्गुण भक्ति में संसार का बंधन नहीं रहता, इसमें मोक्ष सुख भी पाया जाता है और इसे मोक्ष से अधिक सुखजनक कहा गया है ।[5] समस्त धर्मों में भक्ति श्रेष्ठ है । अत: यह परम धर्म और पूर्वोक्त पांच प्रकार की मुक्ति के भीतर जहां भागवद् भक्ति विरति नहीं होती है, वही सर्वाधिक काम्य-अत: यह :निर्गुण भक्ति:परम मोक्ष है ।

> ताहार चरित्र सुधा सिंधु ताल क्रीड़ा करि दीन बंधु।
> चारि पुरुषार्थ तृणर सम करय।। :ना०घो०६४०:

१- परर धर्मक निहिंसिबा कदाचित
   करिबा भूतक दया सकरुण चित्त।। :भ०प्र०१४२:- शंकरदेव

२- नकरिबा निंदा आन पंथी समस्तक।
   योगर फलर अर्थे तेजिबा कर्मक ।।
   आत्मयोग निष्ठा हैबो कामना एड़िब।
   शीत उष्ण आदि यत दुखक सहिब।। :भ०र०प०१।६३-६४:-माधवदेव

३- अवज्ञा उपेक्षा द्वेष निन्दाक एरिबा।
   कलित पिमान पारा कृष्णक पूजिबा।। :भक्तिविवेक-पद ६७०:

४- आत्मारुपे मइ प्राणीत आछों तारा उपेक्षा करि।
   मोक पूजे तार पूजन जानिबा भस्मत होमर सरि।। :वही- ६७४:

५- मोग्य जाय होवे कर्म धर्म मायामय।
   श्रवण कीर्तन धर्म परम अक्षय। ११ स्कंध २२२

वल्लभ संप्रदाय केउपास्यदेव सगुण, रसरूप श्रीकृष्ण हैं। इस मत में कृष्ण के दो रूप मान्य हैं-- एक पूर्ण पुरुषोत्तम रस रूप ब्रज कृष्ण, दूसरा धर्मसंस्थापक व्यूहात्मक रूपधारी मथुरा द्वारिका कृष्ण। अष्टछाप भक्तों की आस्था ईश्वर के सगुण, निर्गुण, पंचदेव और चौबीस लीला अवतार सभी रूपों में थी, परन्तु उनकी प्रेमभक्ति के उपास्यदेव बाल, पौगण्ड और किशोर अवस्थाओं में लीलाधारी ब्रज कृष्ण ही थे[1]। कृष्ण भक्ति के साथ इन अष्टभक्तों ने कृष्ण की पूर्ण रस-शक्ति राधा की भी उपासना की है और युगल स्वरूप के क्रिया कलाप का चित्रण करते हुए उनकी स्तुतियां की हैं।

भगवत्प्रेमानंद : परम रसात्मक भगवान के प्रति जो आकर्षण व धारावाहिक भाव प्रवाहित, भगवदाकार की आधारित, द्रवीभूत चित्तवृत्ति भक्ति व भगवद रति है। वास्तव में ब्रह्म व आत्मा के साथ अभिन्न विभु नित्य, परिपूर्ण बुद्धोधात्मक भगवंत इसका आलंबन है, विषय संस्पर्श अल्पमात्र नहीं है। अत: यह आत्म सात्विक तन्मय चित्तवृत्ति उज्वल आनंद परिपूर्ण तत्वरूप में रहती है।

ऐकांतिक महामुनि विधि निषेध में निवृत्त हो, और निर्गुण भाव में निरंतर स्थिर रह, कृष्ण कथा मृत सागर में पुरुषार्थ का सार समझ कर, कथन मथन में सदैव रत रहते हैं। हरि के गुण की शक्ति देखो, इसे प्राप्त करने पर मोक्ष प्राप्त होता है। उन्हें सब लोग अपने मन में खींच कर लावो। जितने निपुण जन हैं, कृष्ण चरणों में मन लगाते हैं। हरि के गुणों को सार जान न छोड़ना[2]।

मोक्षतो अधिक इटो भकतिर सुख अति
परम आनंद निरुपम।
भकतिये पुरुषार्थ लिंग देख मग्न करे
बिना यत्ने मुकुतिक पावे ।। भ०र० ४७६: माधवदेव

1- अ०व० संक्ष - पृ० ५५२

ऐकांतिक महाभुनि यह निवॄत्तिया विधि निषेधत।
निर्गुण भावत थिति हुआ निरंतरे
जानि पुरुषार्थ सार तत्व कृष्ण कथामृत सागरत
कथने मथने सदाइ रमण करे।।
हरिर गुणर देखा बल लभिलेक थिरो मोक्ष फल
ताहारा सबारो चित्त आन्य टानि।

काव्य, नाटक आदि कला के द्वारा व्यंजित पारिभाषिक नव रसों से मधुर, अधिक प्रकाशमय और परिपूर्ण रसमयी भक्ति है। कांतादि विषयक जो रस और भाव आदि प्रकट होते हैं, इनके बीच पूर्ण आनंद का विकास नहीं होता । कांतादि विषयक रस इन भगवद्विषयक रति की तुलना में आदित्य के प्रकाश की तुलना में खद्योत के सदृश क्षुद्र और आदित्य के प्रकाश की भांति महिमा मंडित । असमिया वैष्णवों ने भी इसी कथा को बार बार दुहरा कर कहा है[1] । कृष्ण के भक्ति सागर में अमृत से अधिक सुख बिना प्रयास के ही प्राप्त होता है[2] । तुम्हारे चरणों में अखंडित रति हो--श्रवण कीर्तन का रस कदापि न छोड़ूं[3] । वह भक्त जो मुक्ति में निस्पृह है उसे नमस्कार करता हूं, रसमयी भक्ति मांगता हूं, हरि कथा के अमृतमय रस में निमग्न हो-- हरि कीर्तन के महा आनंद की आशा में कितने महाजन मुक्ति के सुख का त्याग कर महंत जनों की संगति में कृष्ण के चरण को खोजते हैं । किन्तु माधव का जन्म कर्म यह महाधर्म है, इसकी सीमा वेद भी पा सकता है । हरिनाम कीर्तन में मोक्ष आदि मिलता है, कीर्तन के सुख की सीमा नहीं है । मधुर से सुमधुर हरि की कीर्तन का रस है, मंगल में परम मंगल है । इसी से मुक्ति का त्याग कर, महंतगण हरि के गुण का स्मरण करते हैं[4] । परम निपुण शास्त्रों का तत्व समझ कर हरिपद का भजन करना, हरि कीर्तन के महा आनंद में डूब मुक्त के सुख को त्याग कर रहो। हरिनाम प्रेम रस अमृत निधि को छिपा कर देवगणों ने रखा है । कृष्ण का यश अत्यन्त निर्मल है, उसमें अन्य रस नहीं पड़ता है, परमानंद के समुद्र में डूबे रहो[5] ।

१- भ०शा०--अ०वै०प०रे०--पृष्ठ २७९

२- कृष्णर भकति सुख सागर संकाश
   अमृततो धिक स्वाद नाहिके प्रयास।।श्री शंकर, र०म०

३- हैन तजु पदे अखंडित रति थाक।
   श्रवण कीर्तन रसे कदापि नैरीक ।।

४- मुकुतित निस्पृह यिटो सेहि भकतक नमो
   रसमयी मागोहो भकति।
   हरि कथा अमृते समाके आलाप रसे।
   हरि कीर्तनर महा आनंद सुखक आशे
   कतो कतो सब महाजने ।
   मुकुति सुख को तेजि महंता जनर संगे
   खोजे अति कृष्णर चरणे।।
   किंतु इटो महाधर्म माधवर जन्म कर्म
   वेदे यार नपावे सीमा।
   हरि नाम कीर्तनत मिले मोक्ष आदि यत
   कीर्तन सुखर नाहि सीमा
   मधुररो समधुर हरिर कीर्तन रस, मंगलरो परम मंगल।
   एतेकेसे मुकुतिको, त्यजि हरि गुण गामा
   फुरे महा महंतसकले।। :ना०घो० :माधवदेव

५- परम निपुण सबो बुझिया शास्त्रर तत्व

भक्ति रस की वृद्धि कर समस्त संसार का नाश करते हो भक्ति रस में पूर्ण होकर हृदय में स्थित रहते हो ।[1] समस्त लोकों का तापहारी कृष्ण का यश है,उसको गाते महाप्रेम रस मिलता है ।

इस प्रकार नाना स्थान पर साधुओं ने भक्ति को रस,की आनंद व निस्सीम सुख स्वरुप कहा है । किन्तु यह रस शृंगार आदि प्रसिद्ध रस का अन्यतम व उसके अतिरिक्त एक प्रकार है अथवा शृंगार आदि रस ही भगवद्विषयक होने पर भक्ति होते हैं शृंगार आदि रस से मूलीभूत रस भक्ति है,यह बात कहीं स्पष्ट नहीं की गई है ।

रस शब्द पारिभाषिक दृष्टि से काव्यानंद व कला के द्वारा व्यंजित आनंद को कहा जाता है । रस्यते इति रस::साहित्य दर्पण १-३: इस व्युत्पत्ति के अनुसार उच्चत आनंद मात्र `रस` शब्द का व्यवहार होता है ।असमिया वैष्णव साहित्य में इसी यौगिक अर्थ में भक्ति में रस शब्द का प्रयोग किया गया है ।[2]

जिस प्रकार गौड़ीय वैष्णवों ने भगवद्विषयक शृंगार आदि रस को भक्तिमूलक कहा है और काव्य रसिकों के प्रसिद्ध शांत आदि रस भगवद्विषयक होने पर भक्ति रस होते हैं,कहा है। असमिया वैष्णवों ने इस प्रकार स्पष्ट भाव से इस बात को कहीं भी कहा नहीं है । प्राणी जो अपने को प्रेम करता है--इस आत्म प्रीति और जागतिक विषयक प्रेम रुप सर्वविषयक रति का मूल उत्स जो आत्म प्रीति है,इस बात को इन लोगों ने भी स्पष्ट रुप से कहा है ।[3]

जिस कारण चैतन्यपूर्ण परमात्म रूप में हरि हृदय में प्रकाशित हो रहे हो । वहीं इंद्रियगण,भूत,प्राण,बुद्धि मन का प्रवर्तन जड़राशि में करता है ।[4] कृष्ण जगत में ही निवास

`हरिनाम प्रेम रस अमृत निधिक बांधि
गुप्त करि थैला देवगणे।`
`परम मंगल कृष्ण यश भाल परे आन नाहि रस
परम आनंद समुद्रे मजि रस्य।।` :ना०घो०: -माधवदेव

१- भक्ति रस बढ़ाइ नाश करियो संसार।
`भकति रसत पूर्ण हुया थाके हिया।`
समस्त लोकर तापहारी कृष्ण यश।।
ताहाक गावन्ते मिले महा प्रेम रस।। गोपाल चरण ३ स्कंध

२- भ०शा०-अ०वै०द०रै० २७४

३- वही-- २७६

४- यि हेतु चैतन्यपूर्ण परमात्म रुपे हरि
हृदयगत आछंत प्रकाशि
तातेसे इन्द्रिय गण भूत प्राण बुद्धि मन

करते हैं हो, और[1] जगत में ही रमण करते हो । इसी से उसे वासुदेव कहते हैं नाम का यह निर्णय है ।

इसके द्वारा यह स्पष्ट हुआ, इसे लौकिक आनन्द कहो या कला का रस कहो, समस्त सुखों का स्वरूप मूल तत्व भगवान हुआ और प्रेम का स्वरूपभूत पदार्थ हुआ यही मूलीभूत भगवत्प्रीति, आत्मप्रीति व भक्ति है । यही आत्मप्रेम व भगवदरति विषय आदि के मध्य में प्रकाशित होने पर, उसका वास्तविक रूप मायावृत रहता है और साहित्य आदि कलाओं से उद्रित रति शोक आदि स्थायी भाव को ले प्रकाशित होने पर वहां कांतादि भाव विषयक रत्यादि भाव का प्रवाह होता है । यदि समस्त रस भक्ति विशेष के प्रकाश विशेष हों, तब तो उसको नाना रस के भीतर अन्यतम नहीं कहा जा सकता, आत्मप्रीति, भगवतरति व भक्ति और व रस वस्तुत: एक ही है, उपाधि भेद के कारण ही यह नाना रसरुप में प्रतीत होता है । आलंकारिकों की दृष्टि में नव रस के अतिरिक्त भक्ति रसनाम के भिन्न रस के स्वीकार करने की प्रयोजनीयता इन लोगों ने उपलब्ध नहीं किया था।[2] द्वितीय स्कंध में शंकर देव ने प्रार्थना की है ।

अहो कृपामय, मेरे वाक्य को अलंकृत करें-- श्रृंगार आदि नाना रस राज हो और आनंद पूर्वक लोग उसे सुनें।[3] मूल श्लोक में श्रृंगारादि रस की बात नहीं है ।

इसके द्वारा भागवत कथा आलंकारिकों के अभिमत से श्रृंगार आदि रस द्वारा परिवेषण करेंगे, उसी का संकेत किया गया है ।

श्रृंगार रस में जिसकी रति है, इसे सुन वह निर्मल मति का हो[4] ।

यहां भी श्रृंगार रस का आस्वादन करने के लिये ही रास क्रीड़ा-कथा को सुनने का उपदेश किया गया है । भगवद विषयक कथा से व्यंजित हुए श्रृंगार रसास्वाद द्वारा चित्त निर्मल व भगवद्भक्ति के लिए उपयोगी होता है, ऐसा कहा जाता है तथापि उसके द्वारा रास क्रीड़ा कथा, साक्षातभाव से भक्ति रस व प्रेम रस के हेतु है, इसके संबंध में कोई इंगित नहीं किया गया है । यदि भक्ति रस को अतिरिक्त माननेवालों की तरह भगवदविषयक

१- जगतते कृष्ण करिछा निवास, जगते तान्ते रमय।
एतेकेसे तांक बुलि वासुदेव, नामर इटो निर्णय।। :माधो0 :-माधवदेव

२- भ0शा0--अ0वै0द0रे0-पृष्ठ २७८-२७९

३- श्रृंगार रसे भार आछे रति।
आक शुनि होक निर्मल मति ।

४- भ0शा0-- अ0वै0द0रे0-- पृष्ठ २८०

शृंगार को इन लोगों ने भक्ति रस समझा होता, तो यहां पर भागवत शरण रस को भक्ति रस कह स्पष्ट रूप से उल्लेख किया होता।[1]

भक्ति रस

भरत मुनि ने नाट्य शास्त्र में काव्य रसों की संख्या नौ मानी है -- शृंगार, करुण, शांत, रौद्र, वीर अद्भुत, हास्य, भयानक तथा वीभत्स। उन्होंने भक्ति को कोई स्वतंत्र रस नहीं माना। भरत मुनि के बाद काव्य शास्त्र पर लिखने वाले आचार्यों में से आचार्य मम्मट ने भी भक्ति रस को दसवां रस नहीं कहा। भरत मुनि की नौ रसों की बंधी हुई मर्यादा को तोड़ना उनको अभीष्ट न था, इसलिए उन्होंने भक्ति को केवल भाव की संज्ञा देकर ही छोड़ दिया। काव्य शास्त्र के सभी आचार्यों ने स्त्री की एकांत में और एकांत के की स्वस्त्री में रति को ही शृंगार रस का स्थायी भाव कहा है। भक्ति का प्रेम ईश्वर विषयक होता है, इसलिए इसे शृंगार रस के अंतर्गत नहीं रखा गया।[2] भक्ति शास्त्र पर भी संस्कृत में अनेक ग्रंथ लिखे जा चुके हैं जैसे महाभारत-शांतिपर्व का नारायणीयोपाख्यान, शांडिल्य सूत्र, नारद पांचरात्र, नारदभक्ति सूत्र, हरि भक्ति--रसामृत-सिंधु आदि जिनमें भक्ति की व्याख्या की गई है। इन ग्रंथों में भक्ति रस को ब्रह्मानन्द से भी अधिक सुखकारी कहा गया है।[3] भक्ति रस की निष्पत्ति के विषय में श्री रूपगोस्वामी जी हरिभक्ति-रसामृत सिंधु में कहते हैं-- विभाव अनुभावादि की परिपुष्टि से भक्ति, परम रसरूपा हो जाती है। विभाव, अनुभाव, सात्त्विक भाव तथा व्यभिचारी भावों से भक्तों के हृदय में स्वाद्यत्व को प्राप्त कराई गई जो कृष्ण रति रूप स्थायीभाव है, वह भक्ति में परिणत होता है। जिनके हृदय में प्राचीन :पूर्वजन्म: की अथवा तात्कालिक :इस जन्म की: सद्भक्ति की वासना या संस्कार हैं, भक्ति रस का आस्वाद उन्हीं के हृदय में होता है। जिनके पाप दोष भक्ति से दूर हो गए हैं, जिनका चित्त प्रसन्न और उज्ज्वल है, जो भागवत में रक्त हैं, जो रसिकों के सत्संग में रंगे हैं, जो

१-

२- अ० व० सं०-- पृ० ५६०

३- वही -- पृ० ५६९

जीवनीभूत गोविन्द के चरणों की भक्ति को ही अपनी सुख श्री मानते हैं और जो प्रेम के अंतरंग कृत्यों को करनेवाले भक्त हैं,उनके हृदय में जो आनंदरूपा रति स्थित होती है वही दोनों प्रकार के :प्राचीन तथा इस जन्म के: संस्कारों से उज्ज्वल बनी रति-रस रूपता को प्राप्त होती है । यही रति अनुकूल कृष्णादि विभावादि के संसर्ग से उक्त भावों के हृदय में प्रौढ़ानंद और चमत्कार की पाराकाष्ठा को प्राप्त होती है[1]। भक्तों को जिस भक्ति रस की अनुभूति होती है वह भरतादि द्वारा परिभाषित तथा दृश्य,श्रव्य काव्य और कला द्वारा अनुभूत रस नहीं होता,किन्तु भक्तों के हृदय की प्रथ प्रथम रसानुभूति,कृष्ण और उनकी लीला से संबंधित रागानुगा भक्ति के अनुभव तथा ब्रह्म साक्षात्कार से ही होती है[2]। वल्लभ सम्प्रदाय में परमेश्वर के स्वरूपों की सेवा बहुधा बाल भाव से हीहोतीहै । वल्लभाचार्य जी ने प्रेम भक्ति की प्रथम सीढ़ी वात्सल्य भक्ति को ही माना है । भक्ति की प्रथम अवस्था में इसी भाव से भगवान की सेवा और उससे स्नेह करने का उनका आदेश है[3]।

भक्ति सब भावों से हो सकतीहै इस भाव को अष्टछाप भक्तों ने भी व्यक्त किया है। सूरदास जी कहते हैं किसी भाव से भगवान को भजो,उनका भजन सब प्रकार के संसार दुख से पार करनेवाला है,तथा काम क्रोध,स्नेह,सख्य आदि किसी भी भाव से जो व्यक्ति दृढ़तापूर्वक हरि का ध्यान करता है वह हरि का हो जाता है । प्रेम भाव की भक्ति के विषय में भी सूर का विचार है कि प्रेम के सभी संबंधों से भगवान वश में हो जाते हैं। अष्टछाप भक्त यद्यपि यह मानते हैं कि भगवान सर्वभाव से भजनीय है,परन्तु उन्होंने जिस भाव से भक्ति रस का आस्वादन किया और जिस भाव की उन्होंने महिमा गाई,वह प्रेम भाव और प्रेम भक्तिरस था[4]।

१- अ०व० सं० -- पृ० ५६४-५६५

२- वही -- पृ० ५६६

३- अ०व० सं० -- पृ० ५६६

४- अ०व० सं०-- पृ० ६०१

असमिया वैष्णव साहित्य में शांत रस ही प्रधान :

प्राचीन असमिया वैष्णव साहित्य में भगवद् रति रूप 'सम' स्थायी भाव का शांत रस ही मूल,प्रधान व अंगी रस है । भगवद् रति व्यंजित होने के कारण,उसे ही भक्त गणों ने भक्ति रस कह कर उल्लेख किया है । रास क्रीड़ा,हरिश्चंद्र उपाख्यान आदि भिन्न भिन्न काव्य व नाटक में श्रृंगार करुण आदि भिन्न भिन्न रस हैं,यदि यह सब उक्त शांत रस के अंग व परिपोषकभाव से व्यभिचारी रस रूप प्रतीत होते हैं। जैसे-- केलिगोपाल नाटक में गोपी-कृष्ण का संभोग और विरह श्रृंगार रस व्यंजित हुआ है,तथापि यह वहां प्राधान्य प्राप्त न कर सका । यहां पर केवल कृष्ण श्रृंगार रस के नाटक के नायक के समान उपस्थित नहीं हुए,वे भगवान,जगत के सृष्टि-स्थिति लयकर्ता परमपुरुष हैं उनका रूप कार्य,शक्ति सब लोकातीत अप्राकृत लीला मात्र है । गोपियां भी केवल श्रृंगार रस नाटक की नायिका मात्र नहीं हैं,उन लोगों ने भगवान श्रीकृष्ण को नायकोचित प्रणय के लिये ही- प्रेम किया था,ऐसा नहीं-- उन्हें भगवान, परमात्मा समस्त आनंद का आनंदस्वरूप समझ कर प्रेम किया था। इस कथा को कवि ने नाना स्थान पर प्रकाश किया है[१]।

श्रीकृष्ण के प्रति जो प्रेम व स्नेह है वह नायक के प्रति नायिका का प्रेम नहीं है । इस नाटक के द्वारा भगवद् भक्त सामाजिकों की कांतादि विषयक रति उद्रिक्त नहीं होती,समस्त विषय वासना विगलित हो,बाह्य वस्तु के प्रति जो प्राकृत अनुराग है उसका स्फुरण नहीं रहता। अत: चित्त वहीं विषय से विरक्त हो,परम निर्मल भाव से अवस्थान करता है । भगवान के रूप कार्य आदि सबअलौकिक,लौकिक नाटक में लौकिक रूप,कार्य आदि के द्वारा उसका अनुकरण व अभिनय सब प्रकार से संभव पर नहीं है। इस ओर गोपियों का परिदृश्यमान रूप कार्यादि द्वारा उनके हृदयस्थ जो कांतविषयक रति भाव पाया जाता है,उससे अधिक श्रुत रूप और कार्य के द्वारा उसका विपरीत

१- सूत्र- ये सकल सुरासुर वंदित पादपद्म सकल संसार दाकैर
सुजना,माकेरि नामे महापापी सब संसार निस्तरै सोहि परमेश्वर श्रीगोपाल।
"हे सखि,तोहो यशोदानंदन नह,जगत राखिते ब्रह्म प्रार्थन
से निमित्त तोहो सर्व्व अंतर्यामी श्रीकृष्ण बेकत भयाद ।

"अन भाव का प्रकाश अधिक स्पष्ट हो जाता है। अत: उक्त नाटक में विभव आदि जिस रूप में देखा गया है और सुना गया है, इन दो रूपों का परस्पर मेल नहीं है। देखा रूप प्राकृत व लौकिक इसलिये अभिनेय और सुना रूप अप्राकृत व लोकातीत है, अत: अभिनय से अतीत है। यद्यपि देखा रूप ही श्रृंगार रस की व्यंजना करता है, सुना रूप श्रृंगार रस की प्रतिमा में शांत रस की प्राण प्रतिष्ठा करता है। अभिनव गुप्त के संगृहीत श्लोक में शांत रस को मोक्ष का हेतु कहा गया है।[1] इस नाटक के कवि ने भी इसे मोक्ष का हेतु कहा है।[2] इसके द्वारा इस नाटक में, शांत रस ही प्रधान और श्रृंगार रस उसका व्यभिचारी व अंग रूप में रह, उसकी पुष्टि करता है, यही समझा जाता है श्रृंगार जिससे अधिक समृद्ध और परिपुष्ट हो, शांत रस के ऊपर उठ न जाय, उसके लिये कवि ने नाना दिशाओं से स्पष्ट प्रयास किया है।

साहित्य में अनेक रसों के समावेश के विषय में ध्वनिकारों ने कहा है कि "किसी रस को अंगी व प्रधान कर उसका विरोधी हो, या अविरोधी हो, अन्य किसी रस को अंगीरस के समान परिपुष्ट कर उठाना न चाहिए, तभी अंगाभी रस का अविरोध व यथोचित सामंजस्य की रक्षा होती है।[3] असमिया वैष्णवों द्वारा प्रणीत अंकीया नाट व वैष्णव साहित्य में इस का सुन्दर अनुसरण किया गया है। अर्थात श्रृंगारादि रस व भाव के द्वारा भगवद्भक्ति व शांत रस की पुष्टि साधन की गई है, श्रृंगार आदि अन्य रस जिससे अति समृद्धि हो निज के प्राधान्य के समग्र वैष्णव साहित्य के प्रधान भूत शांत रस की महिमा नष्ट कर नहीं सकता है, इसलिये मध्य मध्य में वस्तुमात्र

१- मोक्षाध्यात्म निमित्तत्व त्स्वानर्थ हेतु संयुक्त:।
निःश्रेय समभ्युत: शान्तरसो नाम विज्ञेय:।।
:अभिनव भारती-शांतरस :

२- भो भो समासदा यूयं शृणुतं सावधानत:।
केलि गोपालं नामेदं नाटकं मोक्षकम् :केलि गोपाल: शंकरदेव

३- अविरोधी विरोधी वा रसोऽङ्गिनि रसान्तरे।
परिपोषं न नेतव्य स्तथा स्यादविरोधिता ।।
: ध्वन्यालोक: ३।२४

की हेयता, भागवततत्व की परम उपादेयता, विष्णु के नाम, गुण, कर्म की उपास्यता और विष्णु भक्त जनों की श्रेष्ठता उपस्थापन के द्वारा श्रृंगार आदि रसांतर की धारा प्रतिहत की गई है । इसी कारण से अंगीया नाट अन्य :नाटकों: परिपूर्णांग नाटकों की तुलना में विकलांग हो गए हैं यद्यपि उसके प्रति कवि ने मनोयोग किया नहीं है । यहां पर पात्र पात्री की कथा, व अभिनय से सूत्रधार की कथा ने अधिक स्थान घेरा है, अत: नाटक की अपेक्षा काव्यांश ही अधिक है और साथ साथ नाटक की महिमा कम हुई है । तथापि शांत रस की रक्षा के कारण ही, यह नाटक का दोष न हो भूषण हुआ है । यदि यहां पर शांत रस के अतिरिक्त यदि अन्य रस को मुख्य रूप ग्रहण किया जाय, तब तो इस नाटक की विकलांगता दोष पुष्ट होगा ।

प्राचीन आलंकारिकों में किसी किसी ने शांत रस को अभिनय के लिये अयोग्य समझा। उन लोगों के अनुसार इसी कारण से महामुनि भरत ने शांत रस को नाट्य रस रुप में परिगणित नहीं किया ।

नाटक के द्वारा शम भाव की पुष्टि नहीं होती, उसका अनुभव अर्थात जो शरीर में अभिव्यक्त हो हृदय में शम भाव का उद्रेक समझा सके, तो निर्वेद अव्यभिचारी भावोदय का चिन्ह यहां नहीं है । अत: यह अभिनय नहीं। इसी यह रस विकलांग है, किन्तु विकलांग होने पर भी रस सौंदर्य की दृष्टि से श्रेष्ठ है । रति, शोक आदि अन्यान्य भाव इत्यादि कला के सत्योग से ऐकांतिक सुखस्वरुप और प्राकृत लौकिक रति शोक आदि भाव की अपेक्षा अधिक भाव से व्यंजित होती है । किन्तु भगवद् भक्ति रुप राम भाव स्वरूप में परम आनंदरुप है । अत: कला के सत्योग से व्यंजित होने पर वहां प्रकृत रूप से कोई अतिशय व रुपांतर नहीं होता है अर्थात प्रकृत शांतमति भगवद् भक्त के भक्ति रूप चित्त वृत्ति में जो परिमित उज्ज्वल मधुर और अखंड स्वरूप है, उसकी तुलना में काव्य और नाटक के द्वारा उपस्थित विभाव आदि के सत्योग से उदित सामाजिक के भगवद् रति की उज्ज्वलता और मधुरता अधिक नहीं है ।

शांत रस : इस प्रकार प्राचीन असम के वैष्णव साहित्य में सुदीर्घ कवि भक्ति और विष्णु वैष्णव के महात्म्य प्रकाश द्वारा साहित्य की अन्यान्य रस की धारा प्रतिरुद्ध कर उसके ऊपर शांत रस की धारा अधिक वेग से प्रवाहित की गई है । इन वर्णन के द्वारा श्रृंगार आदि अन्य रसों की महिमा कम कर शांत रस को अधिक महिमान्वित किया गया है । श्रृंगार आदि रस जिससे अधिक परिपुष्ट हों, उनके साहित्य का प्रधानीभूत शांत रस का गतिरोध कर न सके, उसी लिये उसी प्रकार अन्य रसों की पुष्टि में बाधा दी गई है उनके भागवत धर्म का आदर्श व नीति आदि जिस प्रकार शांत रस के मध्य में छुपा कर रखने की व्यवस्था की गई है । वहां की वर्णित कथावस्तु शांत रस की पोषक होने के कारण ही उसके द्वारा शांत रस का प्रवाह प्रतिहत नहीं हुआ

प्राकृत सांसारिक मानव में शांत रसोचित वासना की शक्ति कम होती है, श्रृंगार आदि अन्य रस की उपयोगी वासना स्वभाव से प्रबलतर है । अत: उन लोगों की दृष्टि में शांत रस की महिमा अस्पष्ट रहने के कारण उसके मध्य काव्य की कथावस्तु का स्वरूप सम्पूर्ण भाव से नहीं छू जाता, यही श्रृंगार आदि रस की महिमा के साथ साथ हमारा मन और साहित्य की महिमा भी कम होती ज्ञात होती है ।

इस साहित्य में विष्णु वैष्णवों का चरित्र और माहात्म्य वाच्य, वैष्णव धर्म की श्रेष्ठता और उपादेयता, लक्ष्य और शांत रस से व्यंग होने के कारण, यहां कोई परिपूर्णता और रसव्याघात किसी संदेह का अवकाश नहीं है ।

शांत रस :- साहित्य दर्पण में शान्त रस का परिचय देते हुए कहा गया है-- जहां न दुख है न सुख,न चिन्ता है और न द्वेष,जहां न राग है और न कोई इच्छा,इस प्रकार के भाव में जो रस होता है उसको मुनि जन शान्त रस कहते हैं[1]। शांत रस के इस लक्षण पर लोगों को शंका होती है कि जब मनुष्य की उक्त दशा होगी तो उस समय किसी प्रकार के संचारी आदि का होना असंभव होगा फिर शांत रस कैसे उत्पन्न हो सकता है । शांत रस का स्थायी भाव निर्वेद होता है श्री रुपगोस्वामी जी ने 'हरिभक्त रसामृतसिंधु' में कहा है-- निर्वेद जब तत्वज्ञान से उत्पन्न होता है तब वह शांत रस का स्थायी भाव होता है और जब वह इष्ट वियोग और अनिष्ट-प्राप्ति में आता है तब वह व्यभिचारी भाव कहलाता है[2]। संसार की अनित्यता,वासनाओं का त्याग और ईश्वर भक्ति अथवा ज्ञान द्वारा प्राप्त की गई चित्त की स्थिर अवस्था से जिस परमानंद को भक्त अथवा ज्ञानी पाता है वही शांत भाव है और काव्य में व्यक्त होकर काव्य शास्त्र के अनुसार वही शांत रस है । सत्संग,उपदेश,भक्ति अथवा ज्ञान संबंधी शास्त्रों का विचार इस रस के उद्दीपन विभाव हैं । चित्त शांति को बढ़ाने वाले पवित्र विचार और भाव जैसे निर्पेक्षता,निरहंकारिता आदि संचारी हैं और रोमांच प्रकंपादि इसके द्योतक चिन्ह अनुभाव हैं । अष्टछाप काव्य को समष्टि रुप में देखने से ज्ञात होता है कि इस संपूर्ण काव्य के पीछे लौकिक वासनाओं के त्याग और अनंत सुख-प्राप्ति की लालसा छिपी है। वैराग्य,आत्म-प्रबोध, विनय आत्मनिवेदन आदि भावों के व्यक्त करने वाले इन कवियों के पदों में शांत रस की ही धारा प्रवाहित हो रही है[3]। सूरदास और परमानंद दास ने आत्मिक शांति व्यक्त करने वाले पद अधिक संख्या में लिखे हैं[4]।

१- १- न यत्र दुखं न सुखं न चिंता,न द्वेष रागो न चकाचिदिच्छा
रस स शांत: कथितो मुनीन्द्रै: सर्वेषु भावेषु शम प्रधान:।।साहित्य दर्पण

२- निर्वेदो विषये स्थायी तत्वज्ञानोद्भव: स चेत।
इष्टानिष्ट योगाप्ति कृतस्तु व्यभिचार्य सौ ।
भक्ति रसामृत सिंधु प०वि०१ लहरी पृ० ३२५

३- अ०व० सं० - पृ० ६५०

४- सकल तजि भजि मन चरण मुरारि । :सूर:
कहा कमी जाके राम धनी । :सूर:
धनि ए राधिका चरन - : परमानंद- अ०व०पृ० ६५:

षष्ठ अध्याय

:क: शंकरदेव तथा माधवदेव की भाषा का तुलनात्मक भाषा वैज्ञानिक-अध्ययन

:ख: शंकरदेव तथा माधवदेव की भाषा का तुलनात्मक व्याकरणिक-अध्ययन

प्रस्तुत अध्याय में शंकरदेव तथा माधवदेव की भाषा का तुलनात्मक अध्ययन किया गया है - इनके बरगीतों और नाटकों की भाषा ब्रजबुलि है जिसका संबंध ब्रजभाषा की अपेक्षा तुलसीदास की अवधी से अधिक है। इन कवियों के व्याकरणिक प्रयोग तथा ध्वनि-परिवर्तन के आधार पर यह सिद्ध किया गया है कि शंकरदेव तथा माधव देव के गीतों और नाटकों की भाषा तुलसीदास की भाषा के समान है और अन्य काव्य-ग्रंथों की भाषा अवधी के अधिक निकट है।

ध्वनि परिवर्तन :- शंकरदेव तथा माधवदेव की भाषा में तद्भव तथा अर्द्धतत्सम शब्दों के बीच अनेक स्थलों पर स्वर परिवर्तन हुआ है। यह स्वर परिवर्तन स्थूलत: इस प्रकार का है ----

:१: आ- के स्थान पर अ-कार

आद्य स्वर परिवर्तन- यथा

परान[१]:प्राण: पलाया[२] :पालायन: चंडाल[३]:चांडाल:

२- मध्य:- यथा अवतारि[४] :अवतार: विस्तर[५] :विस्तार:

३- अंत :- उपाम[६] :उपमा: आस[७] :आशा: आस[८] :आशा।

अ-कार आ-कार विपर्यय-यथा ध्वार्णी[९] :ध्वनि: काहिनी[१०] :कहानी: पाय[११] :पद: साफल[१२] :सफल: चांदा[१३] :चंद्र: आंधा[१४] :अंध: कांधे[१५] :कन्धे: हात[१६] :हस्त: हान्य[१७] :हन्य: आगि[१८] :अग्नि: माजे[१९] :मध्ये: आपार[२०] :अपार: तापित[२१] :तप्त:

मध्य अ-कार के स्थान पर आ-कार यथा:- आलास[२२] :आलस्य: कांधे[२३] :स्कंधे: दांत[२४] :दंत: अनुपाम[२५] :अनुपम: आटास[२६] :अट्टहास:

इ-कार के स्थान पर अ-कार यथा :-

१- बरगीत पृष्ठ ४७
२- वही १००
३- माधव वाक्यामृत- २
४- अंकीया नाट पृ० १७
५- वही १३०
६- बरगीत १०८
७- वही १०६
८- अं०ना० १२५
९- मा०वा०- ७
१०- वही १२६
११- बरगीत १०
१२- वही १२
१३- वही २०
१४- वही २०
१५- बरगीत २४
१६- वही ३०
१७- वही ३३
१८- वही ३४
१९- मा०व० १८
२०- वही २७
२१- वही २६
२२- वही ४३
२३- वही ११३
२४- अं०ना० १६८
२५- मा०वा० १२६
२६- वही १६८

विप्रकर्ष :-

युक्त व्यंजन प्राय: विप्रकृष्ट व विशिष्ट होता है एवं `अ`, `इ`, एवं उ विप्रकर्ष स्वरूप में व्यवहृत होता है।

`अ`- सबद[1] :शब्द: विरकति[2] :विरक्ति: गरब[3] :गर्व: यतन[4] :यत्न: वरण[5] :वर्ण: पराण[6] :प्राण: कांसी[7]:कांस्य: समापति[8] :समाप्ति: बरत[9] :व्रत:

इ- तीरिथ[10] :तीर्थ: शिघिर[11] :शीघ्र: परमाणि[12] :प्रमाण: धियान[13] :ध्यान: चिनान[14]:स्नान: पीरति[15] :प्रीति: मुगुधि[16] :मुग्ध: दुरबलि[17] :दुर्बल: बिघिनि[18] :विघ्न:

`उ` मुकुति[19] :मुक्ति: मुरुति[20] :मूर्ति: मुगुध[21] :मुग्ध: मुरुख[22] :मूर्ख: लुबुध[23] :लुब्ध:

व्यतीत स्पर्श के पूर्व रहने पर `श`, `ष`, किंवा स प्राय: लुप्त होता है यथा

थिर[24] :स्थिर: हात[25] :हस्त: अथिर[26] :अस्थिर: थूल[27] :स्थूल: तम्भित[28] :स्तंभित: थाने[29] :स्थाने: आठ[30] :अष्ट:

१- मा०व० पृ० ६
२- वही ६
३- शं०व- पृ० १३
४- मा०व० ३६
५- वही ८०
६- वही १०७
७- वही ११३
८- मा०वा० १८६
९- शं०व० ६
१०- वही ६
११- मा०व० १४
१२- वही २९
१३- वही ४०
१४- वही ६०
१५- वही ६६
१६- शं०ना० ८२
१७- वही ६०
१८- वही १५०
१९- शं०व० १
२० वही २
२१ वही ५
२२ वही १४
२३- मा०व० २५
२४- व्रशं०व० १६
२५- वही १७
२६- वही ३०
२७- मा०व० २५
२८- शं०ना- ६७
२९- वही ६०
३०- वही १६५

`ख`घ,थ और `भ`पद के मध्य स्थिति होने पर अनेक समय इनके स्थान पर ह हो जाता है । यथा ---

पहु[१] :प्रभु: लोह[२] :लोभ: लिहिल[३] :लिखिल: सोहे[४] :शोभे: मुहे[५] :मुखे: विहि[६] :विधि:

आदि में न स्थित होने पर स-कार के स्थान पर `ह`हो जाता है :- यथा

बांही[७] :वंशी:

स्वरों के मध्य स्थित स्पर्श वर्ण का क्वचित लोप और उसके स्थान पर `य`श्रुति का आगमन होता है यथा :-

वयन[८] :वदन: रयनी[९] :रजनी: सयल[१०]:सकल: कुसुय[११] :कुसुम: पाय[१२]:पद: राया[१३] :राजा:

`र्`का रेफ प्राय: लुप्त हो जाता है यथा :-

चांद[१४] :चंद्र: पहु[१५] :प्रभु: पेम[१६] :प्रेम: पिय[१७] :प्रिय: पसारि[१८] :प्रसारि:

छंद के अनुरोध पर कहीं कहीं संयुक्त न :कभी ह एवं :म: लुप्त हो पूर्ववर्ती स्वर वर्ण को अनुनासिक कर देता है यथा :-

आंबोल[१९] :आम्बोल: बांध[२०] :बान्ध: चंचल[२१] :चन्चल: पांति[२२] :पंक्ति: चांद[२३] :चन्द्र:

मैथिल भाषा में `ष`कार का उच्चारण `ख`के समान था । ब्रजबुलि में प्रायः `का`कार के स्थान पर ख देखने को मिलता है । असमिया में स और श का उच्चारण `ह`के समान होता है। यथा :-

शेखर[२४] :शेषर: बांही[२५] :वंशी: कुसल[२६] :कुशल: सिरिख[२७] :शिरिष:

१- मा०वा० १३८
२- शं०व० गी० ८
३- वही १५
४- वही २६
५- वही ३२
६- मा०व०गी० २९
७- शं०व०गी० २६
८- मा०व०गी० १४६
९- शं०व०गी० २६
१०- मा०व०गी २
११-मा०व०गी २८
१२- वही ७९
१३- शं०व०गी० १०
१४- मा०व०गी०६९
१५- शं०व०गी० ३
१६- वही ८
१७- वही २०
१८- वही ३१
१९- मा०व०गी-१३३
२०- वही ५९
२१- मा०व०गी-१००
२२- वही १०८
२३- मा०वा० १६६
२४- शं०व०गी० ३
२५- वही ४
२६- मा०व०गी० १४६
२७- शं०ना०- १६३

'त्स' का च्छ अथवा च छ रूप में ग्रहण कई स्थानों पर स्थायी रूप से दिखाई पड़ता है।

साँचा[1] :सत्य: उछय[2] :उत्सव:

ल का र ध्वनि में रूपांतर :- यथा

उज्ज्वर[3] :उज्ज्वल: चंचर[4] :चंचल:

क का ह अथवा य ध्वनि में रूपांतर यथा :-

लोह[5] :लोक: सयल[6]: सकल:

य ध्वनि व में और व ध्वनि में ब और य में रूपांतरित हुई है। जैसे

जीयन[7] :जीवन: बाव[8] :वायु: क्रियाबल[9] :क्रियावल: बकिआरा[10] :बकियारा: भाये[11] :भावे:

पयन[12] :पवन: निर्याण[13] :निर्वाण:

१- अं०ना० १५

२- मा०व०गी- ५

३- वही ४४

४- शं०व०गी- ३

५- मा०व०गी- १०८

६- शं०व०गी- २६

७- मा०व०गी० २८

८- अं०ना० ८

९- मा०व०गी० ४ ११०

१०- अं०ना- ५

११- वही ७

१२- वही ६

१३- वही ५८

१३- मा०वा० ४

वचन

शंकरदेव की भाषा में समूहवाचक शब्द जैसे `गण` समूह,चय,सब ,मेला,मेलेक आदि का योग कर बहुवचन रूप बनाया गया है। प्राचीन असमिया में `मनें` प्रत्यय का भी योग विशेष अर्थ में किया गया है। `मनें` का संबंध प्रा०भा०मा० `मानव` से है।[1] संत- हंत प्रत्यय का योग संख्या वाचक विशेषण में किया गया है[2]। तुलसीदास ने बहुवचन रूप बनाने के लिए `न`,न्ह,`नि` न्हि,प्रत्यय का योग करते हैं[3]। सूर की भाषा में ने अकरांत स्त्री लिंग शब्द का अंत्य स्वर ए या एँ,से परिवर्तित किया -- अकरांत तथा इकारांत शब्दों में नि जोड़ कर,कुछ अकरांत शब्दों में न जोड़ कर---- आ को ए से परिवर्तित कर बहु वचन रूप बनाये हैं। कुछ एक वचन शब्दों के साथ अनी,अवलि या अवली,गन :गण: जन,जाति,निकर, पुंज वृंद,संकुल,समाज,समूह आदि जोड़कर सूरदास ने बहुवचन रूप बनाए हैं[4]।

:क: सुन सब लोक वचनक मोई सब तेजि भव तरि पाव[5]।

:ख: पेखल गैया सब द्विजक कुमारि[6]।

:ग: हरिको गोपिनि पेखये न पाइ[7]।

:घ: खेले संगे रंगे गोपरमणि-मेला[8]।

:ङ: नखचय चान्दक पान्ति,पदतल अलक्त भान्ति[9]।

:च:

:ज:

:झ: नैननि सौं झगरौ करिहौं री।[12]

:ट: अमर मुनिगन

:ठ: तापसी लोग[13]।

१- डा० ए० एफ०डी० २७७
२- वही पृ० २७८
३- तु०भा० पृ० २३
४- सू०भा० १५१- १५३
५- शं०ना० पृ ३०
६- वही ४१
७- वही ५६
८- वही ६८
९- वही ११६
१०-
११-
१२- सू०भा० १५१
१३- वही १५३

:ड: परम कृपाल जो नृपाल लोकपालन पै।

:ढ: आए द्विज सहित नृप द्वारा[१]।

:त: भवननि पर सोभा अति पावन।

:थ: भुजनि पर जननी वारि फेरि डारी[२]।

:द: चलत राम सब पुर नरनारी। पुलक पूरि तन भए सुखारी[३]।

:ध: सब संपदा चहै सिवद्रोही[४]।

कारक रचना

असमिया और बंगाली में कारक संबंध दो प्रकार से प्रकट किया जाता है---
:१: स्वतंत्र परसर्गों द्वारा :२: संयोगात्मक कारक विभक्तियों द्वारा जो अब भी करण और अधिकरण के कारक में प्रयुक्त होती हैं केवल संबंध :२: और अधिकरण के तत्व परसर्ग मूल कारक रूप से पृथक नहीं किए जा सकते हैं।[1] संज्ञा जब सकर्मक क्रिया की कर्ता कारक होती है, इसमें 'ए' परसर्ग का व्यवहार होता है। तुलसीदास जी ने अपने पूर्ववर्ती अवधी कवि जायसी की भाँति अपने ग्रंथों में परसर्गों का प्रयोग अल्प मात्रा में किया है। प्राय: या तो उनमें संज्ञाएं अपने मूल रूप में ही प्रयुक्त हो गई हैं, अथवा विभिन्न कारकों में उनका अर्थबोध कराने के लिए उनके साथ विभक्ति-सूचक प्रत्यय लगाए गए हैं। इस संबंध में, डा० बाबूराम सक्सेना की उस गणना का उल्लेख कर देना अनुचित न होगा जिसके अनुसार प्रथम ३०० पंक्तियों के अंतर्गत १८४ संज्ञाओं का प्रयोग हुआ है जिनमें आधुनिक बोल चाल की प्रवृत्ति के अनुसार जाने कितने परसर्गों की आवश्यकता पड़ जाती, परन्तु तुलसीदास जी ने उनमें से केवल ४५ संज्ञाओं के साथ परसर्गों का व्यवहार किया है।[2] रूप रचना की दृष्टि से सूर काव्य में प्रयुक्त संज्ञा शब्दों को दो वर्गों में रखा जा सकता है--मूल रूप और विकृत रूप। सभी रूपों का प्रयोग सभी कारकों में समान रूप से सूरदास ने नहीं किया है।[3]

कर्ताकारक :- शंकरदेव की भाषा में विभक्ति सहित और विभक्ति रहित दोनों रूप मिलते हैं। कहीं कहीं संज्ञा शब्द 'ए' का योग हुआ है। आकारांत, और इकारांत संज्ञाओं में यह 'ए, इ' 'हि' हो जाता है।[4] तुलसी की भाषा में अवधी बोली का प्राधान्य होने के कारण यह स्वाभाविक ही था कि 'ने' परसर्ग का उसमें अभाव हो क्योंकि अवधी में उसकी कोई सत्ता नहीं है। संज्ञा के मूल रूप :एक वचन: अथवा विकारी एवं अविकारी बहुवचन रूप

१- ए०एफ०डी० - पृ० २८४.
२- तु०भा०- पृ० ३७
३- सू०भा० पृ० १५५
४- ए०एफ०डी०- २५५

ही कर्ताकारक के अर्थ में व्यवहृत हुए हैं जिनमें किसी विभक्ति सूचक प्रत्यय अथवा परसर्ग का योग नहीं मिलता है। इसके अतिरिक्त कुछ ऐसे भी स्थल मिलते हैं जहां संज्ञाओं के अंतिम अकार के साथ चंद्रबिंदु अथवा अनुस्वार के द्वारा सूचित किए गए अनुनासिक ध्वनि के संयोग से इन रूपों का निर्माण हुआ है।[1] व्रजभाषा की कर्ता कारक विभक्ति "ने" "नैं" का प्रयोग सूर ने कम किया है। विभक्ति की दृष्टि से देखा जाय तो पुलिंग एक वचन विकृत रूप के अंतर्गत लिये गए ताकी माता खाई कारैं में संयुक्त रे को एक प्रकार से विभक्ति रूप ही स्वीकारना होगा, जिससे मूल संज्ञा रूप विकृत हो गया है।[2]

(क) काहुक कुंवर बनमाली लागि मुख।[3]
(ख) गोपी कटाक्ष नाहि बुझत।[4]
(ग) चरल सबहि मिलि हरषि चोर माधव कह गति गोविंद मोर[5]
(घ) काहुक केश केशव बांधे हाथे शंकर कर देखे गोपिनी नाथे।[6]
(ङ) प्रणर कातरे इन्द्र पलाइ, पाशु पाशु हासि माधवे धाइ।[7]
(च) काटल बाण कृष्णो शर मारि।[8]
(छ) पावा परम तत्व जनु जोगी। अमृत लहेउ जनु संतत रोगी।
(ज) तासु दसा देखी सखिन्ह पुलक गात जलु नैन।[9]
(झ) भोजन समय जानि यशुमति ने लीने कुंवर बुलाय।
(ट) तहां ताहि विषहर ने खाई, गिरी धरनि उहिं ठौर।
(ठ) संकरैं गर्व बढ़ायो।[10]

१- तु०मा०- ३८
२- सू०सा० १५७
३- अं०मा० १०८
४- वही ११५
५- वही २२४
६- वही १२४
७- वही १६०
८- वही ६२
९- तु०मा० ३१
१०- सू०सा० १५७

कर्मकारक :- ब्रजबुलि से प्रभावित प्राचीन असमिया में कहु,- कहो परसर्ग का प्रयोग कर्मकारक और संप्रदान कारक दोनों में हुआ है। डा० बाणीकांत काकति का मत है यह परसर्ग पूर्वी हिन्दी कहा`-- `कहु`का विकृत रूप है।[१] तुलसीदास ने इस कारक की रचना में - हि,हिं,क कों,को परसर्ग का व्यवहार किया है। कहं परसर्ग का व्यवहार कर्मकारक रूपों के निर्माण में तुलसी की लगभग सभी रचनाओं के अन्तर्गत बहुलता से किया गया है। `कहँ`ही कहीं कहीं `कहुँ`के रूप में व्यवहृत मिलता है।[२] ब्रजभाषा में कर्मकारक की मुख्य विभक्तियां कुं,कूं,को,कों हैं। सभा के सूरसागर में `कौं`का ही प्रयोग अधिक मिलता है। इसके अतिरिक्त `हि`के योग से भी कर्मकारकीय रूप बनाए गए हैं।[३]

:क: पारिजात केया बलल सय लावे हावे हरिणे बरनारी ।[४]

:ख: कुंचित बास चिकुर चिबुक धरु करु चुंबन बनमाली ।[५]

:ग: कोपे नृप सब कामारि बाहु बान्धब थैब सेवि पाव राहु ।[६]

:घ: ससल केश पाश टूटल हार फोइल कांचुवा कुचक भार ।[७]

:ङ: देखि मुनिक मानि अवनत माथ ।[८]

:च: आलिंगि क्रियाक चाप धरि कोल,करिया आस्वास वचन हरि बोल ।[९]
गोविंद को राधा बोलल वाणी ।[९ए]

:छ: तेहि राजा कहं लघु कहसि नर कर करसि बखान ।

:ज: तुलसिदास तजि आस भास सब ऐसे प्रभु कहं गाउ ।

:झ: काम जारि रति कहुं बर दीन्हा ।

:ट: जब लगि न भजत न राम कहुं सोकधाम तजि काम ।[१०]

१- ए०एफ०डी० २९०
२- तु०मा० ४३
३- सू०मा० १५७
४- अं०ना० १६२
५- वही १६५
६- वही ८५
७- वही पृ० १०८
८- वही पृ० १३६
९- वही पृ० १४४
९-ए अं०ना० २४२
१०- तु०मा० ४३

:ङ: असुर कंस कौं मार्यो ।

:ढ: प्रथम भरत बैठाइ बंधु कौं यह कहि पाइ परे

:ण: त्यौं ये सुकृत धनहिं परिहरै ।

:त: देखौ वा पुरुषहि तुम जोइ ।

:थ: बरुनपास तैं ब्रजपतिहिं छन माहिं छुड़ावै ।[2]

<u>करण कारक</u>:- असमिया में `ए` प्रत्यय का योग करण कारक में किया जाता है । यह संस्कृत `एण` म०भा०आ०-एन, एम, अ० ऐ से विकसित हुआ है ।[3] प्राचीन असमिया में-केर-ए, एरे का व्यवहार अधिक हुआ है ।[4] - हि संस्कृत सर्वनाम के सप्तमी के प्रत्यय स्मिन अथवा पूर्वतर आदि आर्य भाषा के :सप्तमी के: `धि` प्रत्यय से निकला है - हिं संस्कृत तृतीया बहुवचन की विभक्ति - भि और षष्ठी के बहु वचन की भी विभक्ति- `नाम्` इन दोनों के संयोग से उत्पन्न हुई ।[5] -सैं, सौं,- संस्कृत अव्यय `समम्` से आया है ।[6] तुलसी ने शब्दों के साथ अनुनासिक ध्वनि आदि के- योग करके उन्हें करण कारक का रूप दिया है । परसर्गों में `तैं` `सौं` से विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।[7] ब्रजभाषा में इस कारक की विभक्तियों के रूप `तैं` ते, हैं, पर, पै, हुं, सैंती, सो, सौं का प्रयोग होता है । सूरदास ने करण कारकीय रूप में केवल `तैं` सौं का ही का ही प्रयोग मुख्य रूप से किया है ।

अन्य विभक्तियों में से हुं और सैंती के उदाहरण भी कहीं मिल जाते हैं ।[8]

१- सु०भा - ४२

२- सू०भा० १५८

३- ए०एफ०डी - २८६

४- वही २८७

५- डा० एस०के० सेन विविध साहित्य :एस०के० चटर्जी- वर्ना रत्नाकर पृ० ५१, ५२

६- वही खंड ५

७- सु०भा० - ४८

८- सू०भा० - १६०

:क: कठिन कनने हरिषि चेतन कैचे करसि नैराशे[१] ।

:ख: पैचन वनाग्नि वृष्टि जले निर्व्वाण भेल[२] ।

:ग: श्रोहि अपमाने प्राण नाहि य रवोहो मोरे छोड़ल जीवनहु आशा[३] ।

:घ: छेदि वाण गण हरलि चेतन कंचुक हृदय विदारि[४] ।

:ङ : लय लासे चले रंगे संगहि बरनारी[५] ।

:च: हेन शिशुपाल कैरे मद किबो किया[६] ।

:छ: राम कृपा तें पारबति सपनेहुं तव मन माहिं ।

:ज: तुलसी राम कृपालु तें भलो होइ सो होइ।

:झ: एक एक सों मर्दहिं तोरि चलावहिं मुंड ।

:ञ: बामदेव सन काम बस होइ बरतेउ ।

:ट: जिमि कोउ करै गरुड़ सन खेला[७] ।

:ठ: बाघी उदर अन्न सों मरै ।

:ड: कौसिल्या सौं कहति सुमित्रा ।

:ढ: बहुरि सुक सेंती कह्यौ जाइ ।

:ण: मम प्रसाद तें सो वह पावै ।

:त: जिन रघुनाथ हाथ सर दूषण प्रान हरे सरहीं[८] ।

संप्रदान कारक :- शंकरदेव और माधवदेव की भाषा में `ए``क`- `कि`- `के`विभक्ति रूप का योग अधिक हुआ है। इस कारक के रूपों का निर्माण कर्म कारक रूपों के प्रत्यय

१- अं०ना० - १०६

२- वही १०८

३- वही १४३

४- वही १५८

५-वही १५२

६- सं०- र०का०- काव्य पृ०

७- तु० भा०- पृ० ५०

८- सू०भा०- पृ० १६२

`हि` और `हिं` तथा परसर्ग कहं,कहुं से ही हुआ है । केवल `को` ऐसा कर्मकारक परसर्ग है जिसका व्यवहार संप्रदान कारक रूपों के लिए तुलसी ने अत्यन्त अल्प मात्रा में किया है[1]। ब्रजभाषा में संप्रदान कारक की हूं,कूं,कौं,को,कौं,को के विभक्तियां लिए कर्मकारक में भी रहती हैं । सूरदास ने संप्रदानकारक में कौं विभक्तियों का ही प्रयोग विशेष रूप से किया है[2]।

:क: ए सखी चलहु बहुरि गौरी गोकुले गोवारी[3]।

:ख: स्वामीक करौ पावे परणाम कहतु शंकरगति मति मेरि राम[4]।

:ग: सत्यभामाक बहुल गालि पारल[5]।

:घ: शुनि रसियासब राचीक प्रणाम कहल[6]।

:ङ : हे कृष्ण तोहार पद कमले कोटि कोटि परणाम करोहो[7]।

:च: गोपथे नाहि पारि मैरि भूषण देलह मावकु ठाइ[8]।

:छ: नर तनु भववारिधि कहुं बेरो ।

:ज: रहि सरीर बसि सखि ना सठ कहुं कहिन जाइ जो निधि फवि आई[9]।

:झ: भारत दीन अनाथन को रघुनाथ करैं निज हाथ की छाइ[10]।

:ञ: मानहुं मदन दुंदुभी दीन्हीं। मनसा विस्व विजय कहं कीन्हीं[11]।

:ट: कामधेनु पुनि सप्त रिषि कौं दई ।

:ठ: एक अंस वृष्णनि कौं दीन्हौं ।

:ड: तन्य जामातनि कौं समदत नीर भरि आए[12]।

१- तु० मा- पृ० ४४
२- सू० मा०- १६२
३- शं०ना०- १०५
४- शं०ना०- १४६
५- वही० १५५
६- वही० १५५
७- वही० २०७
८- वही० २४२
९- तु०मा० ४५
१०- तु०मा० ४६
११- वही० ४४
१२- सू०मा०- १६२

अपादान कारक :- शंकरदेव और माधवदेव ने केवल हन्ते हसन्ते: परसर्ग का प्रयोग इस कारक की रूप रचना के लिए किया है[1]। कुछ विभक्ति हीन उदाहरण भी मिलते हैं। प्राय: इस कारक के रूप करण कारक रूपों के साथ साम्य रखते हैं और केवल अर्थ वैभिन्य के सहारे ही दोनों का अंतर स्पष्ट होता है। 'ते' तें, तथा सों इस कारक के प्रमुख परसर्गों के रूप में व्यवहृत हुए हैं। संस्कृत की पंचमी विभक्ति के कुछ रूप कहीं कहीं रामचरित मानस में विशेष रूप से उपलब्ध हो जाते हैं[2]। व्रज भाषा में अपादान कारक की विभक्ति तें ते या तैं है। सभा के सूरसागर में तैं का प्रयोग प्राय: सर्वत्र किया गया है। साथ ही कुछ विभक्ति रहित अपादान कारकीय रूप भी सूर के काव्य में मिल जाते हैं[3]।

:क: बुके हन्ते कृष्ण नमावल[4]।

:ख: रास मंडल हन्ते एक गोपीक धरिकहु कोले तुलि वेगे लवर देल[5]।

:ग: गोपी प्रेम सुधारस आकुल कमल नयने भुरे वारि[6]।

:घ: सोहि वृक्ष हन्ते दुइ देवता दिव्य रूप धरिये वाजहुया कहु कृष्ण देखल[7]।

:ङ : मानिनी माइ नयन-पंकज भरे वारि[8]।

:च: श्री कृष्ण भार्या सहिते हरिखे पुरंदरत अनुमति पाइ[9]।

:छ: नारदक बरदाने उहि वृक्ष जनमते हामाक स्मरण कय थिक[10]।

१- ए०एफ०डी० २६६

२- तु०भा०- ५१

३- सू०भा०- १६२

४- अं०ना०- ११५

५- वही १२४

६- वही ११६

७- वही २०६

८- वही १५९

९- वही १६२

१०- वही २०६

:ञ: पुर तैं निकसी रघुबीर वधू धरि धीर दये मग में डग द्वै ।

:झ: गए कर तैं घर तैं आंगन तैं ब्रजहू तैं ब्रजनाथ ।

:ञ: हृष्ट पुष्ट तन भए सुहाए। मानहु अबहि भवन ते आए ।[1]

:ट: करुना करत सूर कौसलपति नैननि नीर भर्यो ।[2]

:ठ: मैं गोवर्धन तैं आयौं ।

:ड: देस देस तैं टीकौ आयौ ।

:ढ: जब तुम निकसि उदर तैं आवहु ।

:ण: ता बन ते मृग जाहिं पराइ ।[3]

संबंध कारक :- प्राचीन असमिया में संबंध कारकीय परसर्ग-कैर,- एर- कार- कं का व्यवहार हुआ है ।[4] शंकरदेव तथा माधवदेव ने भी, 'क'- कौ'- 'कैरि'-'आर'-, 'र' क्य- 'कहो' प्रत्यय का प्रयोग ... संबंध कारकीय रूप के लिए किया है । इस कारक के रूपों का निर्माण तुलसी की शब्दावली में जिन प्रमुख परसर्गों के सहारे हुआ है उन में क, की, के, कैं, कै, क्ह, कौ कर, कैर, कैरा केरि, केरी, केरे तथा केरो उल्लेखनीय हैं ।[5] इसकी मुख्य विभक्ति 'कौ' हैं । इनके अतिरिक्त अवधी की संबंध कारकीय विभक्ति 'कैर' 'कैरी' 'कैरे', कैरें 'कैरों' रूपों का प्रयोग भी सूरदास ने किया है । इन विभक्ति रूपों से रहित प्रयोग भी सूर काव्य में बराबर मिलते हैं ।[6]

१- तु०भा०- ५१

२- सू० भा०- १६२

३- सू०भा- १६३

४- ए०एफ० डी- २८८

५- तु०भा०- ५३

६- सू०भा०- १६३

:क: पारा कहो लोक मानत हरि साजी[1]।

:ख: प्रियाकेरि काहिनी शुनिए मुरारि[2]।

:ग: हेरब आवर हरि को नाहि चरण[3]।

:घ: हरि कर धरल कामिनी कंठ मेलि केलि करतहि याइ[4]।

:ङ : मोहन वंशीक सान शुनिकहु जीका धरण न्याय[5]।

:च: गोपिनी संगे रंगे गोविंदे करत केलि[6]।

:छ: मोहन बंशीर साने निशि विपिन आनि केवे तेजलि मथाइ[7]।

:ज: आवे गरुड़केतु कय परवेश,मदनक लाज हेरि रूप लेश[8]।

:झ: अरिहुक अनभल कीन्ह न रामा[9]।

:ञ: उमासंत कह इहइ बड़ाई। मंद करत जो करइ भलाई।

:ट: बंदउ नाम राम रघुवर को। हेतु कृसानु भानु हिमकर को[10]।

:ठ: काई कुमति केकई केरी।

:ड: एहि विधि जनम करम हरि केरे।

:ढ: सिय कर सोचु जनक पछितावा। रानिन्ह कर दारुन दुख दावा[11]

:ण: बान रघुपति के।

:त: सुधि मोहिनी की[12]।

:थ: विथा विरहिनी केरी।

:द: अनुरागनि हरि केरैं

:ध: सुत बहिर केरे[13]।

१- अं०ना०- २२६
२- वही ५२
३- वही ८०
४- वही ६९
५- वही १०७
६- वही १०८
७- वही ११८
८- वही १३३
९- वही तु०मा० ५३
१०- वही ५४
११- वही ५५
१२- सू०मा० १६५
१३- वही १६६

अधिकरण : शंकरदेव तथा माधवदेव ने - 'ए', 'हि', 'मह' व 'माज' परसर्गों के सहारे अधिकरण कारकीय रूप की रचना की है । विभक्ति हीन रूप भी इस कारक के मिलते हैं । इस कारक के रूपों के निर्माण में तुलसी ने प्राय: में, मैं, मो महँ, महुं, मांझ, माहिं, माहीं, मांझ, मझारी, पर पहं, पहिं पाहीं आदि को परसर्ग के रूप में व्यवहृत किया है । इन परसर्गयुक्त रूपों के अतिरिक्त विभक्ति सूचक प्रत्यय हि के योग से बने हुए रूप भी उपलब्ध होते हैं[१] । इसकी मुख्य विभक्तियां और उनके अन्य रूपांतर पर, पै, पाहिं, पाहीं, मंझार, मंझारि, मंझारे, मांझ, महं, महुं, महियां, माहं, माहि, माहीं माहें, में, मैं, मो, मौं आदि हैं । साथ साथ इनसे रहित अधिकरण कारकीय प्रयोग सूर काव्य में मिलते हैं[२] ।

:अ: हातक तनू गोपिनी मुहे माखि[३] ।

:ख: घरहिं घरहि सब फिरत चकोवा ऐसन बात जनाइ[४] ।

:ग: विपक्ष पयोनिधि परलो मुरारु[५] ।

:घ: पैवे हेम मणि माझे माझे मणि मरकत परकाशे[६] ।

:ङ : हरि काहु कर पंकज जल माझे[७] ।

:च: मद गज यैवन जल मह खेलत तरुणी कणी सब संगे[८] ।

:छ: कबहुं दिवस महं निबिड़ तम कबहुंक प्रगट पतंग ।

:ज: केहि गिनती महं गिनती जस बन घास[९] ।

:झ: कुंभकरन मन दीख बिचारी। हति छन माझ निसाचर धारी ।

:ञ: तन महुं प्रबिसि निसरि सर जाहीं[१०] ।

:ट: तदपि मनाग मनहिं नहिं पीरा[११] ।

:ठ: कलियाँ छिदि छिदि जात करेजें[१२] ।

:ड: कमल भरे जल माझ[१३] ।

:ढ: नैननि माहं समाऊं[१४] ।

:ण: ब्रजहिं बसे आपुहिं बिसरायो[१५] ।

१- तु०मा० ५६
२- सू०मा० १६६
३- कं०ना०- २२६
४- वही २४९
५- वही ७२
६- वही १२३
७- वही १२४
८- वही १२६
९- तु०मा० ५७
१०- वही ५८
११- तु०मा० ५९
१२- सू०मा०- १६७
१३- वही १६८
१४- वही १६९
१५- वही १७०

सर्वनाम

असमिया में कर्ताकारक के अतिरिक्त,सर्वनाम में संज्ञा की भांति प्रत्यय तथा परसर्ग का प्रयोग होता है किन्तु संज्ञा के विपरीत इसके निश्चित विकारी रूप अथवा सामान्य रूप हैं जिनमें प्रत्यय तथा परसर्गों का प्रयोग होता है[1]। तुलसी की भाषा में उपलब्ध सर्वनाम रूपों के विश्लेषण के पूर्व हिन्दी में सर्वनाम रूपों के विश्लेषण की जटिलता के विषय में संकेत कर देना आवश्यक जान पड़ता है। इस संबंध में निम्नलिखित बातें प्रमुख रूप से ध्यान देने योग्य हैं।

१- बहुत से प्राचीन विभक्ति सूचक,जिनका प्रयोग संज्ञाओं के साथ अब कहीं न मिलता है,सर्वनामों में प्राय: नियमित रूप से प्रयुक्त होते हैं।

२- कतिपय राजस्थानी प्रयोगों के अतिरिक्त अन्य बोलियों की शब्दावली में लिंगभेद सर्वनामों से प्राय: विलुप्त हो गया है।

३- अन्य पुरुषवाचक सर्वनाम का पृथक अस्तित्व स्पष्ट नहीं रह गया है। इसका बोध भी प्राय: संबंधवाचक `जो`की तौल में प्रयुक्त होने वाले नित्य संबंधी सर्वनाम `सो`तथा दूरवर्ती निश्चय वाचक सर्वनाम `वह`के रूपों से होने लगा है[2]। व्रजभाषा में प्रयुक्त होने वाले मूल सर्वनामों की संख्या बारह है- मैं,हौं,तू,आप वह,सो,जो कोई,कुछ,कौन और क्या। पंडित कामता प्रसाद गुरु के अनुसार इनके छ: भेद हैं परन्तु डा० धीरेन्द्र वर्मा ने इनके अतिरिक्त दो और भेद माने हैं - १- नित्यसंबंधी- सो,आदरवाचक- आप[3]।

१- ए०एफ०डी० २६३

२- तु०भा०- ६३

३- ब्र०भा०- १७५

उत्तम पुरुष के कारकीय प्रयोग

१- कर्ताकारक : इस कारक में "हामु", हामि, हामो, हाम, मोरे, मयिं, मेरि, आमि, के प्रयोग शंकरदेव तथा माधवदेव ने किए हैं । कर्ता कारक के अन्तर्गत मूल रूपों का ही प्रयोग हुआ है एक वचन में "मैं" तथा है "हौं" का और बहुवचन में "हम" का । कहीं कहीं "हम" एक वचन में प्रयुक्त हुआ है[१]। सूरदास ने इस कारक में "मैं", हौं और "हम" के एकवचन प्रयोग मूल रूप में ही किया है[२]।

:क: हामु एक विंशति बार भूमि भ्रमिये सब दौक्षियर मुंड मारलो[३]।

:ख: पावल कत पुण्ये हामि[४]।

:ग: उहि दुष्ट द्विजक हामो दंड करबो[५]।

:घ: कृष्ण बिने हाम यब प्राण राखब तब हामार जीवन धिक धिक[६]।

:ङ : उहि अपमाने प्राण नाहि धरबोहो मोरे छोड़ल जीवनकु आशा[७]।

:च: तव पावे अतये साधि मत्रिं पापी अपराधी[८]।

:छ: आंचल पातिया मागो आमि स्वामी दान[९]।

:ज: राजकुमारि बिनय हम करही।

:झ: अब डर राखेउ जो हम कहेउ[१०]।

:फ: नाथ न मैं समुझे मुनि बैना[११]।

:ट: तुव सुत को पढ़ाइ हम हारे।

:ठ: मैं भक्त बछल हौं[१२]।

१- तु०मा०- ६४
२- सू०मा०- १७६
३- अं०ना०- ४६
४- वही ५०
५- वही ५२
६- वही ७०
७- वही १६
८- वही १५
९- तु०मा०- ६५
१०- तु० मा०- ६४
११- सू०मा० १७७

२- कर्मकारक : शंकरदेव तथा माधवदेव ने इस कारक में `हामाक`, `मोक`- `मने` `मोहि` हामाके, मोहे, मेरि, मोइ का प्रयोग किया है। इसके अंतर्गत एक वचन में सामान्यत: `मोहि` इसी के अनुनासिक रूप `मोहिं` तथा दीर्घस्वरांत रूप `मोहिं` का और बहुवचन में `हमहि` तथा हमहीं रूपों का प्रयोग मिलता है। इन विकारी रूपों के अतिरिक्त परसर्ग युक्त रूप भी यत्र तत्र प्रयुक्त हुए हैं जिनमें `मोकहँ`, `मोको`, हमको इत्यादि उल्लेखनीय हैं[1]। उत्तम पुरुष एकवचन सर्वनामों के मूल रूप रुपों- मैं, और हौं- का प्रयोग सूरदास ने कहीं कहीं पर कर्मकारक में किया है। सूरसागर में कर्मकारकीय विभक्तियाँ कौं और हिं का प्रयोग बहुत हुआ है[2]।

:क: माधि माधव अब कमलि मेरि नैराश[3]।

:ख: बंकिम नयने हेरहु हसि मोइ[4]।

:ग: गोपी तेजि हामाक आनल[5]।

:घ: सतिनीर सोज देखि हृदय नयहे रे अधिक मिलल दुख मोर[6]।

:ङ : भक्तवत्सल मोक जानि[7]।

:च: यब मोहि वाक्ये नाहि पतिआवा, कह्लो सत्य सत्य सुन जाया[8]।

:छ: नाहि उहि दुख मोहि जीव यव याइ[9]।

:ज: `जाहि बिवाहहु सैलजहि यह मोहि मांगे देहु।

:झ: सुंदर मुख मोहिं देखाउ इच्छा अति मोरे।

:ञ: मोको विधुबदन बिलोकन दीजै[10]।

:ट: मैं तुम पै ब्रजनाथ पठायो। आतम ज्ञान सिखावन आयो।

१- तु०मा० ८५

२- तु०मा- १७७-१७८

३- अं०ना०- ७८

४- वही १११

५- वही ११५

६- वही ११६

७- वही १२९

८- वही १४४

९- वही १८

१०- तु०मा०- ६६

:ठ: केहि कारन हमकौं भरमावत ।

:ड: तुम पावहु मोहिं कहां तरन कौं ।

:ढ: तुम मोकौं काहे बिसरायो ।[1]

३- करण कारक: शंकरदेव तथा माधवदेव ने केवल -त- तो प्रत्यय का प्रयोग इस कारक में किया है । करण कारक के अंतर्गत प्रमुख रूप से `मों,मोहि सन,मो पहिं, मो पाहीं,मोहि पाहीं,मोपै,हमसो,और हमसन उल्लेखनीय हैं ।[2] करणकारकीय विभक्तियों में पांच कौं,तें,पै,सौं और हिं का प्रयोग सूरदास ने अधिकता से किया है ।[3]

:क: हामात रोषे बागर गावे लागे माटि ।[4]

:ख: हामात कि बात पूछह ।[5]

:ग: हे स्वामी हामोतो पावे हान्छि पाये नाहि ।[6]

:घ: मोहि सन करहिं बिबिध बिधि क्रीड़ा[7]

:ङ : मुख छबि कहि न जाइ मोहि पाहीं ।

:च: हमतें चूक कहा परी तिय गर्ब गहीली ।

:छ: कहे नंद,हमतें,कछु सेवा न भई ।[8]

:ज: तुम सब कियौ सहाइ भयो तब कारज मोते ।[9]

४- संप्रदान कारक : शंकरदेव ने `हामाकु`,`हामाक`,`मोहिं` आदि प्रमुख मूल रूपों का प्रयोग इस कारक में किया है । संप्रदान कारक के रूपों के निर्माण में उत्तमपुरुषवाचक सर्वनाम के अंतर्गत एक वचन में मो अथवा मोहि के साथ यथा स्थान कौ,कहुं,लगि,लागि,निति आदि परसर्गों का व्यवहार हुआ है । बहुवचन में हमहिं,हमकहं,हमकहुं रूप मिलते हैं ।[10] पुरुषवाचक सर्वनामों के संप्रदान कारकीय

१- सू०भा० १७८

२- सू०भा० ६७

३- सू०भा० १७६

४- अं०ना० १६०

५- वही ७९

६- वही १४६

७- सू०भा०- ६८

८- सू०भा०- १७६

९- वही १८०

१०- सू० भा० ६७

रूपों की संख्या अधिक नहीं है और उनके जो रूप इस कारक में प्रयुक्त हुए हैं, वे करणकारकीय रूपों से बहुत कुछ मिलते जुलते हैं। विभक्ति रहित रूपों के संप्रदान कारकीय प्रयोग बहुत कम मिलते हैं।[1]

:क: देहु हरि मोहि उचि शिक्षा ।[2]

:ख: से अपराधे बांधव श्रीकृष्ण हामाक छारि कोन मिति गेल ।[3]

:ग: हामाकु तेजल प्राणनाथे ।[4]

:घ: मोहि निति पिता तजेउ भगवाना ।

:ङ : हम कहं दुर्लभ दरस तुम्हारा ।[5]

:च: पांच बान मोहिं संकर दीन्हे ।

:छ: मोहूं कों प्रभु आज्ञा दीजे ।[6]

५- अपादान कारक: शंकरदेव ने इस कारक में कुछ ही रूपों का प्रयोग किया है,

६- संबंध कारक : शंकरदेव तथा माधवदेव ने इस कारक में 'मोर,मेरा मेरि,मेरा मोहि,मोहे,हामाकु,हामाकेरि,रूप का प्रयोग किया है। एक वचन में मो,मोर, मोरा,मोरि,मोरी,मोरे,मोरें,मेरी,मेरे,मेरो,तथा मम :संस्कृत तत्सम रूप: और बहुवचन में :कहीं कहीं एक वचन में भी हमार,हमारा,हमारि,हमारी,हमारे,हमारें हमारो तथा अस्मद :संस्कृत: की षष्ठी विभक्ति का विकृत बहुवचन रूप 'अस्माकं' है।[7] सूर काव्य में इस कारक के मम,मेरी,मेरे मोर,मोरि,मोहि आदि

रूप उपलब्ध हैं।[१]

:क: दूर करु हरि कुमति मोर।[२]

:ख: देहु मेरि सोदर दान।[३]

[illegible]

:घ: मेरा गुरुक धनुभंग क्य तोहो काहे पाव।[४]

:ग: तोहारि प्रथम पतनी परम स्वामी जानि पूरह मोहि आशा।[५]

:ङ : धिक अब जीवन यौवन मोहे अभागिनी करत विलाप।[६]

:च: ऐसन इन्द्रक हामाकु आगे बसामइ।[७]

:छ: धिकरुण वाणी वाण मरम हानि दारल हामाकेरि हृदया।[८]

:ज: जनहि मोर बल निज बल ताही।

:झ: कैत सिख सिख्यो न मानत मूढ़ती असि मोरि।

:ञ: ए सब सखा सुनहु मुनि मेरे।[९]

:ट: जीवन धन मोर।

:ठ: विनती कीजो मोरि।

:ड: क्षमो मोहिं अपराधु।

:ढ: स्वामि मेरो जागि है।[१०]

:च: अपादानकारक : शंकरदेव ने केवल 'मोर', मोरे- मोहे', 'मोहि' रूप का प्रयोग इस कारक में किया है। अधिकरण कारक में प्रयुक्त रूपों के अंतर्गत मो पर, मो पै,

---

१- अं०ना० १६१

२- वही० ६३

३- वही ४६

४- वही १३६

५- वही १४१

६- वही १५७

७- वही १०६

८- तु०भा०- ६६

९- तु०भा०- ७१

१०- तु०भा- १८५

मोहि पाहीं, तथा हम पर उल्लेखनीय हैं कुछ विशिष्ट स्थलों पर `मोरे` जैसा संबंध कारक रूप भी व्यवहृत हुआ है[1]। इस कारक के विभक्ति रहित विकृत प्रयोगों में दो रूप प्रधान हैं- मेरैं और हमारें। एक वचन अप्रधान रूपों में `मोहिं` का प्रयोग अपवाद स्वरूप दिखायी देता है[2]।

:क: तोहारि परम प्रेम पेरिक भकति रहल धार मोहे गोपिनी[3]।

:ख: अब प्राणनाथ माथे मिलाव्य मोहि उहि कुसुम परिजात[4]।

:ग: से खाइ लवनु खानि मोरे कैसे अंग[5]।

:घ: ए तिनि प्रमाद मोर भैल एकबारे[6]।

:ङ : प्रीति प्रतीत मोहि पर तोरे।

:च: सपनेहु साचेहुं मोहि पर जौं हरि गोर पसाउ।

:छ: जौं तुम बजहु भर्वों न आन प्रभु यह प्रमान पन मोरे[7]।

:ज: अब मोहिं कृपा कीजिये सोई।

:झ: कृपा करि मोहिं पर।

:फ: कियौ बृहस्पति मो पर कोहु[8]।

मध्यम पुरुष

१- कर्ताकारक : शंकरदेव ने इस कारक में `तोइ`, `तोहो` `तमों` `तुमि`, तुहों, तुहु, तोहोसब, तुहुं रूप का प्रयोग किया है। कर्ताकारक के हं` अंतर्गत एक वचन में तैं, तू

१- अं०ना०- १२०

२- वही १३६

३- वही १६०

४- वही १८६

५- तु०भा० ७२

६- सु०भा०- १५५

७- तु०भा- ७३

८- सु०भा० १६४

कहीं कहीं 'तू' का अनुनासिक रूप तूं मिला है:[1] तुम तथा तुम्ह का और बहुवचन में केवल तुम्ह का व्यवहार हुआ है। इस कारक में कवि ने अधिकांशत: मूल रूपों- तू,तूं,तैं और तुम :एक वचन: के सामान्य और बलात्मक प्रयोग किये हैं।[2]

:क: ओहर गुण शुनि मुनि मुखे माधव साधु कहये तोह मान।[3]

:ख: तुहु जागत गुरु देवक देवा।[4]

:ग: हे कृष्ण तोहो परम पुरुष नारायण।[5]

:घ: ए मोर घरे कौन तुमि बोलय गोवाली।[6]

:ङ : कोटि मदन हेरि लाज,तुहौं,[8] नवतरुणी प्रधान।[7]

:च: तुहुं सुकुमार रूपे गोरु-हीन।

:छ: तोहो सब बिने नाहि बंधु हमारि।[9]

:ज: तैं मम प्रिय लछिमन तैं दूना।

:झ: तू दयालु दीन हौं,तू दानि हौं भिखारी।[10]

:ञ: निज घर की बरात विलोकहु हो तुम परम सयानी।[11]

:ट: ज्ञान तुहिं कर्म तुहिं विस्वकर्मा तुहीं।

:ठ: तुही न लेत जाय।

:ड: तुहूं उठति काहें नाही।

:ढ: तेहूं जो हरि हित तप करिहै।[12]

१- तु०भा- ७७
२- सू०भा० १८४
३- अं०भा० १३६
४- वही १३७
५- वही १३७
६- वही २२२
७- वही ६४
८- वही ३६
९- वही १२९
१०- तु०भा० ७७
११- वही ७८
१२- सू०भा०- १८५

२- कर्मकारक : शंकरदेव ने इस कारक में `तोहो`,तोहाक,तोहोक,तोराक,रूप का प्रयोग किया है । कर्म कारक के अंतर्गत प्रयुक्त होने वाले रूपों में तुमहि,तोहि तोहिं ,तुम्हहिं,तुम्हहि,तोकों और तुम कहुं प्रधान रूप से तथा तू और तुम गौण रूप से उल्लेखनीय हैं[1] । इस कारक में प्रयुक्त मध्यम पुरुष एक वचन सर्वनाम रूप मुख्यत: दो प्रकार के हैं - विभक्ति रहित और विभक्ति सहित । दूसरे प्रकार के प्रयोगों में- हिं और कों दो विभक्तियों का आश्रय कवि ने अधिक लिया है[2] ।

:क: केशव हे बुजलोहे तोहो[3] ।

:ख:तोहाक माथ्थाकि चाहु बुलिते सब दिवस गेल[4] ।

:ग: आर जनमे श्रीराम रुपे तोहोक विवाह करब[5] ।

:घ: सब तोराक मेट न पाइ परम चिंतित हुयाछे[6] ।

:ङ : सुनहि मातु मैं अस सपन सुनाऊं तोहि ।

:च: तुलसिदास प्रभु सरन सबद सुनि अभय करैगे तोहिं ।

:छ: चारि फल त्रिपुरारि तोको दिये कर नृप घरनि[7] ।

:ज: जो तुहिं भजै,तहां मैं जाऊं ।

:झ: पिता जानि तोकों नाहि मारौं ।

:ञ: सप्तम दिन तोहिं तच्छक खाइ[8] ।

१- तु०मा०- ७५

२- सू०मा०- १६५

३- शं०मा०- १४३

४- वही १४६

५- वही २६

६- वही १०५

७- तु०मा०- ७५

८- सू०मा०- १६६

करण कारक : शंकरदेव ने इस कारक में केवल कुछ रूपों का प्रयोग किया है--के, `तोर`तोहात ही प्रधान हैं। करण कारक रूपों के अंतर्गत तोसों, तोहि सों, तुम सों, तुम्ह सौं, तुम तें, तुम्ह तें, तुम्ह सन, तथा तुम्ह पाहीं प्रधान रूप से उल्लेखनीय हैं। तुम्हें और तोह- ये दो रूप ही करण कारक में विभक्ति रहित मिलते हैं। एक वचन विकृत रूप `तो`और एक वचन रूप में प्रयुक्त बहुवचन रूप तुम के साथ कौं, तें, पै, सन और सौं आदि विभक्तियों और प्रत्यय `हि`या इसके दीर्घान्त रूप हीं के संयोग से निर्मित अनेक करणकारकीय रूप सूरसागर में मिलते हैं।[1] [2]

:क: करल गरब नाथ तोह हामु पापिनी अंधा ।[3]

:ख: तब तोहात बद्ध किये हामो प्राण छाड़बा ।[4]

:ग: श्री कृष्ण तोहात पारिजात सोजल ।[5]

:घ: तोसों हौं फिरि फिरि हित सत्य वचन कहत ।

:ङ : तुम तें कहा न होय हा हा सो बुझैये मोहि
हौं ही रहौं मौन ह्वै बयो सो जानि लुनिये ।[6]

:च: तोतें कछु ह्वै है मैं जानत ।

:छ: कहत न डरती तोतें ।

:ज: अरी मधुप, बाते ये ऐसी , क्यों कहि आवति तोह ।[7]

४- संप्रदान कारक : शंकरदेव तथा माधवदेव ने इस कारक में `तुहि`, तोहोक, तोक` रूप का प्रयोग किया है। संप्रदान कारक रूपों का निर्माण प्राय: कर्म कारक रूपों की पद्धति पर हुआ है, इनमें `तोहि`, तोहीं, तुम्हहिं, तोको, तुम कहं, तुम्ह कहुं का उल्लेख किया जा सकता है।[8] तुम एक वचन और तो के साथ कौं और

१- सू०सा०- ७६
२- सू०सा०- १६७
३- अं०ना०-११६
४- वही ७५
५- वही १५३
६- सू०सा० ७६
७- सू०सा० १६७
८- सू०सा० ७६

हिं या हीं के संयोग से सूरदास ने जो संप्रदान कारकीय रूप बनाए हैं उनमें चार-तुमकौं, तुमहिं, तोकौं और तोहि प्रमुख हैं।[1]

:क: से पापी तोहाक श्रीकृष्णात विवाह दिते निश्चय ल।[2]

:ख: तोक एक शत पारिजात देवब।[3]

:ग: हे हे प्राणप्रिये शुन बात देलहो नाहि तुहि पारिजात।[4]

:घ: तुलसी तोहि बिसेषि बूझिये एक प्रतीत प्रीति एकै बल।

:ङ : तोकौ मोसे अति सुगम गुसाई।[5]

:च: एक रात तोकौं सुख देहौं।[6]

:छ: मैं वर देऊँ तोहिं सो लेहि।[7]

५- अपादान कारक :

६- संबंध कारक : शंकरदेव माधवदेव ने इस कारक में अनेक रूपों का व्यवहार किया है -- तेरि, तोहाक, तेरा, तव, तसु, तोह, तुहु, तोहारा, तोहि, तुया, तोयि, तोहार, तोहारि। संबंध कारक के अंतर्गत बहुत अधिक संख्या में रूपों का मिलना स्वाभाविक ही है, इनमें प्रमुख रूप हैं-- तुम, तुन तोर, तोरा, तोरि, तोरी, तोरे, तोरैं

१- सू०भा०- १६८

२- अं०ना०- ६८

३- वही १४२

४- वही १३४

५- तु०भा०- ६६

६- सू०भा०- १६८

७- वही १६६

तैरी, तैरे, तैरो, तिहारी, तिहारे, तिहारो, तुम्हार, तुम्हारा, तुम्हारि, तुम्हारी, तुम्हारे, तुम्हारो, तुम्हरी, तुम्हरे, तुम्हरैं, तोहारा, तोहिं, तथा तव :संस्कृत तत्सम रूप: सूरदास द्वारा प्रयुक्त इस कारक के प्रमुख रूप हैं -- तव, तुम, तुव, तैं, तेरी, तेरे, तेरौ, तोर[2], तेरो, तुमरे, तुमरो, तुम्हरी, तुम्हरे, तुम्हरो, तुम्हार, तुम्हारि, तुम्हारे, तुम्हारो ।

:क: तोहि मध्यिगाक फक्त नाहि अंत ।[3]

:ख: तोहारि चरण शरण लेलो हरि ।[4]

:ग: तोहार आज्ञा पालिते लागय ।[5]

:घ: विधि मिलावल आनि तेरि मनोरथ जानि ।[6]

:ङ : कमल नयन ए ब्रज जीवन तोर भृत्य सबे डाको ।[7]

:च: मोहल मन तुया माया ।[8]

:छ: आजु जानल मति तोह ।[9]

:ज: पति सुत सब अब छोड़ि परल नाथ तव पदपंकज आग ।[10]

:झ: ताके जुग पद कमल मनावउं ।

:ञ: बेद बिदित तेहि दशरथ नाउं ।

:ट: मैना जासु घरनि घर त्रिभुवन तियमनि ।[11]

:ठ: तव दरसन । तव बिरह तव राज ।

:ड: तुव दास । तुव पितु ।

:ढ: दासी है तेरी ।[12]

:ण: बुहाई तोर । ले ले नाम बुलावत तोर ।[13]

१- तु०मा० ७७
२- सू०मा० २००- २०१
३- अं०ना- ६१
४- वही ७२
५- वही ७६
६- वही ४०
७- वही १६
८- वही १६
९- वही १४३
१०- वही १०६
११- तु०मा०- ८८१
१२- सू०मा० २००
१३- वही २०१

७- अधिकरण कारक : केवल एक रूप - 'तोक्त' का प्रयोग शंकरदेव ने किया है। अधिकरण के रूप अपादान कारक की भांति ही बहुत अल्प मात्रा में व्यवहृत हुए हैं। इस संबंध में तुम्ह पर, और तुम में का उल्लेख किया जा सकता है[1]। सूरदास ने इस कारक में विभक्ति रहित रूप- तिहारैं, तुम्हारैं, तेरैं का प्रयोग किया है[2]। पर, पै और में- इन तीन विभक्तियों के संयोग से प्रमुख चार रूप- तुव ऊपर, तोपर, तोपै और तोमैं सूरदास ने बनाये हैं जिनके प्रयोग बहुत कम पदों में मिलते हैं[3]।

:क: हि: तोक्त पुरुष तेज किछो नाहि[4]।
:ख: राजहि तुम्ह पर बहुत सनेहू।
:ग: जो कछु बात बनाइ कहौं तुलसी[6] तुममें तुमहूं डर माही[5]।
:घ: राखो, कह जिय निठुर तिहारैं।
:ङ : प्यारी मैं तुम, तुम मैं प्यारी।
:च: प्यारी मेचक अधर सुधा है तुम पै।
:छ: तो पर वारी हौं नंदलाल[7]।

पुरुषवाचक अन्यपुरुष और निश्चय वाचक दूरवर्ती की रूप रचना

१- कर्ताकारक : शंकरदेव तथा माधवदेव ने सेहि, से, ओहि, तेहो, रूप का प्रयोग इस कारक में किया है। कर्ताकारक में प्रयुक्त: इसके रूप एक वचन के अंतर्गत सो

१- तु०मा० ८२
२- सू०मा०- २०३
३- वही २०४
४- शं०मा०- १५८
५- तु०मा० ८२
६- सू०मा० २०३
७- वही २०४

तेहूं,था तिहिं,सोइ,सोई और वह मिलते हैं।[1] सूरदास ने विभक्ति रहित एक वचन रूप - वह- सो और सु का प्रयोग किया है। विभक्ति रहित बहुवचन के विकृत रूप- उन,उनि,तिन और तिनि- इन चार रूपों का प्रयोग सूर काव्य के अनेक पदों में किया गया है।[2]

:क: उहि ईश्वर तारक मारक कारक सबे संसार।[3]

:ख: से अनन्तवीर्य्य कालि मशा फौत्कार कीये कृष्णक सन्मुखे मरमथ।[4]

:ग: जानव केशव देवक सेवा सोहि शिला करि रेला।[5]

:घ: से राजमहिषी शशिप्रभा,तेहो स्वामीक बोलल।[6]

:ङ: ताहे प्रकारे हासि यदुनाथे धरल केशे केशव बाम हाते।[7]

:च: तेहिं सोउ बंधु बिलोके जाइ।

:छ: जेहि अनुराग लागु चितु सोइ हितु आपन।[8]

:ज: तेउ न जानहिं मरम तुम्हारा।

:झ: कैकयसुता सुमित्रा दोऊ। सुंदर सुत जनमत भइ ओऊ।[9]

:ञ: गाइ चरावन कौं सो गयौ।

:ट: वे करता वेइ हैं हरता।[10]

:ठ: नगर दुवार तिन सबै गिराये।

:ड: फेरि न मेरी उहिं सुधि लीन्हीं।[11]

१- तु०मा० ८२

२- सू०मा० २०८- २०६

३- अं०ना० ३

४- वही ११

५- वही २६

६- वही ६६

७- वही ६२

८- तु०मा० ८३

६- वही ८४

१०- सू०मा० २०८

११- वही० २०६

२- कर्मकारक : शंकरदेव ने इस कारक में ता,ताहेक,उक्कि,ताहे,तहु रूपों का व्यवहार किया है । कर्म कारक के अंतर्गत प्रयुक्त होने वाले रूप पर्याप्त संख्या में उपलब्ध होते हैं । इनमें सो,सो,ताहि,ताही,तेहि,तेही,ओरी,सोइ,सोइ, सोउ :अंतिम तीन बलात्मक रूप हैं । एक वचन के अंतर्गत तथा,ते,निन्हहि, तिन्हहीं,तिन्हें,तिन्ह कहं,तिन्ह कहुं तिनहुं :अंतिम तीन में से प्रथम दो परसर्गयुक्त हैं तथा तीसरा बलात्मक रूप है: बहुवचन के अंतर्गत उल्लेखनीय हैं[1] । सूर ने ओहि, उहि,ताहि,तिहिं,वाहि और सो का प्रयोग किया है[2] । इसके अतिरिक्त उन्होंने विभक्तियुक्त रूप-उनकौं,उनहि,ताको,तिनकौं,तिनहिं,तिहिंकौं,तेहि,वाकौं का प्रयोग कर्म कारक में किया है[3] ।

:क: पैचे विलाप कमल ता देखह शुनह[4] ।

:ख: ताहेक मारीच सुबाहु दोहो राक्षस बहुल बिधिनि आचरय[5] ।

:ग: ताहे पेखि सत्यभामा पिकल पूला[6] ।

:घ: वाघक आगु पाइ येचे छाग धरल गोपाल पाइ तहु लाग[7] ।

:ङ : समुचित उक्कि क्यलि देव दंड[8] ।

:च: काहु बैठन कहा न ओहू ।

:छ: भाषा बद्ध करबि मै सोइ[9] ।

:ज: छोरत काहे न ओहि ।

:झ: मार्यो ताहि प्रचारि ब्र हरि[10] ।

१- सू०भा०- ८४

२- सू०भा०- २९१

३- वही २९२

४- अं०ना० ३२

५- वही ३१

६- वही १५०

७- वही १२५

८- वही १५

९- सू०भा०- ८५

१०- सू०भा० २९२

३- करणकारक : शंकरदेव ने इस कारक के अंतर्गत कम प्रयोग किये हैं जिनमें प्रमुख रूप हैं --तारे,तासन्वात,ताहातो । करण कारक के रूपों में प्रमुखत: तेहिं,तेहि सन :परसर्ग युक्त रूप: तथा तेज संस्कृत रूप: एक वचन के अंतर्गत और तिन्हहिं तथा तिन्ह तें :परसर्ग युक्त रूप: बहुवचन के अंतर्गत उल्लेखनीय हैं[१] । सूर ने करण कारक में ताहि,तिनहिं,तिहिं और वाहि तथा विभक्तियुक्त उनत,तातें,ताही तें व ताही तें का प्रयोग किया है[२] ।

:क: तासंबात कैबा आमि आसिबार कथा[३] ।

:ख: उपरे उदय माहि तारे फूबे कानु[४] ।

:ग: तेहि सन नाथ मयत्री कीजे ।

:घ: नाथ बयर कीजै ताही सों[५] ।

:ङ : तातें प्रथमहिं महत्तत्व उपायौ ।

:च: नाभि जन्म ताहीं तें भयो[६] ।

४- संप्रदान कारक : शंकरदेव ने संप्रदान कारक के अंतर्गत ताकु,ताहेक रूपों का प्रयोग किया है । तुलसीदास द्वारा प्रयुक्त रूपों के अंतर्गत विशेष रूप से ताहि, ताही,ताको,ताकहं,तेहि लगि,तेहिं लगि,ताहि लगि एक वचन में और तिन्हकहं, और तिन्ह कहुं बहुवचन में उल्लेखनीय हैं[७] ।

इस कारक में सूरदास ने उन,ताहि,तिन्है,तिहिं,तेहि,उनकौं ताकौं,ताहू कौं,तिनकौं, वाकौं,उनहि,उनहि सौं,ताके,इन बारह-तेरह रूपों का प्रयोग किया है[८] ।

१- तु०मा० ८७
२- सू०मा० २९३
३- शं०मा०- १७२
४- वही १८६
५- तु०मा०- ८७
६- सू०मा० २९३
७- तु०मा० ८६
८- सू०मा०- २९४

:क: कूकुरा रावै जानि रजनी शेष,ताहु शपथ फूल-माथे ।[1]
:ख: पेखि ताहेक हरि कारि आघात,फंगल शूल हानि तरुशाख ।[2]
:ग: ताहेक राक्षसक दिते बाव ।[3]
:घ: एड़ाइतें नामारि माझ दिला आनि तारे ।[4]
:ङ : जयागि ताको सोइ भारत प्रिय जाहि जहां बनि आई ।
:च: गरुड़ सुमेरु रेनु सम ताही ।[5]
:छ: ताहि दै राम बैकुंठ सिधाए ।
:ज: लिखि पाती दीन्ह हाथ मधुं तिहिं ।
:झ: बिन देखें ताकौं सुख भ्यौ ।[6]
:ञ:

५- अपादान कारक : इसकारक में केवल `ताहातो`शब्द रूप शंकर के काव्य में उपलब्ध है । तुलसीदास ने अपादान कारक में करण कारक से ही मिलते जुलते कुछ रूपों का व्यवहार यत्र तत्र किया है जिनमें तेहि सन,तेहि तें,तिन्ह ते:बहुवचन रूप: तथा ताहू तें :बलात्मक रूप: जैसे परसर्गयुक्त रूप उल्लेखनीय हैं ।[7] सूरदास ने इस कारक की तैं विभक्ति के साथ मुख्य पांच रूपों का व्यवहार किया है--उनतैं, उनहूं,तातैं,ताहूं तैं और वातैं ।[8]
:क: भाटक मुखे येनन रूप गुण कुल सम्पाते ताहातो अधिक देखल ।[9]
:ख: तेहिं तें उबर सुभट सोइ भारी ।[10]
:ग: राधा आधा अंग हैं तातैं यह मुरली प्यारी ।
:घ: कुलटी उनतैं को है ।[11]

१- शंoनाo १२७
२- वही १२५
३- वही ३२
४- वही १६२
५- तुoमाo- ८६
६- सूoसाo- २९५
७- तुoमाo ८७
८- सूoसाo- २९६
९- शंoनाo- ८४
१०- तुoमाo ८७
११- सूoसाo- २९६

६- संबंध कारक : शंकरदेव ने इस कारक में ताहेर, उनिकर, ताहे, ताकर, ताहेक, ताहेरि, तनुकरु तनिकर रूपों का प्रयोग किया है । सम्प्रदान कारक के रूपों के अंतर्गत विशेष रूप ताहि, ताही, ताको ताकहें, तेहि लगि, ताहि लगि एक वचन में और तिन्हकहुं बहुवचन में उल्लेखनीय हैं[1] । सूर ने संप्रदान कारक के रूपों के अंतर्गत विशेष रूप से ता, उनकी, ताहु के, ताके, ताहू के, तेहि के आदि उल्लेखनीय हैं[2] ।

:क: देखन परम सुकुमार कुमार याकेर गृहे ताहेर माग्यक महिमा कि कहब[3] ।

:ख: औहि मल्लमाट उनिकर मनपुरिये बहुविध प्रसाद देह[4] ।

:ग: ताहे बिरह कत सहबि[5] ।

:घ: ब्रह्मा महेश्वर चाकर याकर ताकर गुण मुंह लेहु[6] ।

:ङ: वसुमती परम संताये ताहेक पुत्र भगदत्त शिशुक आगि करिकहु कृष्ण दरशन निमित्ते थैबे वललि[7] ।

:च: कृष्ण चरणे ताहेरि परम भक्ति बाढ़ब[8] ।

:छ: जयगोपाल रजक बिलास तनुकरु काल[9] ।

:ज: श्रीकृष्ण तनिकर वस्त्र छुआ गृह गृहिणी कयल[10] ।

:झ: सुनि मुनि मोह ए छोह मन ताकें ।

:ञ: नृप उत्तानपाद सुत ताहू ।

:ट: बेद बिदित तेहि दसरथ नाऊं[11] ।

:ठ: सुनि ताकरि बिनती मृदु बानी[12] ।

१- तु०ना०- ८६

२- सु०ना०- २९७

३- शं०ना०- ३८

४- वही ६४

५- वही १२८

६- वही ३

७- वही १४६

८- वही १६५

९- वही १६८

१०- वही ६५

११- तु०ना० ८८

१२- वही ८६

:ङ: गुण ताके । ताके तंदुल ।

:ढ: तुरंग रथ तासु के सब संघारे[१] ।

:ण: तुम सारिखे कीठ पठाए, कहिए कहा बुद्धि उनकेरी[२] ।

:त: उदधि- सुता-मति ताकर वाहन ।

:थ: तासु क्रिया ।

:द: पहिलें रति करिकै आरत करि, ताही रंग रंगाई[३] ।

७- अधिकरण कारक : इस कारक के अंतर्गत ताहे, तचु माझे रूप शंकरदेव की रचनाओं में उपलब्ध हैं । अधिकरण कारक के रूपों में, तापर तेहि पर, और तेहि माही एक वचन के अंतर्गत और तिन्ह पर, तिन्ह महं और तिन्ह महुं बहुवचन के अंतर्गत व्यवहृत हुए हैं[४] । सूर काव्य में इस कारक के ताहूं, वाहीं, ताके, ताही कैं, तिनकै, ताही पर, तापर तिनपर, उनपै, तापै, ताही पै, तिनपैं, तामैं, ताहू मैं तामहैं, ताहि माझि आदि रूप मिलते हैं[५] ।

:क: ताहे मजोक मन शंकरे बोल[६] ।

:ख: अभिनव सूर उगत तचु माझे[७] ।

:ग: तासु माजे नंद सुत विराजित पंकज केशर समाना[८] ।

:घ: तापर हरषि चढ़ी बैदेही ।

:ङ : तिन्ह महं प्रथम रेख जग मोरी ।

:च: रविकर नीर बसे अति दारुन मकर रूप तेहि माहीं[९] ।

:छ: सूरदास की एक आँखि है ताहू मैं कछु कानौ ।

:ज: स्वाद परे निमिषहुं नहिं त्यागत ताहीं माझ समाने[१०] ।

१- सू०भा० २९७
२- वही २९८
३- वही २९९
४- तु०भा० ६०
५- सू०भा०- २१९- २२२
६- शं०ना०- १४७
७- वही० १३२
८- वही - १८३
९- तु०भा० ६०

१ निश्चय वाची निकटवर्ती :-

१- कर्ता कारक : शंकरदेव ने इस कारक में थोड़े रूपों का प्रयोग किया है । वे हैं -- इहा,इ,एहु,एहि,इह । तुलसीदास ने कर्ताकारक के अंतर्गत एक वचन में इसके रूप यह,यहु,एहा,एहिं,इहै :बलात्मक रूप: तथा बहुवचन एवं आदरार्थ में ये अथवा ए,इन्ह,एउ,इनहिं और इन्हीं :अंतिम तीनों बलात्मक रूप हैं: उल्लेखनीय हैं। सूर ने बारह,तेरह रूपों का प्रयोग किया है - वे हैं - इन,इहिं,ए यह,ये,इनहिं,इनहीं, एउ,येइ,येई,येऊ ।

:क: इहा जानि निरंतरे हरि बोल हार ।

:ख: इ कथा रहोक ।

:ग: एहु कृष्णक चरण परायण शंकरे हरिगुण गान ।

:घ: एहि बुलि कृष्णमुख निरेखि येचे विलाप करल ।

:ङ : इह संसार सार नाहि आर चिंतहु चरण मुरारि ।

:च: ए पापीक प्राण राखब ।

:छ: ए परमारथ रूप ब्रह्ममय बालक ।

:ज: कबहिं लखेउ एहिं जीवन लाहू ।

:झ: जाना जरठ जटायू एहा ।

:ञ: ये प्रिय सबहिं जहां लगि प्राणी ।

:ट: कोटि चंद वारौं मुख छबि पर ए हैं साहु के चोर ।

:ठ: इहिं मोसौं करी ढिठाई ।

:ड: घूंघट-पट बदन ढांपि,काहैं इन :यह नारि: राख्यौ :री:

१- तु०मा० ६९
२- सू०मा० २३०- २३१
३- शं०ना० १०४
४- वही ६९
५- वही २९
६- वही ८
७- वही ३
८- वही ६४
९- तु०मा०- ६९
१०- सू०मा०- २३०

२- कर्मकारक : शंकरदेव के नाटक तथा बरगीत में केवल इहाक,इहाको रूप प्रयोग मिलता है । तुलसीदास ने कर्मकारक रूपों में यह,एहि,एही,याहि,एहि कहं :परसर्ग युक्त रूप: तथा इहै :बलात्मक रूप: एक वचन के अंतर्गत और ये,ए,इन्हें,इन्हहिं,इनको तथा इनकहं बहुवचन के अंतर्गत महत्व पूर्ण हैं[1]। सूरदास ने इस कारक में तेरह-चौदह रूपों का प्रयोग किया है । यह रूप हैं- इन्हें,इहिं,यह,याहि,इनकौं, इनहिं और याकौं,इनही,यहई,यहै और याही कौं,इनि,याहि,इनतैं,इनसौं,इनहिं, यासौं[2]।

:क: बिहिला इहाक हरि समुचित दंड[3]।

:ख: इहाक तनपान कराये पठायों[4]।

:ग: इहाको धिक्कार धिक[5]।

:घ: अस स्वामी एहि कहं मिलिहि परी हस्त अस रेख[6]।

:ङ : याही कौं खोजति सबै,यह रही कहां री[7]।

३- करण कारक : इस कारक में प्रयुक्त केवल एक रूप 'आहेत' उपलब्ध है। शंकर के के काव्यों में इस कारक के अंतर्गत अधिक रूप नहीं मिलते हैं । तुलसीदास की रचनाओं में भी करण कारक के रूप अपेक्षाकृत कम मात्रा में उपलब्ध होते हैं । इनमें एहि ते,एहि सन, 'इन तें',तथा इन्ह सन उल्लेखनीय हैं[8]। सूरदास ने इस कारक के अंतर्गत इनि,याहि,इनतैं,इनसौं,इनहिं यासौं,इनहि तैं,इनही तैं,इनही पै,याही तैं याही सौं,रूपों का प्रयोग किया है[9]।

१- तु०भा० ६२

२- सू०भा० २३१-२३२

~~शं०ना०-१४३~~

३- शं०ना- १३

४- वही - १६६

५- वही - १७८

६- तु०भा० ६२

७- सू०भा- २३२

८- सू०भा- ६३

९- सू०भा- २३२

:क: परम गुरु नारायण श्रीकृष्ण आहेत हामु युद्ध क्यल[1]।

:ख: इनतें मह सित कीरति अति अभिराम।

:ग: जिन्ह कर मन इन्ह सन नहि राता[2]।

:घ: इनतें हम भए सनाथा।

:ङ : कान्ह कह्यो कछु मांगहु इनसों[3]।

४- संप्रदान कारक : शंकरदेव ने `इहाक` रूप का ही प्रयोग इस कारक में किया है। तुलसीदास संप्रदान कारक के रूपों के अंतर्गत,यहि लागि,एहि लागि,एहि कहं, इन्ह कहं,इन्हके लिए तथा इन्हहीं को :बलात्मक रूप: उल्लेखनीय हैं[4]। इस कारक में प्रयुक्त मुख्य तीन रूप सूर काव्य में मिलते हैं --- इन्हें,इहिं,और याकों[5]।

:क: किन्तु इहाक एक शास्ति करब[6]।

:ख: एहि कहं सिव तजि दूसर नाहीं[7]।

:ग: धर्म सुजस प्रभु तुम्ह कौं इन्ह कहं अति कल्यान[7]।

:घ: जा भाग याकों नहिं दीजै।

:ङ : एक इहिं :नृपहिं: दरसन देह[8]।

५- अपादान कारक :

६- संबंध कारक : शंकरदेव की रचनाओं में इस कारक के प्रमुख रूप,इहार,इहाक, आहेर आहेक प्रयुक्त हुए हैं। तुलसीदास ने संबंध कारक के रूप अन्य सर्वनाम रूपों की भांति इस सर्वनाम के अंतर्गत भी अन्य कारकों की अपेक्षा अधिक संख्या में प्रयोग किया है इनमें प्रमुखत: एहि,याकी,याके,याको एहि कैं,और एन्हिकर :अंतिम दो परसर्गयुक्त रूप हैं: एक वचन के अंतर्गत तथा इनकी,इनके,इनको,इन्हके,और :इन्हकर:

१- तु०मा० ६३
२- तु०मा०- २३२
३- तु०मा० ६३
४- तु०मा०- २३३
५- शं०मा०- ६४
६- तु०मा० ६३
७- तु०मा० २३३
८-

बहुवचन में आदरार्थ में उपलब्ध होते हैं।[1] सूरदास ने इस कारक के अंतर्गत तीनों सादे कारक रूपों का प्रयोग किया है, जिनमें की, के, और को के योग से संबंध कारकीय रूप बनाए गए हैं। इनके अतिरिक्त अपवाद स्वरूप 'कोरी' का प्रयोग एक दो पदों में दिखायी देता है।[2]

:क: इहार दोष मरण गोसामि।[3]

:ख: उहाक दोष बारेक मरण गोसात्रि।[4]

:ग: पारिजात हरण आहेर नाम।[5]

:घ: आह्क रक्षा करह।[6]

:ङ: एहि कर नाम सुमिरि संसारा।

:च: रामचरित मानस एहि नामा।[7]

:छ: पुरुषारथ इहि कौं।

:ज: याहू के गुन।

:झ: अत्य कथा याकी।[8]

७- अधिकरण कारक : शंकरदेव के नाटकों में इयात तथा इहात रूप इस कारक के अंतर्गत उपलब्ध होते हैं। तुलसीदास ने इस कारक के रूपों में या महिं, एहि महं, एहि माहीं का एकवचन के अंतर्गत और इन महं का बहुवचन के अंतर्गत प्रयोग किया है।[9,10] इस कारक में आठ-नौ रूप मिलते हैं -- इन, इन पर, इन माहिं इन माहीं, इहि यहिमां, यामें, यापर, यामें, वही पर।[11]

१- तु०मा०- ६४

२- सू०मा०- २३३

३- शं०ना० ४६

४- वही १८

५- वही १३३

६- वही १४६

७- तु०मा०- ६४

८- सू०मा० २३४

९- तु०मा०- ६५

१०- सू०मा० २३४

:क: इहात किछू शंका नाहि कराबि [1]।
:ख: ह्यात किछ शंका नाहि [2]।
:ग: मेरे कहा थाकु गोरस को नवनिधि मंदिर या माहि।
:घ: राम प्रताप प्रगट एहि माहीं [3]।
:ड : या पर मैं रीझी रहौं भारी।
:च: कमल भार याही पर लादौं।
:छ: ये तौ भए भावते हरि के,सदा रहत इन माहीं [4]।

संबंध वाचक

१- कर्ताकारक : शंकरदेव ने इस कारक में जिन रूपों का प्रयोग किया है। वे हैं -- ये,यो,योहि। तुलसीदास ने कर्ताकारक के अंतर्गत जिन रूपों का प्रयोग प्रचुरता से किया है,उनमें एक वचन के अंतर्गत जो,जोइ,जोई,जेहि और जेहिं तथा बलात्मक रूपों में जेऊ बहुवचन एवं आदरार्थ में जे,जिन और जिन्ह उल्लेखनीय हैं [5]। जिन,जिनहिं,जिनि,जिहिं जु,जोइ,जोई और जौन,इन नौ रूपों का प्रयोग सूर काव्य में प्राप्त है [6]।

:क: याजु ये दान मागइ,तोहोक सत्ये सत्ये सत्ये देखो [7]।
:ख: योहि भूमि कहुं भार उतारल निज जन पूरिया काम [8]।
:ग: यो हरिक द्रोह करय [9]।
:घ: जो नहिं करइ राम गुन गाना।
:ड : रूप न जाइ बखानि जान जोइ जोइहइ।
:च: संग लिए बिधुबैनी बधू रति को जेहि रंचक रूप दियो है [10]।

१- शंoना- ४०
२- वही २०
३- तुoमाo- ६५
४- सूoमा- २३५
५- तुoमाo- ६८
६- सूoमाo २४०
७- शंoना- ३१
८- वही २२
९- वही ६४
१०- तुoमाo ६८

:झ: प्रहलाद हित जिहिं असुर मार्यौ ।

:ञ: मन बानी कौं अगम अगोचर[1] सो जाने जो पावे ।

:ऋ: सात बैल ये नाथे जोई ।

२- कर्मकारक : शंकरदेव के नाटकों में केवल 'याहे' रूप इस कारक में प्रयुक्त हुआ है। तुलसीदास ने इस कारक के अंतर्गत विशेष रूप से जाहि,जाही,जेहि,जेही,जोइ,जा कहुं तथा जे और जिन्हहिं :अंतिम दो बहुवचन रूप हैं: का प्रयोग किया है[2] । सूरदास ने[3] इस कारक में जाहिं,जिहिं,जो,जोइ,जाकौं और जिनकौं रूपों का प्रयोग किया है ।

:क: याहे नेहरि सुर रमणी मूरचि परे[4] ।

:ख: सुमिरत जाहि मिटइ अग्याना ।

:ग: जो बिलोकि रीझि तब मेले जयमाल[5] ।

:घ: नंद घरनी जाहि बांध्यौ ।

:ङ : व्यास कह्यौ जो,सुक से गाई[6] ।

३- करण कारक :

४- संप्रदान कारक : शंकरदेव ने इस कारक के अंतर्गत याक,याहे,रूपों का प्रयोग किया है ।तुलसीदास ने प्रमुखत: जा कहं,जा कहुं,जेहि कहुं,जेहि लगि,जेहि लागि,जेहि लागी,जेहि हेतु,जेहिं हेतु जिन्हहिं,जिन्हके,जिन कहं,जिनको और जिन्ह लगि :अंतिम पांच बहुवचन रूप हैं: रूपों का प्रयोग[7] किया है । सूरदास ने जाकौं,जाहि और जिहिं केवल तीन रूपों का प्रयोग किया है[8] ।

:क: पंचमुखे याहे तुति बुलि शिरे धर चरं पदधूलि[9] ।

:ख: ब्रह्मा महेस्वर याक करै सेवा[10] ।

१- सू०भा०- २४१
२- तु०भा०- ९९
३- सू०भा०- २४१- २४२
४- शं०ना०- १२८
५- तु०भा० ९९
६- सू०भा- २४१- २४२
७- तु०भा०- १००
८- सू०भा०- २४२
९- शं०ना०- ५६
१०- वही १४५

:ग: जा कहं सनकादि संभुनारदादि सुक मुनीन्द्र,करत विविध जोग काम क्रोध लोभ जारी ।
:घ: सुख नाथ केहि रतिनाथ जेहि कहुं कोपि कर धनुसर धरा ।[१]
:ड : जाकौं राजरोग कफ व्यापत ।
:च: अति सुकुमार डोलत रस भीनौं सो रस जाहि पियावै • हौ ।[२]

५- अपादान कारक :

६- संबंध कारक : शंकरदेव ने इस कारक में अनेक रूपों का व्यवहार किया है, जिनमें याकेरि,याकर,यार,याहेर,याहे,याहेरि,याहारु,याकु उल्लेखनीय हैं तुलसी-दास ने संबंध कारक के रूपों में एक वचन के अंतर्गत जा,जिसु,जासु,जेहि के,जेहि कर,तथा बहुवचन एवं आदरार्थ के अंतर्गत जिनकी,जिनके,जिन्ह की,जिन्ह के,जिन्ह कैं,जिन्ह कै:जिसका दूसरा रूप `जिन्ह कह`भी रामचरित मानस में कहीं कहीं व्यवहृत हुआ है: तथा जिन्ह कर`का प्रयोग किया है ।[३] सूर काव्य में प्रयुक्त रूपों के अंतर्गत जा,जासु,जाहि,जाकी,जाहि की,जिनकी,जाके,जिनके,जा केरो,जाको,जिनकौ,जिनिकौ उल्लेखनीय हैं ।[४]
:क: नन्दहु नन्दन वंदन देवक सेवक याकेरि सर्व्व ।[५]
:ख: ब्रह्मा महेश्वर चाकर याकर ताकर गुण मुख लेहु ।[६]
:ग: नाहि आदि अंत,मध्य परिच्छिन्न यार ।[७]
:घ: याहेर स्मरणे जातके पाप हरे ।[८]
:ड : याहे सुरासुरा करु सेवा,सोहि मोहि गति देव देवा ।[९]
:च: याहेरि अंश अवतरि बारंबार भूमिक भार हरय ।[१०]

१- सु०भा०- १००
२- सू०भा०- २४२
३- तु०भा०- १०९
४- सू०भा०- २४३
५- शं०ना०- २
६- वही ३
७- वही १४
८- वही ११७
९- वही ५६
१०- वही ५८

:छ: काजन तारण चरण याहारु चंदल कंचन कृष्ण वल्लभहामारु [1]।

:ज: ब्रह्मा, रुद्र आदि दिक्पाल याकु करत नित्य सेव [2]।

:झ: याकु नाम धरि मुनिवर पामर हुवो स्तु गति पाइ [3]।

:ञ: चंड समान मयउ जस जाका ।

:ट: जाकर नाम सुनत सुम होइ ।

:ठ: जाकरि तैं दासी सो अविनाशी स्मरेउ तोर सहाई ।

:ड: जेहि कर मन रम जाहि सन तेहि तेही सन काम [4]।

:ढ: स्म कह जोग जानैं, जियत जाको रौन ।

:ण: जिनि पाखनि को मुकुर बनायो, सिर धरि नंदकिशोर ।

:त: जिनके मन [5]।

अधिकरण कारक :

१- मं०ना०- ६६
२- वही १०९
३- वही १३०
४- सू०भा० १०२
५- सू०भा- २४७

प्रश्नवाचक रूपों के कारकीय प्रयोग

१- कर्ताकारक : के,कोने,केव,कोन,कमन,केहो रूपों का प्रयोग शंकरदेव ने इस कारक के अंतर्गत किया है। तुलसीदास ने कर्ताकारक के अंतर्गत प्रधान रूप से कोउ,कोइ,कोई,कोय,काहु,एक,इक,कोउ और काहु :अंतिम दोनों बलात्मक रूप हैं: का प्रयोग किया है। कहा,काहूं,किन,किनि,किहिं,केहि को,कोन और कोनें- ये रूप सूर काव्य में उपलब्ध होते हैं।[1][2]

:क: हामार पुत्रक के लिया याइ।[3]

:ख: आदि अंत नपावंत केव।[4]

:ग: ओहि कोन व्यवहार।[5]

:घ: हे सखी। कमन उत्पात गोकुले मिलल।[6]

:ङ : विह्वल मावे केहो कर यूरि बोलल।[7]

:च: हरिको मकर कुंडल लेला काहु।[8]

:छ: कोउ सप्रेम बोली मृदुबानी।

:ज: निरगुन रूप सुलभ अति सगुन जानि नहिं कोइ।

:झ: काहु न कीन्हों सुकृत सुनि मुनि मुदित नृपहि बखानहीं

:ञ: राम कवन प्रभु पूछउं तोही।

:ट: कहु के लहे फल रसाल बबुर बीज बवत।[9]

:ठ: सुनहु सखी मैं बूझति तुमकों काहूं हरि कों देखे हैं।

:ड: चौविस पातु चित्र केहि कीन।

:ढ: ऐसो को भरी अरु भवन कावै।[10]

१- तुल्मा०- १०३
२- सूरमा- ३५५
३- शंना० १०
४- वही ५७
५- वही० ३२
६- वही०- १०४
७- वही ८४
८- वही० १२१
९- तुल्मा०- ६६
१०- सूरमा०- ३५५

२- कर्मकारक: काहु,काहुक,काहेक- इन तीन रूपों का प्रयोग शंकरदेव ने इस कारक के अंतर्गत किया है तुलसीदास द्वारा प्रयुक्त कर्मकारक रूपों में विशेषत: का कहा काह,काहा,काहि,काही,केहि और कौन उल्लेखनीय हैं।[1] अधिकांश रूपों का कर्ताकारक रूपों के साथ साम्य ध्यान देने योग्य है। कह,कहा, का,काकौं,काहिं किहिं,को,कोउ,और कोना,इन रूपों का व्यवहार सूरदास ने किया है।[2]

:क: बेढ़ि काहु काहु आंचोरे बिचे।[3]

:ख: काहाकु हरि हासि करु मान,काहाकु चुंबन चर्व्वन दान।[4]

:ग: लाहेक झूला फारि बुके बांधि कौले धरब।[5]

:घ: कहा कहे केहि भांति सराहे नहिं करतूति नई।

:ङ: मोकहं काह कहब रघुनाथा।[6]

:च: मच्छर काहि कलंक न लावा।

:छ: काकौं ब्रज पठवौं।

:ज: काहि मनौं हौं दीन।

:झ: ना जानौं बिधनहिं का भ्यौ।[7]

३- करण कारक :

४- संप्रदान कारक : शंकरदेव के गीतों और नाटकों में इस कारक के अंतर्गत 'काहाकु' रुप उपलब्ध है।[8] तुलसीदास ने इस कारक के अंतर्गत केहि लगि,केहि हेतु का प्रयोग किया है। सूरदास ने काकौं,काहि काहू कौं ,किहि और कौनें का

१- तु०मा०- ६६
२- सू०मा०- २५६
३- शं०ना० १२५
४- वही १०६
५- वही १०
६- तु०मा०- ६६
७- सू०मा०- २५६
८- तु०मा०- ६७

प्रयोग किया है[1]।

:क: काहाकु कुंद बनमाली लागि मुख[2]।

:ख: जीव नित्य केहि लगि तुमरोना।

:ग: विपिन केलि फिरहु केहि हेतु[3]।

:घ: उरल बिन देउ काहि।

:ङ: जोग जुगुति जदपि हम लीन्हीं, लीला काकौं देहौं[4]।

5- अपादान कारक :

6- संबंध कारक : काहेर, काहेक, काहुक काहाकु- रूप शंकरदेव के नाटकों में उपलब्ध हैं। संबंधकारक के रूप भी इस सर्वनाम में अन्य सर्वनामों की अपेक्षा संख्या में कम हैं और जो रूप मिलते भी हैं उनके अन्तर्गत के, का आदि परसर्गों की सहायता से बने हुए रूप बहुत अल्प मात्रा में आए हैं। इनमें विशेष रूप से उल्लेखनीय रूप ये हैं -- काके, काको, कासु, केहि केहिं, केहि कें, केहि के, और केहि कर[5]। सूरदास ने इस कारक के अंतर्गत काकी, काके, काको, किनकी, किहिं के किहिं को, कौन की, कौन के, और कौन को, रूपों का प्रयोग किया है[6]।

:क: काहेर कुमार, किबा देव किबा मनुष्य[7]।

:ख: औहि काहेक ग्वाल[8]।

:ग: काहुक बाहु कंध केवल[9]।

:घ: काहाक समति कृष्णाक बिवाह देवब[10]।

:ङ: काहाकु लेल हरि अंबर छोड़ि[11]।-

(च: केहि के बल घालेहि बन खीसा ।

(छ: तासु दरस केहि कर बहु पाई ।

(ज: अधिक होइ भल काहु भलाई ।

(झ: जाको नाम पतित पावन है जग केहि अति दीन पियारे ।[1]

(ञ: जाकी ध्वजा बैठि ।

(ट: सारामृग तुम किहिं के तात ।

(ठ: किहिं भय दुरजन डरिहैं ।[2]

७- अधिकरण कारक :

१- तु०भा०- ६८

२- सू०भा०- २५८

काल

क्रिया पद में वर्तमान,भूत और भविष्यत तीन काल हैं,तीन पुरुषों की क्रियाओं के भिन्न भिन्न रूप हैं। असमिया में एक वचन तथा बहुवचन के रूपों में पार्थक्य नहीं है। वर्तमान और भूतकाल में प्रत्येक पुरुष के एक से अधिक प्रत्यय हैं।

वर्तमान काल

प्रथम पुरुष : शंकरदेव तथा माधवदेव की भाषा में प्रथम पुरुष के प्रत्यय- औ अहु- अहो, ओहो,और- ा हैं। ये समस्त रूप संस्कृत के अह + हु से विकसित हुए हैं। यथा :-

:क: करहु अतये करुणा गोसमि[१]।
:ख: पुछतको माधव बांधव मधुसोदन[२]।
:ख: कोकिल कुहु कुहु लेहु मेरि प्राण[३]।
:ग: निशि सब कंदोहु जागि[३]।
:घ: नारायण चरणे करोहो गोहारि[४]।
:च: भजिलोहों भवसिंधु तोमाक जानाजि[५]।
:छ: नारायण मांगो चरण रति तेरा[६]।
:ज: मागोहु शीकर तुवा पद मकरंदा[७]।

तुलसी की भाषा में उत्तम पुरुष के रूप एक वचन के अंतर्गत मूल धातु के साथ उं,ऊं औ,- त और-ति के योग से तथा आदरार्थ एवं बहुवचन में `हि`,`ही`,के योग से बनाए गए हैं[८]। सूरदास की भाषा में वर्तमान कालिक कृदंत रूपों का व्यवहार किया गया है और कहीं- औं प्रत्यय लगा कर प्रयुक्त रूप बनाए गए हैं[९]।

१- व०गी० २९
२- वही पृ ३३
३- वही पृ ३४
४- वही पृ ६
५- वही पृ० १८
६- वही पृ० २८
७- वही पृ० २६
८- तु०भा० पृ
९- सू०भा० पृ०

:क: खल तव कठिन बचन सब सहऊं ।

:ख: पद कमल धोइ चढ़ाइ नाय न नाथ उतराई चहौं ।[1]

:ग: हौं अंतर की जानौं ।

:घ: चरन कमल बंदौं हरि राइ ।

:च: तातैं देऊं तुम्हैं मैं साप ।[2]

:छ: मैं आयौ हौं सरन तिहारी ।[3]

मध्यम पुरुष : शंकरदेव तथा माधवदेव ने `स,- हस,- ह,- अ प्रत्यय का प्रयोग मध्यम पुरुष की मूल धातु के साथ हुआ है । प्राचीन असमिया -स-ह का संबंध म० भा०आ०भा० सि हि से है और अ,ह का निर्बल रूप कहा जा सकता है :अ- हि: अ, इस प्रकार प्रा०भा०आ०भा०-सि-म०भा०आ०भा०-सि-हि-उ०भा०आ०भा०-स-ह-अ प्रा०भा०आ०भा०-थ-म०भा०आ०भा०-ह-उ०भा०आ०भा०ह-अ से आया होगा ।[4]

:क: कैके करसि दासिक रोष रे ।[5]

:ख: उठह उठह प्रिया तेरि घरि हाते ।[6]

:ग: अतवे कैछन कहसि माथि ।[7]

:घ: तोहों मथनि दंड छोड़ह ।[8]

:च: आजु काहा जासि बोलय गोवालि ।[9]

:छ: हामाकु चोर बोलसि टांदि आपुनहि दधि दुग्ध खाया ।[10]

१- तु०मा० पृ०

२- तु०मा० पृ० ३१८

३- वही पृ० ३२२

४- इ०एफ०डी० पृ०

५- अं०ना० पृ० ७८

६- वही पृ० १६२

७- वही पृ० २२९

८- वही पृ० २८३

९- वही पृ० ३१०

१०- वही पृ० ३१२

तुलसीदास की भाषा में सामान्य वर्तमान काल के रूप मध्यम पुरुष के अंतर्गत दोनों लिंगों में एक वचन में मूल धातु के साथ 'सि','सी','हि','ही','हु','हू,त और ओ के योग से तथा बहुवचन में प्राय: 'हु'तथा 'हू'के योग से बनाए गए हैं।[1] सूरदास की भाषा में ई,ऐ,त,ति तिं और हि विशेष रूप से इन प्रत्ययों के योग से इस वर्ग के रूप बनाए गए हैं।[2]

:क: महामंद मन सुख चहसि ऐसे प्रभुहिं बिसारि।

:ख: मांगु मांगु पै कहहु पिय कबहुं न देहु न लेहु।

:ग: छोटे बदन बात बड़ि कहसि।[3]

:घ: तनक दधि कारन जसोदा इतौ रिसाहि।[4]

अन्य पुरुष : इस पुरुष का प्रत्यय 'ए'है,प्राचीन अवभिधा में- न्ति-ति प्रत्यय का प्रयोग हुआ है।

:क: काला कानू नाचे चरण चलाइ।[5]

:ख: हासि हासि चले माइ।[6]

:ग: मखन मथे जसोमति माइ।[7]

:घ: करि कातर बिलपति परि नारी।[8]

तुलसी की भाषा में अन्य पुरुष के अंतर्गत प्राय: मूल धातु में-इ-ई,ऐ और त प्रत्ययों के योग से एक वचन में और हिं,ही तथा ऐ के योग से सामान्य वर्तमान के रूप बनाए गए हैं।[9] सूर की भाषा में इस वर्ग के रूप इ,ई,ऐं ऐ,त,ति,तिं हिं,हीं और ही के संयोग से बनाए गए हैं।[10]

:क: मूक होइ बाचाल पंगु चढ़इ गिरिबर गहन।

:ख: सुधापान करि मूक कि स्वाद बखानै।

:ग: करति आरती सासु मगन सुख सागर।[11]

:घ: तृष्ना नाच करति।

:ङ: नृपकुल जस गावै।

:च: अरबराइ कर पानि गहावति।[12]

१- तु०मा० पृ० १३२
२- सू०मा० पृ० ३९६
३- तु०मा० पृ० १३२
४- सू०मा० पृ० ३९६
५- सं०मा० पृ० १५
६- वही पृ० ३६
७- वही पृ० २५२
८- वही० पृ० १६
९- तु०मा० पृ० १२६
१०- सू०मा० पृ० ३९६
११- तु० मा० पृ० १२६
१२- सू०मा० ३९६

विधि

उत्तम पुरुष : शंकरदेव की भाषा में उत्तम पुरुष के प्रत्यय वर्तमान संभाव्य के ही इसमें प्रयुक्त होते हैं ।

मध्यम पुरुष : शंकरदेव की भाषा में मध्यम पुरुष के प्रत्यय- अ,-उ,और आदर धूचक- आ,- अह- अहा हैं ।

:क: दरसन देहु दआल मेरि बंधु मथाइ ।[1]

:ख: लेहु हरि चरण सरन सब बरजि ।[2]

:ग: तोहारि प्रथम पतनी परमस्वामि जानि पूरह मोहि आशा[3]

:घ: मुनि मुनि कहियो कहियो कपट परिहरि ।[4]

तुलसी की भाषा में विधि काल के रूप मध्यम पुरुष और अन्य पुरुष में मिलते हैं इनमें भी प्रधानता मध्यम पुरुष के रूपों की है ।[5] सूर की भाषा में इस काल में मुख्य रूप मध्यम और अन्य पुरुष के ही होते हैं -- इनमें इ,इए,इऐ,इजौ,इयै,इजे, उ,ओ,औ,व,ह,हिं,हि,हूं,हु प्रत्यय के प्रयोग हुए हैं ।[6]

:क: उठहु राम भंजहु भव चापा ।

:ख: मातु मुदित मन आयसु देहु ।[7]

:ग: तुम जाहु ।

:घ: तुम सुनहु जसोदा गोरी ।

:च: एक बेर इहिं दरसन देह ।[8]

१- अ०ना० पृ० ७८

२- वही पृ० १७५

३- वही पृ० १८०

४- वही पृ० १८६

५- तु०भा० पृ० १५६-५७

६- सू०भा०-पृ० ३३६-३३७

७- तु०भा० पृ० १५७

८- सू०भा० पृ० ३३७

अन्य पुरुष : प्राचीन असमिया में उ- ओक प्रत्यय मिलते हैं । यथा- अछो, असोक, मिलोक आदि ।

:क: इह संसारे सार आर नहि चिंतहु चरण मुरारि ।[1]

:ख: भकतिक साध सुनहु सब लोइ ।[2]

:ग: सीता मोलि भजोक तुवा पावे ।[3]

:घ: तुवा पद सुमरि रहोक मन थिर ।[4]

तुलसीदास की भाषा में अन्य पुरुष के रूप मूल धातु के साथ- `उ` अथवा `ऊ` के योग से बने हैं ।

:क: करउ अनुग्रह सोइ बुद्धि रासि सुभ गुन सदन ।

:ख: हरउ भगत मन कैं कुटिलाई ।

:ग: तिन्ह कै गति मोहि संकर देउ ।[5]

१- अं० ना०- पृ०- ३

२- वही पृ०- १७५

३- वही पृ० २४४

४- वही पृ० ३००

५- तु०मा० पृ० १२६

भूतकाल

मूल धातु में अल :ल: प्रत्यय का योग होता है शंकरदेव की भाषा में- अल प्रत्यय के अतिरिक्त इ प्रत्यय का योग हुआ है ,यह संस्कृत `क्त` से आया है । यह प्रत्ययांत भूतकाल के क्रिया पद के तीनों पुरुषों में प्रयुक्त होता है । भूत कालिक- ओ प्रत्ययांत हिन्दी से शंकरदेव की भाषा में आया है तथा उ प्रत्यय पश्चिमी अपभ्रंश से आया है ।

उत्तम पुरुष : शंकरदेव की भाषा में- इल- इलओ -इलो,इलोहो आदि रूप मिल मिलते हैं ।

:क: तोहाक पुत्र पावलो [1] ।

:ख: सुहृद सोदर जन पेखि विख सम मन तेज लोंहो नारायण [2]

:ग: पावलु पहु बहु पुण्ये हामु रंके [3] ।

तुलसीदास की भाषा में इस काल के अनेक रूप मिलते हैं जिनमें से कुछ प्रमुख रूपों के उदाहरण यहां दिये जाते हैं । मूल धातु के साथ `आ`,`इ`,`ई`,`ए` `यौ` `ओ`- एउ,यउ,इयो,एसि,न्ह,न्हा,न्हि,न्हीं का योग हुआ है [4] ।

:क: जो मैं सुना सो सुनहु भवानी ।

:ख: नाथ न मैं समुझे मुनि बैना [5] ।

मध्यम पुरुष : शंकरदेव की भाषा में मध्यम पुरुष के प्रत्यय-इल-इलि-इले-इलिहि आदि हैं ।

:क: गोपाल तेरि कैछे टूटल नव अनुराग [6] ।

:ख: निसि विपिन आनि कैछे तेजलि मधाइ [7] ।

१- अंoनाo पृo ११
२- अंoना पृo ४४
३- वही पृo १५९
४- तुoभाo- पृo १३५-१४२
५- वही पृo १४१
६- अंoनाo पृo ६३
७- वही पृo ८२

तुलसीदास की भाषा में मध्यम पुरुष के निम्नलिखित रूप मिलते हैं :-

:क: तुम्ह पितु सरिस भलेहि मोहि मारा ।

:ख: काहे ते हरि मोहि बिसारो ।

:ग: तुम्ह जो हमैं बड़ि बिनय सुनाई ।[1]

अन्य पुरुष : शंकरदेव ने अकर्मक तथा सकर्मक क्रिया के अनुसार प्रत्ययों का प्रयोग किया है। प्राचीन असमिया में-इस,-इला,- इलोक,इले प्रत्यय मिलते हैं,इलोक का व्यवहार दोनों प्रकार की क्रियाओं में होता है ।

:क: वत्स वत्सपाल सब स्वप्नर जागि जैवे उठि बैठल ।[2]

:ख: उच्चाया पंचम गाइला गीत ।[3]

:ग: परि परणाम क्यलि पुनु माइ ।[4]

:घ: डाके रै गोपाल प्राण गयो काहा लागि ।[5]

तुलसीदास की भाषा में अन्यपुरुष के निम्नलिखित रूप प्राप्त होते हैं :-

:क: अस कहि कोपि गगन पर धायल ।

:ख: हमहिं दिहल करि कुटिल करमचंद ।

:ग: विप्रन्ह कहेउ विदेह सन जानि सगुन अनुकूल ।[6]

१- तु०भा० पृ० १३६

२- शं०ना० पृ० ५

३- वही पृ० ५८

४- वही पृ० १८५

५- वही पृ० ६

६- तु०भा० पृ० १३८

भविष्यत्काल

असमिया तथा पूर्वी हिंदी में भविष्यत् काल में -इब, -अब प्रत्यय का संयोग किया जाता है ।

उत्तमपुरुष

शंकरदेव तथा माधव देव की भाषा में - इम, -अमो, -इमो, -इबो तथा -अब प्रत्यय को प्रयोग कर इस काल की क्रिया की रचना हुई है । तुलसीदास ने भी इस ढंग का प्रयोग किया है । यथा-

क- हामो तेमने यौवन राखबो ।[1]

ख- हामो स्वभाने मरब ।[2]

ग- आमाक माधवक भक्तिया कि करब ।[3]

घ- कि करब रमणीक रूप परखुर ।[4]

ङ - गोकुल सत्य सत्य सत्य देखबो ।[5]

मध्यम पुरुष

प्राचीन असमिया में मध्यमपुरुष के भविष्यत् काल को प्रकट करने के लिए -इब, -इबे, -अबि प्रत्यय का योग किया जाता था - यथा:

क- तुहु मय नाहि करबि ।[6]

ख- तुहु शिर तुवा रहब ।[7]

अन्य पुरुष

प्राचीन असमिया में इस पुरुष के लिए -इब, -इबा, -इबे का प्रत्यय का योग क्रिया में किया गया है । यथा-

---

क- गरुड़े बिहूँ करत नाहि ।[1]

ख- महेशक धौं ये गुंण दिश पारच ।[2]

घ- श्रीकृष्ण आकि सभामध्ये रुक्मिणीहरण
विहार नृत्य परम कौतुके करल ।[3]

शेष ६- अं०ना० पृ० १६

७- वही पृ० ५४

१- अं०ना० पृ० २६

२- वही पृ० ३०

३- वही पृ० ५८

प्रत्यय

क- इसके योग से निष्पन्न शब्द पुलिंग एवं स्त्रीलिंग में पाये जाते हैं -यथा वाचक[1], नाटक[2]

क्ती- ती प्रत्यय का सम्बन्ध क्त प्रत्यय से है + भाववाचक -इ -ई से है। यथा- विपत्ति[3] पूकति[4]

अत = यथा जानतहै[5], जानत[6] टूटत[7] वाचत[8]

अन, - न प्रत्यय के योग से भाववाचक क्रियामूलक -विशेष्य पर बनते हैं। यथा- सेलन[9]। तारन[10] बंधन[11], गहन[12]।

अन्त - इस प्रत्यय की उत्पत्ति संस्कृत -अंत :शतृ: से है। इसके उदाहरण इस प्रकार हैं - कुलिंत[13], करिवत[14]

ना- यह प्रत्यय - अन- न के विस्तार हैं और इनमें -आ के योग से निष्पन्न हुए हैं -यथा: मावना[15], खेलना[16], ठगना[17]

नी- यह भी अन -न के विस्तार हैं तथा इनसे निष्पन्न शब्द वस्तु का लघु रूप प्रकट करते हैं यथा- गोआनी[18]।

१- मा० वा० ८६
२- वही १०१
३- वही १५
४- वही १६
५- वही ३००
६- वही ३०३
७- वही २६०
८- वही १०६
६- वही २६८
१०- वही पृ० २६२
११- वही २६४
१२- वही २६८
१३- वही १२६
१४- वही १३०
१५- वही ३०७
१६- अ० ना० ४८
१७- वही ४२
१८- वही ६०

आ- यह प्रत्यय भिन्न भिन्न अर्थ प्रकट करता है - इसका स्वार्थी प्रयोग भी होता है, गुरुत्व प्रकट करने के लिए भी इसका प्रयोग किया गया है। यथा- जोगा[1], जंजूला[2]

आइ- इस प्रत्यय के योग से संज्ञा एवं विशेषण पदों से भाववाचक संज्ञापद तथा क्रियावाचक विशेष्य पद निष्पन्न होते हैं यथा- मेढ़ाई[3], पालटाई[4], भिलाइ[5], गहाइ[6], औकाइ[7]

आर- इस प्रत्यय से कर्तृवाचक संज्ञापद सिद्ध होते हैं यथा- चौसार[8], सिंगार[9], टंकार[10], झनकार[11]

आरा- इस प्रत्यय से भाववाचक संज्ञाएं बनती हैं यथा : बनिजारा[12]।

-आरि-आरी इन प्रत्ययों से कर्तृवाचक संज्ञा पद निष्पन्न होते हैं यथा- भिखारि[13], गंवारि[14]

-आल इस प्रत्यय से गुणवाचक पद सिद्ध होते हैं -यथा: दयाल[15], कृपाल[16]।

१- मा०ज० पृ०२९३
२- वही २९४
३- वही २९२
४- वही १३०
५- वही २९०
६- वही २९१
७- वही ६०
८- वही ३०६
९- सं०ना० पृ० ५७
१०- वही ८५
११- वही ६०
१२- वही ६
१३- म०वा० १७
१४- वही १७
१५- वही १७
१६- सं०ना० १४

- वाली — इसके समुच्चयवाची संज्ञापद निष्पन्न होते हैं यथा- गौवाली[1]

-इन-इनी — इन प्रत्ययों से स्त्रीलिंग बन जाते हैं। यथा- नन्दिनी[2], नागिनी[3], भीमाग्निनी[4] दुखिनी[5] नागिनी[6]।

-क-अक, इक — इस प्रत्यय से, धातु से संज्ञा पद बनते हैं यथा- नायक[7], साधक[8] सामाजिक[9]

- ट — इसके योग से भाववाचक तथा वस्तु बोधक संज्ञाएं बनती हैं- यथा: फाट[10], उचाट[11], चाट[12]

-त — इस प्रत्यय से भाववाचक संज्ञा- पद बनते हैं यथा- जानत[13], जानत[14], टूटत[15], आवत[16]

-ति — इसके योग से धातुओं के वर्तमान कालिक कृदंत रूप बनतेहैं यथा- चितवति[17]

-ल — इस प्रत्यय से कुछ संज्ञा एवं विशेषण पद बनते हैं यथा: घायल[18], पायल[19], उपारल[20]

१- मा०वा० पृ० २९८
२- बही बं०ना०पृ० २८
३- वही पृ० ३६
४- वही पृ० ६६
५- वही पृ० ७
६- वही पृ० ६
७- वही पृ० २६
८- वही पृ० २६
९- मा०वा० पृ० २९८
१०- बं०ना० पृ० २८
११- वही पृ० ३३
१२ वही ३३
१३- मा०वा० पृ० ३००
१४- वही पृ० ३०३
१५- वही पृ० २९०
१६- ~~वही~~ बं०ना० १०९
१७- वही पृ० १५
१८- मा०वा० पृ० ४९
१९- वही पृ० ४९
२०- बं०ना० पृ० ६६

- गौट — प्राचीन असमिया में प्राणी समूह के लिए -गौट प्रत्यय का अधिक प्रयोग होता था । गौट का संबंध सं० गोष्ठ से है । यथा- चारि गौटा[1] ।

- जाक — समूह व्यक्त करने के लिए -जाक को योग संज्ञा शब्द में किया जाता था - यथा - पक्षिजाक[2] ।

१- गा० वा० पृ० १३२

२- वही पृ० १३१

उ प सं हा र

सांस्कृतिक एकता

वैदिक धर्म और संस्कृति के साथ साथ वैष्णव धर्म का प्रवेश असम में हुआ। रामायण, महाभारत आदि प्राचीन ग्रन्थों में इस देश में प्रचलित धर्मों तथा संप्रदायों का विशेष विवरण प्राप्त नहीं है। नरक, भगदत्त, भीष्मक, बाण आदि इस देश के राजा थे, जिनका उल्लेख संस्कृत साहित्य में मिलता है। यदि हम परशुराम द्वारा ब्रह्मपुत्र अवतरण की कथा को सत्य मान सकते हैं, तो इससे यह स्पष्ट प्रमाणित होगा कि असम में आर्य सभ्यता तथा संस्कृति का प्रसार हो गया था।

प्रागज्योतिष-कामरूप प्राचीन काल से ही इस महादेश का अत्यन्त प्रसिद्ध स्थान था, जिसका उल्लेख महाभारत के सभा पर्व, द्रोण पर्व, तथा अश्वमेधपर्व में मिलता है। कालिदास कृत 'रघुवंश' महाकाव्य में प्रागज्योतिष-कामरूप नाम का उल्लेख है स्वयं कुमार अज ने कामरूपेश्वर का अभिनंदन किया। हर्षवर्धन ने कामरूपेश्वर भास्करवर्मा का अत्यन्त आदर किया और दौत्य संबंध स्थापित किया। 'हर्षचरित' में भास्कर वर्मा का विशद् चित्रण हुआ है। उत्तर भारत के अनेक राज्यों के पतन के पश्चात् वहां के आर्य निवासी असम आए और यहां आकर उत्तर भारत के समस्त तीर्थों की स्थापना की, जिनका दर्शन समस्त तीर्थों के फल को प्रदान करता है। ६ वीं शती के वनमाल देव को लक्ष्मीपति, गोपीवल्लभ श्रीकृष्ण को राजा हर्जरवर्मा के उपमान रूप में उपस्थित किया गया है। राजा रत्नपाल के ताम्र शासन में विष्णु को पुरुषोत्तम तथा जनार्दन कहा गया है। अभी तक प्राप्त ताम्र पत्रों द्वारा यह प्रमाणित होता है कि चौथी शती से ~~व~~ लेकर १५ वीं शती तक असम देश में अविच्छिन्न रूप से विष्णु पूजा चल रही थी।

गोलाघाट जनपद के अन्तर्गत देओपानी के निकट विष्णु की एक पाषाण मूर्ति पाई गई है जिसके दूसरी ओर भगवंत नारायणर शिलामूर्ति लिखा है। पुरातत्वविदों के अनुसार यह मूर्ति ६वीं शती की है। डिब्रुगढ़ के निकट एक प्राचीन मंदिर में विष्णु की पीतल की मूर्ति पाई गई है। अश्वक्रांत गौहाटी की अनंतशयन विष्णु मूर्ति १० वीं शती की है। इनके ~~अतिरिक्त~~ अतिरिक्त विष्णु की अनेक

अनेक प्रतिमाएं इस प्रदेश के विभिन्न स्थानों से प्राप्त हुई हैं। चरित पुस्तकों के अनुसार शंकरदेव जिस समय बरदोवा में कीर्तन घर की नींव खुदवा रहे थे, उन्हें चतुर्भुज विष्णु की मूर्ति प्राप्त हुई।

कालिका पुराण तथा योगिनी तंत्र में अनेक देवी-देव की पूजा का क्रम दिया गया है। किन्तु दोनों ही ग्रन्थों के अन्त में विष्णु का श्रेष्ठत्व स्वीकार किया गया है। महापुरुष शंकरदेव की दृष्टि से कालिका पुराण में विष्णु महात्म्य का प्रतिपादन हुआ है।

योगिनी तंत्र के रचयिता ने अश्वक्रान्त तीर्थ और अपुनर्भव, क्षेत्र, का अत्यन्त विशद वर्णन किया है और ग्रंथ में कई स्थलों पर विष्णु को कामरूप का सर्वश्रेष्ठ देवता स्वीकार किया है। विष्णु की पूजा गणेश, सूर्य, शिव, दुर्गा तथा लक्ष्मी-सरस्वती के साथ कामरूप प्रदेश में होती रही। इनकी पूजा के उपरांत पृथ्वी, ग्राम, देवता, लोकपाल इन्दु, अनंत, अग्नि, नवग्रह, दिक्पाल, अष्टवसु, एकादश रुद्र, मरुदगण वज्रादि अस्त्र मत्स्यादि अवतार सर्व देवी-देव आदि चराचर जगत की पूजा होती थी। ये देवतागण भगवान विष्णु की विभूति के अंग-प्रत्यंग स्वरूप हैं - विष्णु के अतिरिक्त इनकी पृथक सत्ता नहीं है, अतः ये विष्णु से भिन्न देवता नहीं हैं। शंकरदेव ने अन्य देवी-देवता की पूजा को निषेध किया है - कृष्ण से भिन्न अन्य किसी देवता की पूजा नहीं करनी चाहिए।

विष्णु-पूजा का कालिका पुराण में विश्लेषण किया गया है, जिसके अनुसार विष्णु के सहित राम, कृष्ण, ब्रह्मा, शंभु और गौरी की पूजा करनी चाहिए, किसी भी दशा में शंभू और गौरी के पूजन की अवहेलना नहीं की जा सकती है। असम में प्रचलित इस वैष्णव मत में वासुदेव की पूजा में पंचदेवताओं की पूजा की जाती थी जिस पर मातृ की छाया थी। शंकरदेव द्वारा प्रचारित सोलहवीं शती का नव वैष्णव धर्म अन्य देवी-देवताओं के प्रभाव से पूर्णतया अप्रभावित है। भागवत पुराण ही एकेश्वरवादी असमियां वैष्णवों का आधार है। यदुकुल नंदन कृष्ण, गोपाल, गोविन्द ही इस संप्रदाय के सर्वस्व थे। असमियां वैष्णव सम्प्रदाय में राधा अथवा नरनारी को कोई आदरणीय स्थान नहीं दिया गया है।

एक शरण धर्म

शंकरदेव द्वारा प्रवर्तित वैष्णव मत एक शरण नाम से प्रसिद्ध है। प्रियतम कृष्ण ही युग युग में अवतीर्ण होते हैं। कृष्ण की अर्चना ही विष्णु की उपासना है। एक शरणिया ईश्वर के शरणागत हो आत्मसमर्पण करते हैं। वे अन्य देव-देवी की पूजा नहीं करते हैं। शंकरदेव ने स्वयं कहा है कि वैष्णवों को विष्णु से भिन्न देवता की पूजा नहीं करनी चाहिए, उन्हें अन्य देवता के मंदिर में प्रवेश नहीं करना चाहिए तथा अन्य देवता को समर्पित नैवेद्य उन्हें न ग्रहण करना चाहिए। यदि किसी ने इस नियम का पालन न किया तो भक्ति दूषित होगी। असमिया वैष्णव मत में विष्णु पूजा तथा अन्य देव-देवी की पूजा के संबंध में पृथक मत व्यक्त किया गया है। एक शरणिया मत के पोषक भट्टदेव नामक विद्वान ब्राह्मण ने भी पंचयज्ञ का विरोध किया है, यदि इस प्रकार का निवेदन किया गया तो उससे एक शरण धर्म कलुषित होगा, केवल विष्णु की उपासना द्वारा समस्त देवतागण संतुष्ट होंगे

दीक्षा

वल्लभ संप्रदाय की भाँति शंकरदेव के अनुयायी 'शरण' प्राप्त करते हैं। नाम लेने के समय राम कृष्ण नारायण हरि नाम का मंत्र दिया जाता है - मुख से अनेक बार नाम उच्चारण कर हृदय में ईश्वर का ध्यान करना ही प्रार्थना का नियम है। शंकरदेव के चार नाम का मंत्र - रामानुज के 'नारायण' और विष्णु स्वामी के तीन नाम के मंत्र राम-कृष्ण-हरि का सम्मिश्रण जान पड़ता है।

शंकरदेव ने विष्णु भक्ति के लिए अपने शिष्यों को अविवाहित रहने की आज्ञा नहीं दी क्योंकि वे स्वयं दो बार विवाह कर चुके थे। उनकी मृत्यु के उपरान्त माधवदेव इस संप्रदाय के धर्मगुरु हुए और उन्होंने 'केवलिया' नामक सन्यासियों के पंथ की सृष्टि की। सत्रों के निकट छोटे छोटे घरों का निर्माण कर केवलिया रहने लगे। उत्तर भारत के कतिपय संप्रदायों में इस प्रकार सन्यासी थे। असम के वैष्णव मत में तुलसीदास जी की भाँति दास्य भक्ति का समर्थन किया गया है। शंकरदेव ने अनेक ग्रंथ में अपने लिए 'कृष्णर किंकर' का प्रयोग किया है। एक शरण धर्म में मूर्ति-पूजा की प्रधानता नहीं है। प्रत्येक धार्मिक अवसर पर शंकरदेव द्वारा रूपांतरित

भागवत को गद्दी :बंटा: पर स्थापित कर उसे नैवेद्य तथा भक्ति आदि निवेदित की जाती है। इसी प्रकार वल्लभ संप्रदाय में भी भागवत को उच्चतम स्थल पर प्रतिष्ठित कर शिष्यों को शरण दी जाती है।

शंकरदेव शूद्र थे तथापि उन्होंने अनेक ब्राह्मण शिष्यों को नाम मंत्र दिया था-इन शिष्यों ने गद्दी पर स्थापित ग्रंथ को ही सेवा अर्पित की थी। विरोधी ब्राह्मण पंडितों ने इस नियम का घोर विरोध किया। शंकरदेव ने उत्तर दिया कि प्रभु का नाम मंत्र देने में किसी प्रकार की बाधा नहीं है। एक शरण धर्म के अंतर्गत केवलिया संन्यासी ही हैं संन्यासिनियों के लिए स्थान नहीं है - पुरुषों की धार्मिक सभा में नारियां योगदान नहीं कर सकती हैं ,महिलाएं ब चौताल में निर्दिष्ट समय पर नाम कीर्तन करती हैं। कहा जाता है कि शंकरदेव ने किसी भी स्त्री को नाम मंत्र नहीं दिया था।

एक शरण धर्म में मनुष्य और ईश्वर के मध्य लेन देन की व्यवस्था नहीं है, इसमें बलि और सहज साधना के प्रतिकार की भी आवश्यकता नहीं है। यह धर्म आत्मिक विकास पर अधिक बल देता है -जब मनुष्य ईश्वर को काया-मन समर्पित कर देता है तो उसकी आत्मा को नूतन मार्ग मिलता है। जब जीवन ईश्वर को पूर्ण रूपेण समर्पित हो जाता है तो सांसारिक आकर्षण और इंद्रियजनित सुख की वांछा मनुष्य नहीं करता। इस धर्म की दीक्षा कान में धीरे से कह कर बनहीं की जाती थी। चौकी-तालों तथा धर्मसभाओं में इसकी घोषणा की जाती थी। इस धर्म के नवीन अनुयायियों को राजाओं के संघर्ष तथा आतंक अश्लील आमोद आदि की चिंता न थी।

बल्लभ संप्रदाय में गुरु-पूजा की प्रधानता है किन्तु असमिया वैष्णव संप्रदाय में इसका पूर्णतया अभाव है। वैष्णव मत के नाना प्रचारकों के मध्य केवल शंकरदेव ही अपने जीवन-काल में महापुरुष के नाम से प्रख्यात हो चुके थे, इसी कारण उनके प्रचारित धर्म का नाम महापुरुषिया हुआ। भारत के विभिन्न अंचलों के महात्माओं के लिए सम्मानसूचक उपाधियों का प्रयोग हुआ है। तुलसीदास गोस्वामी की उपाधि से अलंकृत किया गया। सम्मानसूचक अर्थ में महापुरुष शब्द का व्यवहार अधिक जनप्रिय नहीं ज्ञात होता है। वल्लभाचार्य ने कृष्ण की कृपा द्वारा ही धर्म का ज्ञान प्राप्त किया, किसी मनुष्य को उन्होंने गुरु न स्वीकार किया, किंतु शंकरदेव ने कृष्ण के क चरणों का चिंतन करने के पश्चात् गुरु चरणों का चिंतन किया है। महापुरुष माधवदेव के गुरु शंकरदेव थे, इसे सभी वैष्णव स्वीकार करते हैं।

राजनैतिक संबंध

असम का प्रदेश प्राचीन भारत का सुदूर पूर्वी भाग है। रामायण, महाभारत और अन्य पुराणों में इसका यही नाम मिलता है। निःसंदेह प्राग्ज्योतिष आर्य सभ्यता के बाहर था। यहाँ के राजा भगदत्त को म्लेच्छ देश का राजा कहा गया है। महाभारत के अन्य स्थल पर असम असुर राज्य कहा गया है जहाँ के राजा नरक और मुरु थे। इसे किरात और चीन देश का सीमांत मानते थे। उत्तर बिहार तथा उत्तर बंगाल का अधिकांश भूभाग प्राचीन कामरूप राज्य का अभिन्न अंग था। राम राज्य से लेकर मुगल साम्राज्य तक किसी भी भारतीय साम्राज्य के अन्तर्गत प्राचीन असम अंतर्मुक्त न हुआ।

शताब्द की ग्यारहवीं शती में अहोमों ने वर्तमान पूर्वोत्तर असम अंचल में दिखौ-पार को केन्द्र स्थिर कर नवीन राज्य की स्थापना की- नागा नरा, बाराही, चुटिया और कछारियों से बीच-बीच में संघर्ष होता रहा। भुइयों के राज्य के दक्षिण अहोमो और कछारियों का युद्ध हुआ। भुइयों की संघीय शक्ति अत्यन्त निर्बल थी और उनके राज्य छोटे छोटे थे। इन युद्धों का कुप्रभाव उनके राज्यों पर भी पड़ा, फलस्वरूप दक्षिण पार कर भुइयां शासन समाप्त हो गया। व उत्तरपार के विशेषतः रौटा अंचल प्रतापी, वीर भुइयों ने अहोमों की अधीनता स्वीकार की। गौड़ेश्वर तथा कामेश्वर उपाधि धारी अनेक प्रभावहीन राजाओं ने कामरूप में छोटे छोटे राज्यों

की स्थापना की । नीलांबर के पतन के उपरान्त कामरूप में कोई भी केन्द्रीय राज्य-शक्ति न थी । अतः इस प्रदेश के पश्चिमी भाग में भुइयाँ ने पुनः शक्ति का प्रयोग कर राज्य स्थापन किया क्योंकि देश में अराजकता की स्थिति हो गयी थी । यदि भुइयाँ ने अन्य राज्यों के साथ गठबंधन किया होता तो भुइयां राज्य प्रबल शक्ति-शाली और अजेय राज्य हो गया होता । किंतु इन भुइयाँ में एकता का अभाव था जिससे कोच राज्य शक्ति ने इनका दमन किया । विश्वसिंह और शिवसिंह ने कामता-पुर राज्य पर विजय प्राप्त की और कामतापुर के शासक दुर्लभ को अन्य स्थान पर ले जाकर वध करा दिया ।

बकारियों के प्रबल उपद्रव के कारण शंकरदेव पांच वर्ष तक अहोम राज्य में रहे । कोच राजवंशावली के अनुसार विश्व सिंह ने आसाम का करने के हेतु गढ़गाऊं की ओर अभिमुख हुए किन्तु युद्ध सामग्री की न्यूनता के कारण वे कमतानगर से लौट आए। अहोम इतिहास के अनुसार विश्वसिंह ने स्वयं अहोम राजा की अधीनता स्वीकार की। यह विश्वसिंह का आसाम अभियान असफल रहा ।

सोलहवीं शती में समस्त उत्तर भारत मुगल राज्य शक्ति के अधीन हो चुका था, हिन्दू राजाओं ने मुगल सम्राटों की वश्यता स्वीकार कर ली थी । किन्तु कामरूप राज्य पर मुगलों का अधिकार न हो सका । मुगलों का विश्वास था कि असम पर आक्रमण के लिए जितने नवाब गए उनमें से कोई जीवित न लौटा । कोई युद्ध में मारा गया, इस स्थान का जल और वायु विषाक्त है, इनके दुर्ग पर्वतों पर जटिल ढंग से बने हुए हैं । मुगल इतिहास में आसामिया इंद्रजालिक प्रक्रियाओं का विशद चित्रण किया गया है ।

भाषा

असमिया भाषा भारतीय आर्य परिवार की भाषा होते हुए भी चारों ओर से अनार्य भाषाओं से घिरी हुई है। इसकी स्थिति देखकर ऐसा लगता है जैसे असमिया एक लघु द्वीप के समान हो और उसके चारों ओर अनार्य भाषाओं का उदधि हो-- उत्तर भारतीय आर्य भाषाओं की अपेक्षा असमिया इन नाना देशों की भाषा से अधिक प्रभावित हुई। यद्यपि सुदूर पूर्व देशों से लोगों ने असम में प्रवेश किया, तथापि असमिया के स्वरूप तथा गठन में कोई उल्लेखनीय परिवर्तन न हुआ। मध्य देश से अधिक संख्या में जनसमुदाय असम आया और आगंतुक इस प्रदेश के निवासी हो गए। सोलहवीं शती के पूर्व विविध लोकप्रिय साहित्य का सृजन हुआ। साहित्यनिर्माण के फलस्वरूप भाषा का स्तर स्थिर हो गया और अनार्य प्रयोगों का प्रभाव असमिया पर कम पड़ा। इतना होते हुए भी बोड़ो भाषा का प्रभाव दंत्य और मूर्धन्य ध्वनियों पर पड़ा- असमिया दंत्य अक्षरों का उच्चारण मूर्धन्य ध्वनियों की भांति होता है। बहुवचन के प्रत्यय - बिलाक-बिला-गंल-गा-ला का स्रोत अनार्य भाषाएं हैं।

चीनी पर्यटक ह्वेनसांग के अनुसार कामरूप राज्य की भाषा और मध्यदेश की भाषा में अधिक साम्य था। आज भी उत्तरी बंगाल तथा पश्चिमी असम की बोली एक दूसरे के अधिक निकट है। बंगाल तथा असम की भाषाओं की उत्पत्ति मागधी अपभ्रंश से हुई। भाषातत्व की दृष्टि से असमिया भाषा का संबंध अवधी तथा बिहारी से अधिक है, बंगाली भाषा के प्रभाव से असमिया मुक्त है।

प्रस्तुत प्रबंध में शंकरदेव, माधवदेव, सूरदास तथा तुलसीदास की भाषा का भाषा-वैज्ञानिक तथा व्याकरणिक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। इससे असमिया तथा हिंदी काव्य की भाषा का समानता प्रकट होती है।

शंकरदेव तथा माधवदेव के अधिकांश बरगीतों की भाषा ब्रजबुलि है। ब्रजबुलि का जो रूप हमें असमिया वैष्णव काव्य में मिलता है वह अलीगढ़, आगरा, मथुरा तथा ~~मैनपुर~~ धौलपुर की प्रचलित ब्रज बोली से किंचित पृथक है किन्तु इतना

निश्चित है कि इस भाषा का संबंध शौरसेनी से विकसित ब्रजभाषा और मागधी से है। मैथिल कवि विद्यापति की भाषा को आदर्श स्वीकार कर पूर्व भारत के कवियों ने एक मिश्रित भाषा का प्रयोग किया। मैथिल भाषा की विशेषताओं की भित्ति पर ब्रजबुलि का विकास हुआ, जो ब्रज तथा मागधी भाषा के भी अनेक शब्द रूप प्राप्त हुए। इस भाषा में नंदनन्दन श्रीकृष्ण की ब्रजलीला का मनमोहक चित्रण हुआ है। इसलिए भी इस भाषा का नाम ब्रजबुलि प्रचलित हुआ। ब्रजबुलि में तत्सम शब्दों का प्रयोग प्रचुर परिमाण में किया गया है, कहीं कहीं तत्सम शब्दों के बाहुल्य के फलस्वरूप कवियों को भाव प्रकाशन में बाधा हुई किन्तु छंद सुर और अनुप्रासों की झंकार से तरंगित हो उठे, साधारण जन शब्दों के अर्थ न समझने पर भी, समझते नहीं हैं -भाषा का श्रुति माधुर्य उनके मन को सम्पूर्ण रूप से मुग्ध कर लेता है। ब्रजबुलि में भी तत्सम शब्दों का प्रयोग छंद के अनुकूल किया गया है। संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश का यथेष्ट प्रभाव ब्रजबुलि पर पड़ा। अरबी तथा फारसी के केवल दो तीन शब्दों का प्रयोग शंकरदेव तथा माधवदेव ने किया, किन्तु सूरदास और तुलसीदास ने सैकड़ों विदेशी शब्दों का प्रयोग सूरसागर और रामचरितमानस में किया है।

ब्रजबुलि की व्यंजन ध्वनियां ब्रजभाषा के अनुसार हैं। केवल कुछ ही बातों में विशेषता है - जैसे छ - कार का उच्चारण किन्हीं किन्हीं स्थलों पर -स-कार के अनुसार था, श-कार तथा स-कार के उच्चारण में भिन्नता थी किन्तु असमिया में श-कार और स-कार का उच्चारण -ह-कार जैसा होता है था। अंतस्थ व-कार पूर्णतया लुप्त नहीं हुआ था। मैथिल भाषा में ष-कार का उच्चारण ख-कार के अनुसार था। ब्रजबुलि में ष-कार का उच्चारण ख-कार के समान था। शंकरदेव तथा माधवदेव की भाषा में शब्दों के बहुवचन का रूप स्वतंत्र नहीं है। साधारणत: सब, सिगाक, चय, जाक आदि का प्रयोग कर शब्द को बहुवचन बना दिया जाता है।

शंकरदेव तथा माधवदेव की भाषा में सात कारकों का प्रयोग हुआ है। कर्ता की विभक्ति `ए' का अधिकतर लोप देखा जाता है। द्वितीया और चतुर्थी की ए' को - `के' - कि विभक्तियां हैं। तृतीया की विभक्ति - हि -हि-से-से,

-सों, - तें का लोप कहीं कहीं हुआहै । पंचमी की विभक्ति -हि-हि-से-ते-तैं आदि हैं । षष्ठी की विभक्ति -क । का । -कि -कै -को -कर -केरि - र हैं । सप्तमी की विभक्ति -ए -हि- हिं-ओ--में-मि- का प्रयोग हुआ है । उत्तमपुरुष सर्वनाम के ये रूप शंकरदेव तथा माधवदेव की भाषा में मिलते हैं - आम, आमि मोय, मोहि, हामि, मुझ, मोर, मोहर, हामार आमारि और मोक । मध्यम पुरुष सर्वनाम के ये रूप मिलतेहैं- तुहु, तुहुं, तोह, तू तोहि, तुहि, तुमा, तुम, तुंहार, तोरा और तोहारि। अन्य पुरुष सर्वनाम के ये रूप मिलते हैं - सै, सो, तेहि, तेह, सोय, तहु, तहि, ताहे ताह, ताय, तोक, ताकर, तकु और ताकि । निकटवर्ती सर्वनाम के ये रूप मिलते हैं- उह, ओ, ओह, ओहि, उहि, उहे, उनकि, यक्क और ऊंकार । शंकरदेव तथा माधवदेव के गीतों तथा नाटकों में सम्बन्धवाचक सर्वनाम के ये रूप मिलते हैं- ये, येह, यो, यह याहे, याकार, याकर और याहे । प्रश्नवाची सर्वनाम के रूप हैं - केह, केहु, को, कोन, कि, काहे, काह, कान, काहां, कांहुके और कारे । उत्तम और मध्यम पुरुष के विभिन्न सर्वनामों के अनुसार क्रिया विशेषण पद निष्पन्न होता है जिन शब्द समूहों का प्रयोग किया गया है वस्तुत: वे कारक के पद हैं । जैसे - ग्रं, तेमिं, काहे, किये आदि । ब्रजबुलि में -अनी :इनि: एवं ई- :ई: दो स्त्री प्रत्यय हैं । जैसे चकोरिनी तथा गजगमनी । ब्रजबुलि में -स्त्रीलिंग व्याकरणानुगत न होकर स्वाभावानुगत होता है । स्त्रीलिंग के अतिरिक्त सभी शब्द पुल्लिंग हैं ।

शंकरदेव तथा माधवदेव की भाषा में क्रिया के तीन काल-- वर्तमान, भूत, भविष्य-हैं एकवचन और बहुवचन के रूपों में पार्थक्य नहीं है । वर्तमान और भूतकाल में प्रत्येक पुरुष के एक से अधिक प्रत्यय हैं। वर्तमान काल के उत्तम पुरुष के प्रत्यय हुं, ऊं, औं हैं - इस काल के अंतर्गत मध्यम पुरुष के प्रत्यय -सि -ह -उ, अ और -ह हैं । अन्य पुरुष के प्रत्यय -ए-उ-अये-औये, ए-आ-ह हैं ।

शंकरदेव की भाषा में धातु में -अल प्रत्यय का योग करने से वह अतीत काल की क्रिया हो जाती थी । -अल प्रत्यय मूलत: विशेषण प्रत्यय है । अल के अतिरिक्त इस भाषा में एक और प्रत्यय था- इ - यह संस्कृत - क्त प्रत्यय से विकसित हुआ है । भविष्यत काल में केवल -ब तथा बि प्रत्यय का योग धातु में होता था ।

शंकरदेव तथा माधव देव की भाषा का वैज्ञानिक अध्ययन करनेके उपरान्त यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि इन लोगों की भाषा सूरदास की भाषा से भले ही कुछ दूर हो किंतु तुलसीदास की भाषा के अधिक निकट है।

साहित्य

शंकरदेव ने भागवत के अतिरिक्त मार्कण्डेयपुराण का आधार हरिश्चंद्र उपाख्यान की रचना की। भक्ति प्रदीप की विषय वस्तु गरुड़पुराण से ली गयी है। कीर्तन घोषा का 'उरेषा वर्णन' स्कंद ब्रह्म पुराण का पदानुवाद मात्र है। उन्होंने ना रुक्मिणीहरण काव्य की कथा में भागवत एवं हरिवंशपुराण का सम्मिश्रण किया है। शेष रचनाओं का आधार भागवत में वर्णित घटनाएं हैं केवल रामायण का उत्तरकाण्ड वाल्मीकि रामायण का पदानुवाद है।

हरिश्चंद्र उपाख्यान तथा रुक्मिणी हरण काव्य में शंकरदेव ने काव्य के सौंदर्य वृद्धि के लिए अपनी उर्वरा कल्पना शक्ति का प्रयोग कियाहै। असमिया वैष्णवों की भ्रामक धारणा है कि शंकरदेव ने हरिश्चंद्र उपाख्यान द्वारा ही धर्म के चार स्तंभ स्थिर किया। अजामिल उपाख्यान, गजेन्द्रोपाख्यान, अमृत मंथन और बलिछलन और दशम स्कंध भागवत का कुरुक्षेत्र उपाख्यान कोटि के काव्य हैं।

भक्ति प्रदीप, अनादि पतन तथा निमिनवसिद्ध संवाद में भक्ति तत्व का निरूपण हुआ है। अनादि पतन से सृष्टि कैलादि से प्रलय का वर्णन है। अनादि पतन के वर्तमान प्राप्त संस्करण में वामन पुराण का प्रभाव अत्यन्त अल्प मात्रा में दिखायी देता है। निमिनव सिद्ध संवाद में विष्णु की माया का स्वरूप, माया से मुक्ति पाने के उपाय, परमात्मा में निष्ठा, कर्मयोग, ईश्वर के अवतार तथा भगवान की पूजा विधि का वर्णन है। शंकरदेव का अवतार वर्णन काव्य की दृष्टि से अधिक सुन्दर है। शंकरदेव की कीर्तन घोषा मुक्तक रचना है, प्रत्येक खंड में शताधिक कीर्तन के पद मिलते हैं। धर्म प्रचार, धर्म शिक्षा, और धार्मिक जीवन के गठन के निमित्त इस सर्वांग सुंदर ग्रंथ की रचना हुई। पौराणिक साहित्य का सबसे अधिक उपयोग इस ग्रंथ में किया गया है। ब्रह्मपुराण से कीर्तन घोषा का उरेषावर्णन, पद्म-

पुराण से नामापराध खंड की रचना हुई। भाषा का लालित्य, छंदों की झंकार सुर का लावण्य, भाव की मधुरता, भक्ति की दृढ़ता आदि का संयोग कीर्तनघोषा ग्रंथ में हुआ है। महापुरुषिया संप्रदाय की चार पोथियों में कीर्तनघोषा को सम्मानित स्थान दिया जाता है।

भारतीय वैष्णव आन्दोलनों के प्रमुख कवियों ने गीतिकाव्य की रचना की। असम में भी इस प्रकार के गीतों की रचना आरंभ हुई जिससे वैष्णव मत के प्रचार में अधिक सहायता मिली और वैष्णव मत का प्रचार अधिक विस्तृत हुआ। असमिया गीति काव्य की दो प्रमुख धाराएं- बरगीत और भटिमा है। बरगीतों की रचना के पूर्व ही असम में भारतीय संगीत शास्त्र की चर्चा होती थी। शंकरदेव तथा माधवदेव के पूर्व पीताम्बर कवि तथा दुर्गावर ने असमिया में विभिन्न रागों में गीत रचना की थी। वल्लभसम्प्रदाय की अष्टयाम कीर्तन की भांति इन बरगीतों का व्यवहार असमिया भक्त गण निर्धारित अवसर पर करते हैं। शंकरदेव ने दो सौ चालीस बरगीतों की रचना की थी किन्तु आज उनके तीस पैंतीस ही बरगीत प्राप्त होते हैं। बरगीत सांसारिक प्रेमव्यापार से पूर्णतया मुक्त, आध्यात्मिक उपासना प्रसंग का गीत है। केवल शंकरदेव तथा माधवदेव द्वारा रचित कबीर गीतों को ही बरगीत की संज्ञा दी गई है। सूरदास तथा तुलसीदास तथा अन्य भक्त कवियों के कतिपय गीत असम में प्रचलित हैं। सूरदास के सूरसागर तथा तुलसीदास की विनयपत्रिका के पदों के साथ शंकरदेव तथा माधवदेव के बरगीतों की तुलना की जा सकती है। इन गीतों में वंदना, स्तुति, उपदेश, जागरण लीली, भोजन के गीत, भूषण हरण के गीत और दधिमंथन का वर्णन है। असमिया ~~सत्रकर्म्मिं~~ सत्राधिकारों के अनुसार उत्थान, जागन, खेलान, और नृत्य-- चार विशिष्ट धाराएं हैं। शंकरदेव की भटिमा महत्त्वपूर्ण रचना है। प्रथम तीर्थ-यात्रा करते समय अनेक भाट शंकरदेव से मिले थे - कथा गुरुचरित में इसका प्रमाण मिलता है। शंकरदेव द्वारा रचित रुक्मिणी हरण नाटक में सुरभि तथा हरिदास नामक दो भाटों का वर्णन मिलता है। शंकरदेव ने देव भटिमा, राज भटिमा तथा नाटकीय भटिमा की रचना की। छंद तथा शब्द योजना, गांभीर्य, अनुप्रासों की प्रतिध्वनि इन भटिमाओं का विशिष्ट लक्षण है। बरगीतों की भाषा में ही भटिमाओं की भी रचना हुई है।

शंकरदेव के नाटकों के प्रमुख अंग - गीत, श्लोक, भटिमा, कथोपकथन और नृत्य है। नाटकों में दो प्रकार के गीतों का सन्निवेश हुआ है - साधारण पयार तथा भारतीय राग संगीत के गीत। नाटकों के प्रवेश गीत का आरंभ सिंदूरा राग से हुआ है और मध्य में खोल तथा ताल का व्यवहार हुआ है। करुण क्रंदन अथवा विलाप के लिए पयार का योग नाटकों में किया गया है। नांदी पाठ के अतिरिक्त कथा का आशय प्रकट करने के लिए संस्कृत श्लोकों का प्रयोग शंकरदेव ने किया है। नांदीपाठ के दो श्लोकों में परम पुरुष राम अथवा श्रीकृष्ण की स्तुति की गयी है। गीत और भटिमाओं के सदृश शंकरी नाटकों के कथोपकथन की भाषा ब्रजबुलि है। श्रीकृष्ण तथा भक्ति धर्म का गुणगान ही शंकरदेव के नाटकों का प्रमुख उद्देश्य है।

लोक मानस

प्राक शंकरी युग में ब्राह्मण धर्म का विस्तार असम में अधिक था - माधव कंदलि, हेम सरस्वती तथा कविरत्न सरस्वती ने संस्कृत में लिखित पौराणिक साहित्य का अनुवाद असमिया भाषा में किया - किन्तु धार्मिक एकता पर किसी कवि ने बल न दिया। शंकरदेव ने सर्वसाधारण के हेतु बोधगम्य भाषा में चिदानंद-घन-स्वरूप के रूप को प्राकृतजनों के सम्मुख प्रकाशित किया जिसके फलस्वरूप ब्राह्मण धर्म का प्रभाव असम में कम हो गया। श्रीमद्भागवत के सगुण रूप श्रीकृष्ण को सर्वसाधारण के सम्मुख प्रस्तुत किया गया -- उनकी विविध लीलाओं का अभिनय भी शंकरी धर्म प्रचार का एक मुख्य साधन था। निरक्षरों लोगों ने आध्यात्मिकता और जीवन दर्शन को समझने की चेष्टा की। नाम-घरों की स्थापना द्वारा भी असमिया जातीय जीवन को अधिक उत्साह और बल मिला। असम प्रदेश के अनेक प्रसिद्ध सत्रों में अब भी आदर्श तथा अनुशासन अक्षुण्ण रूप में वर्तमान है - इन्हें देख कर ही जातीय जीवन की एकता और श्रृंखला का अनुमान किया जा सकता है।

शंकरदेव ने भक्ति का द्वार प्रत्येक प्राणी के लिए खुला रखा था, किन्तु कालांतर प्रतिक्रिया शील शक्तियों ने उनके इस उच्च आदर्श की अवहेलना की -- असम की अनार्य जातियों ने शंकरदेव के मत को ग्रहण किया। माधव देव ने नामघोषा ग्रंथ में

गारो, भोट, यवनो आदि जातियों का उल्लेख किया है जिन्होंने शंकरदेव द्वारा प्रचारित भक्ति धर्म को अंगीकार किया - पूर्वोत्तर आसाम के मिरि आसम :अहोम: तथा कछारियों ने भी शंकरी मत को स्वीकार किया ।

शंकरदेव तथा माधवदेव के गीत आज भी आसाम के ग्रामों में गाये जाते हैं । उनके नाटकों का अभिनय, नृत्य-गीत आदि द्वारा अवकाश के समय गांवों तथा नगरों में किया जाता है। शंकरदेव ने चिह्न मात्रा अभिनय के लिए सात वैकुंठ का चित्र वस्त्र पर चित्रित किया - इसके अतिरिक्त श्रीकृष्ण की वृंदावन लीला,वस्त्र में बुनवाया, नामघर-मणिकूट तथा सत्र की लघु कुटियों में शंकरदेव की चित्रकला का नमूना प्राप्त हो सकता है ।

भक्ति

माधवदेव भक्ति को परम निर्मल, आनंद रसमय,धन, जन, साधन, फल आदि का मूल कहा है, हरिनाम कीर्तन पर समस्त प्राणियों का अधिकार है, भक्ति सब धर्मों से श्रेष्ठ है । नाम स्मरण ए करने से असंख्य महापाप का दोष नष्ट होता है । भक्त तथा ज्ञानी कभी भी पाप मार्ग की ओर अग्रसर नहीं होते हैं यदि प्रमादवश उनसे पाप कर्म हो भी जाय, तो हरि नाम का उच्चारण करते करते उस पाप वासना का मूल दग्ध हो जायगा । जब तक भक्त प्रभु के नाम का चिंतन करता रहेगा दुर्वासना उसके समीप न आ सकेगी । ईश्वर का निरन्तर चिंतन करने से प्रेम लक्षणा भक्ति का उदय होता है और संसार से विरक्ति होती है । प्रेम की प्रगाढ़ता के पश्चात् कृष्ण के स्वरूप का ज्ञान प्राप्त होता है ।

शंकरदेव ने गीता से एक शरण, भागवत पुराण से सत्संग तथा पद्मपुराण से नाम धर्म ले आसाम प्रदेश में भक्ति का प्रचार किया । शंकरदेव के नाम धर्म में नवधा भक्ति के अंतर्गत श्रवण तथा कीर्तन को श्रेष्ठ स्थानदिया गया है । नारायण के अतिरिक्त अन्य देवता की उपासना जड़ की उपासना समझी जाती है । गोपी वल्लभ कृष्ण की श्रवण-कीर्तन द्वारा विशेष रूप से उपासना करनी चाहिए ।

पुष्टि भक्ति के सेव्य श्रीकृष्ण हैं। सूरदास ने भक्ति में अनन्यता को सर्वाधिक महत्व दिया है। सूरदास आदि भक्तों की रचना में युगल स्वरूप तथा राधा के स्तुति के अनेक पद प्राप्त होते हैं। सूरदास ,परमानन्द तथा तुलसीदास ने सगुण ईश्वर की उपासना का मंतव्य अपनी रचनाओं में प्रकट किया है। सूर ने अपने अनेक पदों में ज्ञान तथा योग मार्ग का खण्डन कर विपिनविहारी कृष्ण की मनोरम लीला की महिमा का प्रतिपादन किया है। भक्ति द्वारा ही मनुष्य परमात्मा के समीप हो सकता है। आत्मसमर्पण के पश्चात् भक्ति का सगुण भाव लुप्त हो जाता है। निर्गुण वादी भक्त सदैव श्रवण,कीर्तन और स्मरण कर सकता है। शंकरदेव ने भक्ति रत्नाकर में सख्य तथा आत्मनिवेदन भक्ति का प्रतिपादन नहीं किया है। असमिया तथा हिंदी वैष्णव कवियों ने केवल भक्ति का समर्थन किया है , उन्हें मुक्ति की कामना नहीं है। जो भक्त काय-वाक्य और मन से ईश्वर की भक्ति करता है उसे मोक्ष प्राप्त होता है।भगवान के लिए जिसके मन प्रेम लक्षणा भक्ति है उसे प्रभु कभी नहीं छोड़ते हैं।

निर्गुण भक्ति विष्णु से अभिन्न रहने के कारण ~~अनभिव्यक्तने~~ अव्यभिचारिणी होगी। अव्यभिचारिणी भक्ति के अन्तर्गत अन्य देव-देवी की उपासना वर्जित है। संसार में भक्ति ही सर्वश्रेष्ठ धर्म है। सूरदास के उपास्य देव श्रीकृष्ण हैं।अष्टछाप के भक्त कवि ईश्वर के सगुण तथा निर्गुण और चौबीस लीला अवतारों में विश्वास करते हैं किन्तु किशोर लीलाधारी कृष्ण ही उनके उपास्य देव थे-- कृष्ण के सहित इनकी रस -शक्ति राधा की भी उपासना की जाती है। असमिया वैष्णव कवियों ने राधा-कृष्ण की बाल सुलभ क्रीड़ाओं का वर्णन अत्यन्त संक्षिप्त रूप में किया है।माधवदेव ने राधा तथा कृष्ण की क्रीड़ा के कतिपय चित्र बरगीतों में अंकित किया है। असमिया वैष्णव मत की यह विशेषता है कि उनके नाम घरों में कृष्ण की प्रतिमा न तो स्थापित की जाती है न उसकी उपासना ही होती है- राधा असमियां वैष्णव काव्य में कृष्ण की सखी नहीं है। शंकरदेव की किसी भी रचना में राधा का नाम नहीं मिलता है।

प्रेम भक्ति की प्रथम सीढ़ी वात्सल्य भक्तिहै। भक्ति की प्रथम अवस्था में इसी भाव से भगवान की सेवा करनी चाहिए। असमिया वैष्णव साहित्य में

शृंगारादि रस अथवा भाव द्वारा भगवद् भक्ति तथा शांत रस की पुष्टि की गई है। शंकरदेव ने कलियुग में श्रवण-कीर्तन को भक्ति का श्रेष्ठ साधन कहा है, अन्य युगों में ध्यान,यज्ञ,पूजा आदि से जिस फल की प्राप्ति होती है, वह कलियुग में भगवान के नाम का स्मरण करने मात्र से प्राप्त होती है। भागवत धर्म का मूल नाम-कीर्तन या शेष आचार आदि केवल भक्तिके अंग मात्र थे। कर्म की निंदा कर हरिकीर्तन की श्रेष्ठता को प्रकाशित किया गया है। कलियुग में 'हरे राम हरे राम' ही मूल मंत्र है - कीर्तन के लिए विशेष विधान की आवश्यकता नहीं है। हरि नामयुक्त यज्ञादि द्वारा समस्त कर्तव्य कर्मों का प्रतिपादन किया गया है।

माधवदेव के अनुसार प्रेमात्मिका निर्गुण-भक्ति अथवा रसमयी भक्ति--रसमयी रसस्वरूपा -अर्थात् भगवत्स्वरूपभूता भक्ति है। रसमयी भक्ति काव्य,नाटक आदि कलाओं द्वारा अभिव्यंजित पारिभाषिक नवरसों से भी अधिक मधुर अधिक देदीप्यमान तथा परिपूर्ण है। कांतादि विषयक जो रस अथवा भाव उत्पन्न होता है उसके भीतर पूर्ण आनन्द की वृद्धि नहीं होती है- किन्तु श्री कृष्णकी भक्ति सुखसागर है उसका स्वाद अमृत से भी मधुर है जिस भक्त को भक्ति रस का स्वाद प्राप्त हो जाता है, मुक्ति की कामना नहीं करता, कृष्ण - चरणों की प्रीति ही उसका एक मात्र संबल है।

शंकरदेव के इस केलिगोपाल नाटक में गोपी-कृष्ण के संभोग तथा विरह में शृंगार रस व्यंजित हुआ है। इस नाटक में श्रीकृष्ण शृंगार रस के नायक के रूप में नहीं उपस्थित हुए हैं वे परम पुरुष जगत के रचयिता परमेश्वर हैं,उनका रूप, कार्य, शक्ति लोकातीत है,गोपियां शृंगार रस की सामान्य नायिका न होकर आनंदस्वरूप, आनंदघन की स्वरूप मात्र हैं। केलिगोपाल नाटक मोक्ष का साधन था। असमिया वैष्णव काव्य में नाना रसों की धारा प्रवाहित हो रही है किन्तु उनके ऊपर शांत रस का प्रभाव अधिक है। कवियों ने वैष्णव धर्म के आदर्श को शांत रस में निमज्जित कर दिया है।

शंकरदेव तथा माधवदेव ने जनसाधारण की आध्यात्मिक तथा सामाजिक उन्नति के लिए ही ग्रंथों की रचना की, किसी भी ग्रंथ में दार्शनिक आलोचना की प्रवृत्ति नहीं दिखायी देती है। माधवदेव ने उपनिषदों और भागवत के मर्म को ग्रहण किया है और इन ग्रंथों के अनुकूल ही ईश्वर के रूप गुण की व्याख्या की है। शंकरदेव के भागवत और माधवदेव के नामघोषा पर श्रीधर स्वामी का अमिट प्रभाव परिलक्षित होता है। इनकी अद्वैतवादी भक्ति का प्रभाव शंकरदेव तथा माधवदेव के दर्शन पर पड़ा। शंकरदेव के समसामयिक वल्लभाचार्य ने शुद्धाद्वैत मत का प्रतिपादन आरम्भ किया। रामानुज सम्प्रदाय और महापुरुषिया संप्रदाय के दार्शनिक सिद्धान्तों में अधिक समानता है।

शंकरदेव के ईश्वर सर्व शक्तिमान, सर्वज्ञ, सत्य स्वरूप आनंद स्वरूप, सर्वकर्ता, सृष्टि स्थिति लय का आधार है, काल माया आदि उनसे पृथक नहीं हैं। नंददास के ईश्वर अजन्मा हैं उसको किसी ने उत्पन्न नहीं किया, वह अनंत रूप होते हुए भी एक हैं। तुलसीदास जी के राम जगत प्रकाशक अखिल ब्रह्मांड नायक, विराट् रूप ब्रह्म हैं। इनके राम शुद्ध सत्य स्वरूप, चैतन्य व्यापक ब्रह्म हैं, वे मूर्तिमान होकर नरलीला करने के लिए साकार रूप में प्रकट हुए। सूरदास के कृष्ण ही अंश और कला रूप में अनेक रूप धारण करते हैं जीव जगत और सम्पूर्ण देवतागण उन्हीं को के अंश हैं। सूर ने ब्रह्म, प्रकृति, पुरुष आदि अद्वैतता स्वीकार की है। नंददास के परब्रह्म कृष्ण गोकुल तथा गोलोक में रस रूप में नित्य लीला मग्न रहते हैं। जिस माया शक्ति ने सृष्टि की रचना की है वह कृष्ण से अभिन्न है। कृष्ण गुण रहित तथा सगुण हैं वे परब्रह्म हैं। शंकरदेव ने समस्त जगत में ईश्वर का प्रकाश देखा है केवल भ्रमवश जीव इन्द्रियों सहित विषय भोग करता है और मायायुक्त शरीर को आत्मा समझता है। सूरदास ने जीव को भगवान की चेतन शक्ति का ही स्वरूप माना है। जीव घट घट में व्याप्त ईश्वर के अंतर्यामी स्वरूप से अनभिज्ञ रहता है। नंददास के मतानुसार ईश्वर ही जड़-चेतन का कारण है, समस्त प्राणी उसी ईश्वर के रूप हैं जीव का शरीर पाप-पुण्य कर्मों से निर्मित है और वह काल, कर्म तथा माया के अधीन है, ईश्वर इनके प्रभाव से मुक्त है। तुलसीदास के अनुसार जीव

माया के अधीन है और माया ईश्वर के वश ~~व~~ में है, जीव माया से प्रेरित होकर काल, कर्म, स्वभाव तथा गुणों के चक्रवात में भ्रमता रहता है जीव माया का स्वामी नहीं है। जीव-ईश्वर के भेद को स्पष्ट करते हुए शंकरदेव ने कहाकि भगवान वास्तव में निर्मल, निष्क्रिय शांत अविकारी रूप होने पर भी मलीन, सक्रिय विकारी अंत:करण में प्रतिबिंबित होने के कारण विकृत दिखायी देता है जिस प्रकार आकाश घट घट में व्याप्त है। वैसे ब्रह्म भी समस्त प्राणियों से प्रकाशित होरहा है। सूरदास ने सम्पूर्ण सृष्टि को प्रभु की रचना कहा है। यह जगत माया के भ्रम द्वारा निर्मित नहीं हुआ है। उनके अनुसार जीव ~~स्वरूप~~ स्वयं भ्रम तथा अविद्या के पाश में बंधा है। ब्रह्म की भांति ब्रह्म का अंश जीव भी नित्य तथा सत्य है। माध्वदेव का मत है कि ईश्वर की सेवामात्र करने से जीव का माया भ्रम नष्ट होताहै, ब्रह्म पद शुद्ध जीव को ईश्वर परब्रह्म कहते हैं। शंकरदेव ने ब्रह्म को जगत प्रपंचक और सृष्टि स्थिति लय का कारण अथवा ईश्वर कहा है। नंददास ने ईश्वर और जीव की अद्वैतता स्वीकार कीहै। परमानन्द दास ने भी ईश्वर और जीव के संबंध को अंशी-अंश का सम्बन्ध माना है। छीतस्वामी ईश्वर और जीव की एकता को मानते थे। शंकरदेव ने आत्मा को नित्य निरंजन स्वप्रकाशित कहा है। वह माया तथा उपाधि द्वारा अनेक रूपों में दिखायी देता है। सूरदास ने माया के विधान का अंत न पाया। उन्होंने अविद्या माया को तथा इस मायायुक्त संसार को भ्रमात्मक प्रमाणित किया है। तुलसीदास जी के अनुसार आदि शक्ति सीता विश्व की सृष्टि स्थिति ~~के अनुसार~~ संहार कारिणी हैं, माया प्रभु के संकेतों के अनुसार निर्माण करती है। अविद्या का प्रभाव प्रभु के भक्तों पर नहीं होता है। जब तक प्रभु की कृपा प्राप्त न होगी माया वारिधि को पार करना दुरूह एवं जटिल कार्य है। शंकरदेव के मतानुसार जागरण तथा स्वप्न बुद्धि की वृत्तियां हैं। नाना प्रकार के रूप जिन्हें हम देखते हैं वह सब मायामय है। जैसे मुकुट कुंडलादि स्वर्ण से भिन्न नहीं है उनका नाम रूप मात्र मिथ्या है इसी प्रकार अहंकार तथा पंचभूत ईश्वर से पृथक नहीं है। नंददास के अनुसार सम्पूर्ण जड़ तथा चेतन सृष्टि के मूल में एक ही शुद्ध तत्व है जो नाम और

रूप के भेद के कारण अनेक रूपों में प्रकाशित होता है - ब्रह्म ही जगत का निमित्त और उपादान कारण है। जगत के समस्त गुण ब्रह्म से प्रसूत हुए हैं। पंच महाभूत अट्ठाइस तत्वों के द्वारा रचित सृष्टि माया का ही परिणाम है। रास पंचाध्यायी में नंददास ने कृष्ण की मुरली की तुलना आदि शक्ति योगमाया से किया है। वस्तुत: ईश्वर सगुण है उसके गुणों की छाया माया दर्पण में पड़ रही है

तुलसीदास के मतानुसार जीव भ्रमवश ही इस असत्य जगत को सत्य मान लेता है, जब तक मनुष्य को ज्ञान प्राप्त नहीं होता है, तब इस संसार के आकर्षण से विमोहित हो सकता है। आदि रचि निराकार परमात्मा ने माया की भित्ति पर ऐसे विचित्र चित्र अंकित किए हैं जो नष्ट नहीं होते हैं, वस्तुत: यह जगत न सत्य है, न मिथ्या है, न सत्य और मिथ्या का मिश्रण ही है।

मध्वदेव के मतानुसार प्रभु का स्वरूप निराकार है, तथा भक्त के अनुग्रह पर वे कभी कभी लीला विग्रह धारण करते हैं एकान्त ज्ञानी भक्तों के हेतु प्रभु की लीला विहार आदि आनन्ददायक है - जिसे समस्त शास्त्र नित्य, शुद्ध, बुद्ध निरंजन तथा निराकार कहते हैं, वही प्रभु गोप शिशुओं के सहित खेलता था। विश्व में शांति स्थापनार्थ भक्तों के आग्रह पर प्रभु लीला-विग्रह धारण करते हैं। सूरदास ने ब्रह्म के सगुण तथा निर्गुण रूपों की व्याख्या की है - श्रीकृष्ण साक्षात परब्रह्म थे। परमानन्द की दृष्टि से ब्रह्म प्राकृत गुणों से शून्य निर्गुण स्वरूप है, वही इस लोक में अवतार धारण कर सगुण लीला करता है। नंददास ने कृष्ण के चौबीस अवतारों का वर्णन किया है।

शंकरदेव ने अद्वैत वाद का प्रतिपादन अपनी रचनाओं में किया है किन्तु असमिया महापुरुषिया मतावलंबियों के मतानुसार उनका सम्पर्क शंकराचार्य के मायावाद से न था । शंकरदेव ने जीव को ईश्वर का अंश घोषित किया है । अत: उन्होंने द्वैतवाद का भी समर्थन नहीं किया । डा० महेश्वर नेओग ने शंकरदेव के दार्शनिक मत को भेदाभेदवाद की संज्ञा देने की चेष्टा की है । निस्सन्देह शंकरदेव तथा माधवदेव का सिद्धान्त उपनिषदों के अद्वैत ब्रह्मवाद पर स्थिर है - श्रीधर स्वामी तथा विष्णु-पुरी के दार्शनिक सिद्धान्तों का विश्लेषण शंकरदेव तथा माधवदेव ने असमिया भाषा में किया है ।

असमिया संस्कृति पर शंकरदेव का प्रभाव

असमिया साहित्य का नव अभ्युदय सोलहवीं शती में हुआ । शंकरदेव ने असमिया जाति के धार्मिक और सामाजिक जीवन को एक नवीन स्फूर्ति तथा चेतना प्रदान की । असम प्रदेश के कितने लघु राज्यों का विनाश हुआ, उनका अवशेष आजनहीं मिलता है । शंकरदेव कीदूरदर्शिता के फलस्वरूप ही वैष्णव धर्म का प्रचार असम में उस समय हुआ जब देश भर में देवी-पूजकों, शिव पूजकों तथा तांत्रिक साधकों का आध्यात्मिक शासन प्रबल और शक्तिशाली था ।

प रि शि ष्ट

सहायक हिन्दी-ग्रंथों की तालिका

ग्रंथ का नाम	विशेष विवरण
१- सूरसागर	डा० धीरेन्द्र वर्मा साहित्य भवन, इलाहाबाद सं० २०१५
२- सूरसागर	नागरी प्रचारिणी सभा - तृ०सं० सं० २०१५
३- अष्टछाप एवं वल्लभ संप्रदाय	डा० दीनदयालु गुप्त हिंदी साहित्य सम्मेलन, सं०२००४
४- सूरदास	ब्रजेश्वर वर्मा, हिंदी परिषद्, प्रयाग-विश्वविद्यालय
५- सूर विनयपत्रिका	गीताप्रेस, गोरखपुर, तृ०सं० सं०२०१४
६- सूर की भाषा	प्रेमनारायण टंडन, लखनऊ विश्वविद्यालय, नवम्बर १९५७
७-तुलसीदास की भाषा	देवकीनन्दन श्रीवास्तव, लखनऊ विश्वविद्यालय, सं०२०१४
८- राधावल्लभ संप्रदाय सिद्धान्त और साहित्य :	विजयेन्द्र स्नातक, दिल्ली -विश्वविद्यालय
९- तुलसीदास	चंद्रबली पाण्डेय, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी सं० २०१४
१०- तुलसीदास	माताप्रसाद गुप्त, हिंदी परिषद् सं०हि० सं० १९४६
११- अपभ्रंश व्याकरण	आचार्य हेमचन्द्र, भाषा परिषद् वाराणसी- सन् १९५८ ई० संपादक :शालिग्राम उपाध्याय

१२- गुजराती और व्रजभाषा कृष्ण-काव्य का तुलनात्मक अध्ययन	डा० जगदीश गुप्त, हिन्दी परिषद् विश्वविद्यालय -प्रयाग १९५८
१३- प्राकृत भाषाओं का व्याकरण	बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् पटना, सं० २०१५
१४- श्रीकृष्ण बालमाधुरी	गीता प्रेस, गोरखपुर सं० २०१५
१५- श्रीकृष्ण माधुरी	वही सं० २०१४
१६- अनुराग पदावली	सूरदास, गीताप्रेस, गोरखपुर सं० २०१५
१७- अष्टछाप	सं० धीरेन्द्र वर्मा, रामनारायण लाल,इलाहाबाद सं० १९५०
१८- तुलसीदास और उनका युग	डा० राजपति दीक्षित, ज्ञानमण्डल,लिमिटेड बनारस,सं०२००९
१९- रामचरितमानस	तुलसीदास, गीताप्रेस,गोरखपुर
२०- हिन्दी और बंगाली वैष्णव कवि	डा० रत्नकुमारी,भारतीय साहित्य मंदिर, दिल्ली ।
२१- हिन्दी साहित्य का इतिहास	रामचंद्र शुक्ल, छ०सं० सं०२००७
२२- हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास	डा० रामकुमार वर्मा, रामनारायण लाल,चतु०सं०१९५८
२३- हिंदी भाषा का उद्भव और विकास	डा० उदयनारायण तिवारी, भारती भंडार प्रयाग, सं० २०१२
२४- तुलसी दर्शन	बलदेव प्रसाद मिश्र, हि०सा०स० प्रयाग,सं० १९९५
२५- नंददास:दो भाग	सं० उमाशंकर शुक्ल, प्र० प्रयाग विश्वविद्यालय,१९४२
२६- विनयपत्रिका	वियोगी हरि,सेवासदन,काशी सं० द्वि० १९८७ वि०

२७- निम्बार्क माधुरी - सं० बिहारीशरण, वृन्दावन

२८- ब्रजभाषा व्याकरण - धीरेन्द्र वर्मा, रामनारायण लाल, १९३७

२९- ब्रजमाधुरीसार - वियोगी हरि, हि०सा०स० प्र०पं०सं०२००२ वि०

३०- मीराबाई की पदावली - परशुराम चतुर्वेदी, हि०सा०स० प्रयाग द्वि०सं० २००१ वि०

३१- उत्तरी भारत की संत परंपरा : परशुराम चतुर्वेदी, भारत दर्पण ग्रंथमाला, प्र० सं० २००४

सहायक असमिया ग्रंथों की तालिका

१- कथा गुरु चरित - सं० उपेन्द्र चंद्र लेखारु दत्त बरुवा १९५२

२- श्री गुरु चरित - रामानंद द्विज - सं० नेओग, दत्त बरुवा-१९५७

३- श्री शंकरदेव आरु माधवदेव चरित - दैत्यारि ठाकुर प्र० हरिनारायण दत्त बरुवा, ५०९ शंकराब्द

४-

५- भट्टदेव - यादवदेव शर्मा, कामरूपा प्रेस, टिहू, १९५४

६- गुरुलीला - रामराय -सं० शरतचंद्रदेव गोस्वामी, सेवक प्रेस, बरपेटा

७-पुरनि असमिया साहित्य - बाणीकांत काकति -लायार्स बुक स्टाल गौहाटी, च तृ० सं० १९५८

अंकावली शंकरदेव, माधवदेव, सं० कालिराम मेधि, जयंती प्रेस, गौहाटी १९५०

९- बरगीत - शंकरदेव तथा माधवदेव रचित -प्र०हरि ना० दत्त बरुवा द्वि०सं० सन् १९५५

१०-नामघोषा - माधवदेव -सं० डा० नेओग, लायार्स बुक स्टाल १९५५ प्र०सं०

११- असमर वैष्णव दर्शनर रूपरेखा: मनोरंजन शास्त्री, आलोक प्रकाशन, गृह नलबारी

१२- पुरनि कामरुपर धर्मधारा	-	डा० वा० काकति -वाणी प्रकाश मंदिर
१३- अंकीया नाट	-	डा० वि० कु० बरुवा, डी०एम०ए०एस०आसाम, १९५४
१४- श्री शंकर वाक्यामृत	-	हरि ना०दव बरुवा, सन् १९५३
१५- श्री माधवदेवर वाक्यामृत	-	पूर्ण चंद्र गोस्वामी, ज्योति प्रकाश, गौहाटी, सन् १९५६
१६- श्री श्री शंकरदेव	-	डा० महेश्वर नेओग, लायार्स बुक स्टाल सन् १९५२
१७- अनादि पतन	-	श्री शंकरदेव
१८- आश्र कनकलता चरित	-	श्रीयुत् रमाकांत आटै
१९- कथा भागवत	-	श्री भट्टदेव
२०- कामरूप शासनावली	-	म०म० पद्मनाथ भट्टाचार्य
२१- कालिका पुराण	-	
२२- कीर्तन	-	शंकरदेव
२३- कुरुक्षेत्र	-	शंकरदेव
२४- केलि गोपाल नाट	-	शंकरदेव
२५- गुरुचरित	-	भूषण द्विज
२६- दशम	-	श्री शंकरदेव
२७- द्वादश स्कंध भागवत	-	,,
२८- द्वितीय स्कंध भागवत	-	,,
२९- नाम घोषा	-	माधवदेव
३०- निमि नवसिद्धसंवाद	-	श्री शंकरदेव
३१- पारिजात हरण	-	,,
३२- प्रह्लाद चरित	-	हेम सरस्वती
३३- प्रथम स्कंध भागवत	-	श्री शंकरदेव
३४- भक्तिरत्नाकर	-	,,
३५- भक्तिविवेक	-	भट्टदेव
३६- रत्नावली	-	माधवदेव
३७- भक्ति प्रदीप	-	श्री शंकरदेव

३८ -	योगिनी तंत्र	-
३९-	रामविजय नाट	- श्री शंकरदेव
४०-	रामायण	- माधव कंदलि
४१-	रुक्मिणी हरण	- श्री शंकरदेव
४२-	श्री वंशीगोपालदेव चरित	- रामानंद द्विज
४३-	हरिश्चंद्र उपाख्यान	- श्री शंकरदेव

सहायक अंग्रेजी ग्रंथों की तालिका

१- हिस्ट्री आव आसाम : सर एडवर्ड गेट, द्वितीय संस्करण-सन् १९२६

२- हिस्ट्री आव आसाम : श्रीकनकलाल बरुआ- सन् १९३३

३- कल्चरल हिस्ट्री आव असम : डा० बिरिंचिकुमार बरुआ सन् १९५१

४- एस्पेक्ट्स आव अर्ली असमिया लिटरेचर : प्रधान संपादक -डा० बाणीकांत काकति
प्रकाशक- गौहाटी विश्वविद्यालय

५- असमिया फार्मेशन एंड डेवलपमेंट : डा० बाणीकांत काकति डी०एच०ए स
प्रथम संस्करण १९४१

६- शंकरदेव : डा० बाणीकांत काकति सन् १९२६

७- मदर गाडेस कामाख्या : डा० बाणीकांत काकति , सन् १९४८

८- असमिया ग्रामर एंड ओरिजिन आव दि असमिया लांग्वेज : एच०कालिराम मेधि

९- दिस इज आसाम : विश्वनारायण शास्त्री तथा प्रमोदचंद्र भट्टाचार्य
प्रकाशक- असम साहित्य सभा- सन् १९५८

१०- दि ओरिजिन एंड डेवलपमेंट आव बेंगाली लांग्वेज : डा० एस० के० चटर्जी
सन् १९२६

शंकरदेव के गीत

राग कनाड़ा-परिताल

कालिंदि जल मह हैरि यदुराया
बालके पेदि बंशी बजाया ।।
नील ततु तिरि पीत पिचौरि
नवघन येथे चमके बिजुरि ।।
कौस्तुभ कंठ कोटि नव सूर
कुंडल मालमल झलके केयूर।।
जल माजे दुहु बाहु आस्फालि ।
क्रिड़ा करतु वारि बनमाली ।
उर्मि उठलि हृद वरु रोल।
कृष्ण किंकर शंकरे बोल ।।

राग सुहाइ- एकताल

जय जग जीवन राम ।
कमलो पड़ि परणाम ।।
याहे नाम गुण मुहे गाइ ।
पापी परम पर पाइ ।।
जोहि भवताप अपारा ।
याहे स्मरणे करु पारा ।।
अजाव भजनकारी
पावल जनककुमारी ।।
तृप्ताव हेदल बाणे ।
कृष्ण किंकर एहु भाणे ।।

राग कनाड़ा - परिताल

आए दशरथ पृथिवीनाथ ।
टूटे चम्मर छत्र धरू माथ ।।
दुर्जय वीर धरिये शर चाप ।
काँपे रिपु सब चाहे प्रान ।।
त्रिभुवन ईश्वर रामक बाप ।
माहि हेरि दूर कौशय पाप ।।

राग कल्याण- सरमान

ए करु रमया, करु रमया रस केलि ।
काँचुरि छूरि फूरे कुँच कुँच रति कौतुकि करा आलि।
नवधर धरिये अधर मधु चंचल
लोचन मूदि रहु माइ ।
करत सुरत मत मातंगगामिनी
कामिनी यामिनी याइ ।
चंमर चिकुर निकर कर कंकण
कनक रतनकु माला ।
श्रमजल बिन्दु इंदु मुह सोहि ।
मोहि पड़ल [illegible] ।
परम रसिक गुरु श्री शुक्लध्वज
राजा नृपति प्रधान ।
जगतु जगतु नित्य ईश्वर कृष्णक
केलि केलि लीला रस जान ।

राग असावरी - यतिमान

कैचे केशव दरशन होइ ।

हरि बिने निष्फल जनम सब गोइ।।

नाचि दिगंबर नाथ त्र्यारु।

भैंट केमने होइ स्वामी मुरारु ।

जामुकिंकरी हरि नाथ हामार ।

कह शंकर रुक्मिणीक बेवहार ।।

राग-बिलावल-परिताल

लरबि नाहिं आकुल प्रिये ।

धरि कामिनीक धानु लोम किये ।

कि करब सिंहक शूकर सब आया ।

हामाकु शपत ताप तेजहु जाया ।

मोचत मुख प्रियाक पतियासे ।

कह शंकर रस केशव दासे ।

राग गौरी-यतिमान

पूचतउ माधवी बांधव मधुसूदन ।

कतिनी रहिलि हरि गोपिनी-जीवन।।

बकुल बंधुलि कदंब बक तुलसी

तोहोसब पर-उपकारी ।

कह काहे गेह बंधु मधाइ हामारि

विरहिणी जीवन धरए नपारि।।

चंपक चुत आचौर पाति मागौ

प्राण बंधु देउ देखाइ

पहु बिने तनु मन धारण नमाइ

रहल बाण कृष्ण गाइ ।।

रागकांत - ताल कति

खेलत रे हरि गोपिनी मेला ।
करत चोर चातुरी खेला ।
परमानंद लीला परकाशी ।
बहुरंगे रंगा गोकुलवासी ।
सब रस सागर नंदकुलाल ।
कहय माधव गति मुकुटि गोपाल ।

राग आसावरी -परिताल

नाचहुँ गोविंद गोपिनी आगे ।
कर पाति पाति लवनु मागे ।
यो कर कमल भकत भयहारी ।
सोहि करपाति मागे लवनु मुरारि ।
गोवारि बोलय निकु नाच गोपाला ।
तब तोहे लवनु देवल झामु भाला ।।

राग असावरी

खेलत गोविंद यशोवाक संगे ।
मानवी भाव देखावत रंगे ।।
सृष्टि स्थिति लय कारण योइ ।
याकर लीला जानत नहि कोइ ।।
सोहि महेश्वर गोप कुमारा ।
लोक तारण हेतु करत विहारा ।।
मोहि कृपामय देवक देवा ।
मुकुति विरचंन याकर सेवा ।।
नानन रसे खेलि सोहि दयाला ।
कहय माधव गति बाल गोपाला ।।

राग बिलावल

हरिको आगु राधा आचरि मोहि मागे ।
तोहारि अधर मधु पान विचुरि हरि
हामाकु आचरि नाहि लागे ॥
देवक दुर्लभ देव तुवा पद पंकज
हामाकेरि कुच युग हारा।
नाहिक आशे दासी तेरा
वचवि नाहि त्यागा ॥
सखाकु वाणी शुनिये करि हासत
भाषत वचन गोविंदे ।
कहय माधवदीन मेरि मन मजि रह
हरि-पद-युग अरविंदे ॥

राग- कनाड़ा-परिताल

नवनु चोरा बुलि यशोमा माइ ।
गोविंद पाशे बांधय यदुराइ ॥
पूर्वापर अंत नाहि याहारु ।
सोकि परम गुरु जगत आधारु ।
बाहिर भीतर वाकेरि नाइ ।
गोवारी बोले नवनु चोरा पाइ ॥
गाव संधाने यशोदा रजु टानि ।
जोड़य नाहि आंगुल दुइ माने ।
पुनु पुनु रजु विचार कय आनि ।
उदरे मेढ़ाइ बांधय सती टानि ॥
तब हो नोजोर आंगुल दोहो पाशे ।
पेखिये गोप रमणी सब हासे ।
हरि कहो तत्व जानय नाहि कोइ ।
माधव कह गति गोविंद मोर ॥

राग कल्याण-परमान

अब मंगल रस रासे रसिक गुरु
करत अनंग रस केलि ।
राधा पूरत मन साधु सफर मधु
पानि मोक्षित मति भेलि ।।
धन धन मुकुन्दो भेलि आलिंगन
चुंबन वचन मिलाय ।
हरिकहु कोले आलिंगि रहु राधे
नयने वचन छिपाय ।।
परमानंद अनंग रस सागर
सखिये मति रहुं गाय ।
हरिको परश राशि बिंदुरि रहल तनु
माधव दीन गुण गाय ।।

शंकरदेव के नाटकों के संवाद की भाषा

सूत्र - तदनन्तर से सभा समामध्ये आसिकहु रुक्मिणीक ज्येष्ठ भ्राता रुक्मी नाम मंदमति से पापी परम दर्प कय कय बोलल ।

रुक्मी- आ हामार भगिनी रुक्मिणीक कालाक शकति कृष्णाक बिवाह देवब ? से यादव अनाचार गोवध, स्त्रीवध, मातुलवध बहु पाप करलापिक, से हामार संबंधक योग्य कत नाहि । ओ युवराज तुहो किछो बुझ नाहि । ये महाराज शिशुपाल से रुक्मिणीक योग्य वर हय, निष्ट ताहेक विवाह देवब । हामो अंगीकार कय बोलल ।

--रुक्मिणीहरण नाट

श्रीकृष्ण- हे प्रिये, पापी नरकासुरे देवतासकल जिनिये स्वर्गक आनल । आगुं ताहेक मारि देव कार्य साधो । पाछे पारिजात आनो ।

सत्यभामा - आ: स्वामी [illegible] कन्त, आगु देवकार्य [illegible] [illegible] [illegible] पारिजात [illegible] [illegible] [illegible] थंग [illegible] ।

--पारिजात हरण

श्रीकृष्ण - हे [illegible] [illegible] ! [illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] वन मध्ये [illegible] [illegible] ?

गोपी [illegible] - हे परमेश्वर, [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ।

श्रीकृष्ण- :[illegible] [illegible]: [illegible] [illegible] कुशल [illegible] ? [illegible] [illegible] प्रयोजनाधिक ? [illegible] [illegible] [illegible] ।

-- [illegible]